राष्ट्रधारक ।

ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥

अथर्ववेद १३।१।३५

" (ये राष्ट्रभृतः देवाः) जो राष्ट्रका भरणपोषण करनेवाले देव (सूर्यं अभितः यन्ति) सूर्यदेवके चारों ओर घूमते हैं, (तैः संविदानः सुमनस्यमानः रोहितः) उनके साथ रहनेवाला उत्तम संकल्पवाला रोहित अर्थात् सूर्य (ते राष्ट्रं दधातु) तेरे राष्ट्रका धारणपोषण करे । "

राष्ट्रका धारणपोषण करनेवाले ज्ञानदेव, बलदेव, धनदेव, कर्मदेव और वनदेव ये पंच जन सूर्यदेवको अपना आदर्श माने, जैसा सूर्य सब जगत् को प्रकाशित करता है, वैसे ये अपने राष्ट्रको ज्ञान बल धन कर्म आदि द्वारा प्रकाशित करें । इनकी मंत्रणासे कार्य करनेवाला राष्ट्रका धुरीण हमारे राष्ट्रका उत्तम रीतिसे धारणपोषण करे ।

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, स्वाध्यायमंडल,
भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा.)

अथर्ववेद

स्वाध्याय।

(अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।)

त्रयोदशं काण्डम्।

लेखक और प्रकाशक।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्यायमंडल, औंध (जि० सातारा.)

प्रथम वार

संवत् १९९०, शके १८५५, सन १९३३.

			३ मरुतः, २८, ३१ अग्निः ३१ बहुदैवत्यं।	पंचपदाककुंमतीजगती; १३ अतिशाक्वरगंर्भाति जगती, १४ त्रिपदा पुरःपरशाक्वरा विपरीतपादलक्ष्म्या पंक्तिः, १८, १९ ककुंमत्य तिजगत्यौ (१८ परशाक्वरा भुरिक्,) २१ आर्षी निचृद्गायत्री; २२, २३, २७ प्रकृता; २६ विराट् परोष्णिक्, २८-३०, ३२ ३९, ४०, ४५-५०; ५१-५६; ५७-५८ अनुष्टुभः (२८ भुरिक्, ५२-५५ पथ्यापंक्तिः, ५५ ककुंमती बृहतीगर्भा, ५७ककुंमती); ३१ पंचपदा ककुंमती शाक्वरगर्भा जगती; ३५ उपरिष्टाद्बृहती, ३६ निचृन्महा बृहती, ३७ परशाक्वरा विराड् अतिजगती; ४२ विराड् जगती; ४३ विराड् महाबृहती, ४४ परोष्णिक्, ५९-६० गायत्र्यौ।
२	४६	,,	अध्यात्मं रोहितः आदित्यः	,, १, १२-१५, ३९-४१ अनुष्टुभः, २, ३, ८, ४३ जगत्यः; १० आस्तारपंक्तिः, ११ बृहतीगर्भा, १६-२४ आर्षी गायत्री, २५ ककुंमती आस्तारपंक्ति; २६ पुरोद्व्यतिजागता भुरिग्जगती, २७ विराड्जगती, २९ बार्हतगर्भाऽनुष्टुभ्, ३० पंचपदा उष्णिग्गर्भाऽतिजगती, ३४ आर्षी पंक्तिः, ३७ पंचपदा विराड्गर्भा जगती; ४४, ४५ जगत्यौ [४४ चतुष्पदा पुरः शाक्वरा भुरिक्; ४५ अतिजागतगर्भा]।
३	२६	,,	,,	,, १ चतुरवसानाष्टपदा आकृतिः, २-४ त्र्यवसाना षट्पदा [२, ३अष्टि, २ भुरिक्, ४ अतिशाक्वरगर्भाधृति], ५-७ चतुरवसाना सप्तपदा [५, ६ शाक्वरातिशाक्वरगर्भा प्रकृति, ७ अनुष्टुब्गर्भाति धृतिः], ८ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टि, ९-१९ चतुरवसाना [९-१२, १५, १७ सप्तपदाभुरिगतिधृति, १५ निचृत्, १७ कृति, १३, १२, १६, १८, १९ अष्टपदा, १४, १४ विकृति, १६, १८, १९ आकृतिः; १९ भुरिक्], २०, २२ त्र्यवसाना अष्टपदा

अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

(अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।)

त्रयोदश काण्ड ।

यह त्रयोदश काण्ड अथर्ववेदके तृतीय महाविभागका पहिला काण्ड है। पहिला महाविभाग १ से ७ तक के सात काण्डोंका है। दूसरा महाविभाग ८ से १२ तक के पांच काण्डोंका है और तीसरा महाविभाग १३ से १८ काण्डतक के छः काण्डोंका है। इस तृतीय महाविभागका यह तेरहवां कांड पहिला है। इस काण्डमें चार सूक्त हैं और चारों सूक्तोंमें 'अध्यात्म रोहित आदित्य' का वर्णन है। इस काण्डकी मंत्रसंख्या इस प्रकार है—

सूक्त	अनुवाक	दशति	मंत्रसंख्या
१	१	६	६०
२	२	४+६ मंत्र	४६
३	३	२+६ ,,	२६
४	४	६ पर्याय	५६
४ सूक्त	४ अनुवाक		१८८ कुल मंत्रसंख्या

अब इनके ऋषि, देवता और छन्द देखिये—

ऋषि देवता और छंद।

सूक्त	मंत्रसंख्या	ऋषि	देवता	छन्द
१	६०	ब्रह्मा	अध्यात्म [illegible] रोहित [illegible]	त्रिष्टुप्। ३ ५ ९ १२ जगती। [illegible] [illegible] ८ [illegible]

वह निःसंदेह एक है।

स एष एक एकवृदेक एव ॥२०॥
सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥२१॥

अथर्ववेद १३।४

"वह एक है, वह अकेला एक अखंड व्यापक है, निःसन्देह एक ही है, सब अन्य देव उसमें एकरूप होते हैं।"

वह परमेश्वर केवल अकेला एक ही है, निःसन्देह उसके समान दूसरा कोई नहीं है।

वह निःसंदेह एक है।

स एष एक एकवृदेक एव ॥२०॥
सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥२१॥

अथर्ववेद १३।४

"वह एक है, वह अकेला एक अखंड व्यापक है, निःसन्देह एकही है, सब अन्य देव उसमें एकरूप होते हैं।"

वह परमेश्वर केवल अकेला एक ही है, निःसन्हेह उसके समान दूसरा कोई नहीं है।

अथर्ववेदका स्वाध्याय।

(अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।)

त्रयोदशं काण्डम् ।

अध्यात्म-प्रकरण।

॥ १ ॥

उदेहि वाजिन् यो अप्स्व१न्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥ १ ॥

अर्थ— हे (वाजिन् ! उत् एहि) सामर्थ्यवान् आत्मदेव ! तू उदयको प्राप्त हो। (यः अप्सु अन्तः) जो तू आपोमय प्राणोंके परे है, वह तू (इदं सूनृतावत् राष्ट्रं प्रविश) इस प्रिय राष्ट्रमें प्रविष्ट हो, (यः रोहितः इदं विश्वं जजान) जिस देवने यह सब उत्पन्न किया है, (सः त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु) वह तुझे इस राष्ट्रके लिये उत्तम भरणपोषणपूर्वक धारण करे ॥ १ ॥

भावार्थ— प्रत्येक आत्मा अभ्युदय और निश्रेयस प्राप्त करे। प्रत्येक मनुष्य राष्ट्रकी उन्नतिके साथ अपनी उन्नति करे। अपने राष्ट्रपर प्रेम करे और उसकी उन्नति करनेका प्रयत्न करे। इस सूर्यदेवने इस जगत् की उत्पत्ति की है, वही तुम्हें राष्ट्रीय उन्नति करनेके लिये हृष्टपुष्ट करेगा ॥ १ ॥

उद्वाज आ गन् यो अप्स्वन्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥ २ ॥
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥ ३ ॥
रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम्।

अर्थ-(यः अप्सु अन्तः) जो आपोमय प्राणोंके अन्दर विद्यमान है वह (वाजः उत् आ गन्) सामर्थ्य ऊपर आगया है। (याः त्वत्-योनयः विशः) जो तेरी जातिकी प्रजाएं हैं, उनमें तू (आरोह) उच्च स्थानमें विराजमान हो। (इह सोमं दधानः) इस राष्ट्रमें सोमादि वनस्पतियोंका पोषण करते हुए (अपः ओषधीः गाः चतुष्पदः द्विपदः) जल, औषधियां, गौवें, चतुष्पाद और द्विपाद प्राणियोंको (आवेशय) निवास कराओ ॥ २ ॥

हे (मरुतः) मरनेतक लडनेवाले वीरो ! (यूयं उग्राः पृश्निमातरः) तुम सब बहुत शूर और भूमिको अपनी माता माननेवाले हैं, तुम (इन्द्रेण युजा शत्रून् प्रमृणीत) इन्द्रके साथ रहकर शत्रुओंका नाश करो। हे (सुदानवः ! रोहितः आ शृणवत्) उत्तम दान देनेवाले वीरो ! वह सूर्यदेव तुम्हारी बात सुने। (त्रि-सप्तासः मरुतः स्वादुसंमुदः) आप तीन गुणा सात अर्थात् इक्कीस प्रकारके वीर उत्तम आनंद देनेवाले हैं ॥ ३ ॥

(रोहितः रुहः रुरोह) प्रकाशवान् सूर्यदेव उच्च स्थानमें विराजमान हुआ है,अर्थात्(जनुषां जनीनां उपस्थं गर्भः आ रुरोह) स्त्रीयोंकी गोदमें यह

भावार्थ-मनुष्यका सामर्थ्य वही है जो उसके प्राणमें विद्यमान है। उस सामर्थ्यसे युक्त होकर अपनी सजातीय प्रजामें- अर्थात् अपने राष्ट्रमें रहकर अभ्युदय प्राप्त करना चाहिये। यहां अपने राष्ट्रमें रहकर वनस्पतियां, जलस्थान, औषधियां, गौवें और अनेक द्विपाद तथा चतुष्पाद पशुओंका धारण करे ॥ २ ॥

सब लोग अपनी मातृभूमिकी रक्षा अपने उग्र शौर्यसे करें। मातृभूमिके शत्रुओंका नाश करें। मनमें उदारतायुक्त दातृत्वका भाव धारण करें। जो वीर मरनेतक लडनेवाले होते हैं, वे हि उत्तम आनंद देनेवाले होते है ॥ ३ ॥

अथर्ववेदका स्वाध्याय।

(अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।)

त्रयोदशं काण्डम्।

अध्यात्म–प्रकरण।

॥ १ ॥

उदेहि वाजिन् यो अप्स्व१न्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत्।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥ १ ॥

अर्थ— हे (वाजिन् ! उत् एहि) सामर्थ्यवान् आत्मदेव ! तू उदयको प्राप्त हो। (यः अप्सु अन्तः) जो तू आपोमय प्राणोंके परे है, वह तू (इदं सूनृतावत् राष्ट्रं प्रविश) इस प्रिय राष्ट्रमें प्रविष्ट हो, (यः रोहितः इदं विश्वं जजान) जिस देवने यह सब उत्पन्न किया है, (सः त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु) वह तुझे इस राष्ट्रके लिये उत्तम भरणपोषणपूर्वक धारण करे ॥ १ ॥

भावार्थ— प्रत्येक आत्मा अभ्युदय और निश्रेयस प्राप्त करे। प्रत्येक मनुष्य राष्ट्रकी उन्नतिके साथ अपनी उन्नति करे। अपने राष्ट्रपर प्रेम करे और उसकी उन्नति करनेका प्रयत्न करे। इस सूर्यदेवने इस जगत् की उत्पत्ति की है, वही तुम्हें राष्ट्रीय उन्नति करनेके लिये हृष्टपुष्ट करेगा ॥ १ ॥

रोहि॑तो॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॑दृंह॒त् तेन॒ स्व॑स्तभि॒तं तेन॒ नाकः॑ ।
तेना॒न्तरि॑क्षं॒ विमि॑ता॒ रजां॑सि॒ तेन॑ दे॒वा अ॒मृत॒मन्व॑विन्दन् ॥ ७ ॥
वि रोहि॑तो अमृशद् वि॒श्वरू॑पं समाकु॒र्वा॒णः प्र॒रुहो॒ रुह॑श्च ।
दिवं॑ रू॒ढ्वा म॑ह॒ता म॑हि॒म्ना सं ते॑ रा॒ष्ट्रम॑नक्तु॒ पय॑सा घृ॒तेन॑ ॥ ८ ॥
यास्ते॒ रुहः॑ प्र॒रुहो॒ यास्त॑ आ॒रुहो॒ याभि॑रापृ॒णासि॒ दिव॑म॒न्तरि॑क्षम् ।
तासां॒ ब्रह्म॑णा॒ पय॑सा वावृधा॒नो वि॒शि रा॒ष्ट्रे जा॑गृहि॒ रोहि॑तस्य ॥ ९ ॥

अर्थ- (रोहितः द्यावापृथिवी अदृंहत्) सूर्यदेवने द्युलोक और पृथिवी लोकको सुदृढ बनाया। (तेन तेन स्वः नाकः स्तभितं) उसीने स्वर्गनामक सुखपूर्ण लोक ऊपर थाम रखा है। (तेन अन्तरिक्षं रजांसि विमिता) उसने अन्तरिक्ष लोकको बनाया और (तेन देवाः अमृतं अन्वविन्दन्) उसीके द्वारा सब देवोंको अमरत्व प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥

(रोहितः प्ररुहः रुहः च समाकुर्वाणः विश्वरूपं वि अमृशत्) सूर्यदेवने ऊंचे और नीचे सब दिशाओंको इकट्ठा करके सब विश्वके रूपको बनानेका विचार किया। वह (महता महिम्ना दिवं रूढ्वा) अपने बडे सामर्थ्यसे द्युलोकपर आरूढ होकर (ते राष्ट्रं पयसा घृतेन सं अनक्तु) तेरे राष्ट्रको घी और दूधसे भरपूर करे ॥ ८ ॥

(याः ते रुहः प्ररुहः याः ते आरुहः) जो तुम्हारे आगे, पिछे और ऊपर बढनेके मार्ग हैं (याभिः दिवं अंतरिक्षं आपृणासि) जिनके द्वारा तू द्युलोक और अन्तरिक्ष लोकको भरपूर करता है, (तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानः) उनके बलवर्धक रससे बढता हुआ तू (रोहितस्य विशि राष्ट्रे जागृहि) सूर्यदेवकी प्रजामें और राष्ट्रमें जाग्रत रह ॥ ९ ॥

आत्माको फैलाया है। वहां जीवात्माने आश्रय लिया है। उसीने अपने बलसे इस पृथ्वीको सुदृढ बनाया है ॥ ६ ॥

सूर्यदेवने हि पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यूलोक को सुदृढ बनाया है, उसी से सब देवोंको अमरत्व प्राप्त हुआ है ॥ ७ ॥

सूर्यके कारण हि सब जगत् को सुंदर रूप मिला है। वह अपनी महिमासे स्वर्ग-लोकपर चढकर इस राष्ट्रको दूध और घीसे भरपूर करता है ॥ ८ ॥

जो अनेक मार्ग स्वर्गधामको प्राप्त करनेके हैं, उनके ज्ञानसे तथा घृतदुग्ध आदिसे

ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥ ४ ॥
आ ते राष्ट्रमिह रोहितोहार्षीद् व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत् ।
तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्करीभिः ॥ ५ ॥
रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान ।
तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन ॥ ६ ॥

गर्भमें बैठ गया है। (षट् उर्वीः ताभिः संरब्धं अन्वविन्दन्) छः दिशाओंने उनके द्वारा बढाये गर्भको प्राप्त किया। वह (गातुं प्रपश्यन् इह राष्ट्रं आहाः) उन्नतिका मार्ग जानता हुआ यहां राष्ट्रको उन्नत करता है ॥ ४ ॥

(ते राष्ट्रं इह रोहितः आहार्षीत्) तेरे राष्ट्रको यहां उसी सूर्यदेवने लाया है। (मृधः वि आस्थत्) शत्रुओंको दूर किया, और (ते अभयं अभूत्) तेरे लिये निर्भयता हो गयी है। (तस्मै ते रेवतीभिः शक्वरीभिः द्यावापृथिवी इह कामं दुहां) उस तेरे हितके लिये धन और शक्तियों-द्वारा ये द्युलोक और पृथिवीलोक यहां इस राष्ट्रमें यथेच्छ उपभोग देवें ॥ ५ ॥

(रोहितः द्यावापृथिवी जजान) इस सूर्यदेवने इस द्युलोक और पृथ्वी-लोकको उत्पन्न किया है। (तत्र परमेष्ठी तन्तुं ततान) वहां परमात्माने सूत्रात्माको फैलाया है। (तत्र एकपादः अजः शिश्रिये) वहां एकपाद आत्माने आश्रय लिया है। उसीने (बलेन द्यावापृथिवी अदृंहत्) अपने बलसे द्युलोक और पृथ्वीको सुदृढ बनाया ॥ ६ ॥

भावार्थ—यह सूर्य उदयको प्राप्त हुआ है, मानो यह अपनी माताकी गोदमें बैठा है। इस समय मानो छहों दिशाओंने उस गर्भका धारण किया है। यह गर्भ आगे उन्नत होता है, स्वयं उन्नतिका मार्ग जानता है और राष्ट्रकोभी उन्नत करता है ॥ ४ ॥

इस सूर्यदेवने हि तेरे इस राष्ट्रको उच्च स्थितिमें लाया है। उसीने सब शत्रुओंको दूर किया और तुझे निर्भय किया है। इस राष्ट्रमें रहनेवालोंके लिये इस भूमिसे धन और शक्तियां पर्याप्त प्राप्त हों ॥ ५ ॥

इस सूर्यदेवने द्युलोक और पृथ्वीलोकको बनाया है। वहां परमात्माने सूत्ररूप

मा मां हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥१२॥
रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमाना स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु ॥ १३॥
रोहितो यज्ञं व्यदधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् तेजांस्युप मेमान्यागुः।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ १४ ॥

है ऐसा उत्तम वीर यह है। यह [नाथितः मा मा हासीत्] याचना करनेपर मेरा त्याग न करे। तथा [त्वा इत् न जहानि] तुझे निश्चयसे मैं नहीं छोडूंगा। [मे गो-पोषं वीर-पोषं च धेहि] मुझे गोपालनका तथा वीरोंके पालनका सामर्थ्य दे ॥ १२ ॥

[रोहितः यज्ञस्य जनिता मुखं च] सूर्य यज्ञका उत्पन्नकर्ता और यज्ञका मुख है। [वाचा श्रोत्रेण मनसा च रोहिताय जुहोमि] वाणीसे, कानसे और मनसे इस सूर्यके लिये हवन करता हूं। [सुमनस्यमानाः देवाः रोहितं यन्ति] उत्तम संकल्प करनेवाले देव सूर्यको प्राप्त होते हैं। [सः सामित्यै रोहैः मा रोहयतुः] वह सभाके लिये अनेक उन्नतियोंसे मुझे उन्नत करे ॥ १३ ॥

[रोहितः विश्वकर्मणे यज्ञं व्यदधात्] सूर्यने विश्वकर्माके लिये यज्ञ किया। [तस्मात् इमानि तेजांसि मा उप आ गुः] उस यज्ञसे ये तेज मेरे पास प्राप्त हुए हैं। [भुवनस्य मज्मनि अधि ते नाभिं वोचेयम्] अतः इस भुवनके महत्त्वके बीचमें तेरा मुख्य भाग है, ऐसा मैं कहता हूं ॥ १४॥

कभी त्याग न करे और मैं उसका कभी त्याग न करूं। इससे हमारी गौवें तथा संताने हृष्ट पुष्ट हों ॥ १२ ॥

इसी सूर्यसे यज्ञ बने हैं, यज्ञमें अग्निरूपसे यही मुख्य है। हवन करने के समय वाणी, कान और मन का साथ साथ उपयोग होना चाहिये। शुभ संकल्प करनेवाले सब इसीको प्राप्त होते हैं। यह मुझपर कृपा करे और सभाओंद्वारा जो मानवी उन्नति होना संभव है, वह मुझे प्राप्त करावे ॥ १३ ॥

सूर्यदेवके द्वारा हि सब शुभ कर्मोंका स्रोतरूप यज्ञ बना है। इससे जो सामर्थ्य प्राप्त होता है, वह सब मुझे प्राप्त हो। इस सब संसारके मध्यमें महत्त्वकी दृष्टिसे यही मुख्य है ॥ १४ ॥

यास्ते॑ विश॒स्तप॑सः संब॒भूवु॑र्व॒त्सं गा॑य॒त्रीमनु॒ ता इ॒हागुः॑ ।
तास्त्वा॒ विश॑न्तु॒ मन॑सा शि॒वेन॒ संमा॑ता व॒त्सो अ॒भ्ये॑तु॒ रोहि॑तः ॥१०॥ (१)
ऊ॒र्ध्वो रोहि॑तो॒ अधि॒ नाके॑ अस्थाद् विश्वा॑ रू॒पाणि॑ ज॒नय॑न् युवा॑ क॒विः ।
ति॒ग्मेना॒ग्निर्ज्योति॑षा॒ वि भा॑ति तृ॒तीये॑ चक्रे॒ रज॑सि प्रि॒याणि॑ ॥ ११ ॥
स॒हस्र॑शृङ्गो वृष॒भो जा॒तवे॑दा घृ॒ताहु॑तः॒ सोम॑पृष्ठः सु॒वीरः॑ ।

अर्थ–(ते तपसः याः विशः संबभूवुः) तेरे प्रकाशसे जो प्रजाएं उत्पन्न होगयीं हैं, (ताः इह वत्सं गायत्रीं अनु अगुः) वे प्रजाएं यहां संतान और अपने प्राणत्राणसंबंधी व्यापारके अनुकूल होकर चलती हैं। (ताः शिवेन मनसा त्वा विशन्तु) वे प्रजाएं शुभसंकल्पयुक्त मनसे तेरे अन्दर प्रविष्ट हों। (संमाता रोहितः वत्सः अभ्येतु) माता और सूर्यरूपी बछडा मिलकर आगे बढें ॥ १० ॥

(युवा कविः विश्वा रूपाणि जनयन्) तरुण ज्ञानी सब जगत् के रूपको प्रकाशित करता हुआ (रोहितः ऊर्ध्वः नाके अधि अस्थात्) सूर्य ऊपर स्वर्गमें ठहरा है। यह (अग्निः तिग्मेन ज्योतिषा विभाति) अग्नि तीक्ष्ण प्रकाशसे प्रकाशता है। यह (तृतीये रजसि प्रियाणि चक्रे) तीसरे अन्तरिक्ष लोकमें प्रिय पदार्थोंको बनाता है ॥ ११ ॥

यह (जातवेदाः सहस्रशृङ्गः वृषभः) बने हुए सब पदार्थोंको जाननेवाला हजारों किरणोंसे युक्त वृष्टि करनेवाला [घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः] घृतकी आहुतियां स्वीकारनेवाला, सोमका हवन जिसपर होता

हृष्टपुष्ट होते हुए इस राष्ट्रमें और इस प्रजामें सतत जाग्रत रहो ॥ ९ ॥

सूर्यसे हि ये सब प्रजाजन-सब प्राणिमात्र-उत्पन्न हो गये है, ये सब प्राणरक्षण के प्रयत्नमें सदा दत्तचित्त रहते हैं। ये सब की सब प्रजाएं उत्तम शिवसंकल्पयुक्त मनसे ईश्वरमें आश्रय लेकर रहें। माता और पुत्र मिलकर उन्नतिको प्राप्त हों ॥ १० ॥

यह सदा तरुण सब देखनेवाला सूर्य सबके रूपोंको प्रकाशित करता हुआ द्युलोक में रहा है। यह अपने प्रखर तेजके साथ प्रकाशता है और तीसरे लोकमें रहकर सब का प्रिय करता है ॥ ११ ॥

यही सूर्य अग्नि है, जिसमें घृत और सोमकी आहुतियां होमी जाती हैं। यह मेरा

आ त्वा रुरोह बृहत्युऽुत पुङ्क्तिरा ककुन् वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह ॥१५॥
अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेयमन्तरिक्षम् ।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान् व्यानशे ॥ १६ ॥
वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥१७॥

अर्थ–हे (जातवेदः) सब उत्पन्न हुएको जाननेवाले! (त्वा बृहती आ रुरोह) तुझपर बृहती चढी है, (उत पंक्तिः आ, ककुब् वर्चसा आ) पंक्ति और ककुब अपने तेजके साथ चढे हैं। (उष्णिहाक्षरः त्वा आरुरोह) उष्णिक् छंदके अक्षरभी तेरे ऊपर चढे हैं तथा (रोहितः रेतसा सह) सूर्य अपने वीर्यके साथ है ॥ १५ ॥

(अयं पृथिव्याः गर्भं वस्ते) यह पृथिवीके गर्भमें वसता है। (अयं दिवं अन्तरिक्षं वस्ते) यह द्युलोक और अन्तरिक्ष लोकमें वसता है। (अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान् व्यानशे) यह प्रकाशलोकके शिरोभाग-पर स्वर्गलोकमें व्यापता है ॥ १६ ॥

हे (वाचस्पते) वाणीके स्वामिन्! (नः पृथिवी स्योना) हमारे लिये पृथिवी सुखकर होवे। (योनिः स्योना) हमारे लिये हमारा घर सुखदायी हो। (नः तल्पा सुशेवा) हमारे लिये बिछोने सुखदायी हों। (इह एव नः सख्ये प्राणः अस्तु) यहांहि हमारे सख्यमें प्राण रहे। हे परमेष्ठिन्! (तं त्वा अग्निः आयुषा वर्चसा परि दधातु) तुझको यह अग्नि आयु और तेजसे धारण करे ॥ १७ ॥

भावार्थ– बृहती, पंक्ति, ककुब्, उष्णिक्, वषट्कार आदि सब उसी एक देव का वर्णन कर रहे हैं, मानो वह इनमें रहा है ॥ १५ ॥

यह एक देव पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोक के अंदर विद्यमान है। यह द्युलोकके उच्च स्थानपर रहता हुआ सबमें व्यापता है ॥ १६ ॥

हे वाणीके स्वामी! हमारे लिये पृथ्वी, घर, बिछोना आदि सब पदार्थ सुख-दायक हों। हममें प्राण दीर्घकालतक रहे और हमें वह दीर्घ आयु और तेजके साथ प्राप्त हो ॥ १७ ॥

वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥
वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥१९॥
परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥ २० ॥ (२)

अर्थ- हे वाचस्पते! (ये नौ विश्वकर्मणाः पंच ऋतवः परि संबभूवुः) जो हमारे संपूर्ण कर्मोंका साधन करनेवाले पांच ऋतु उत्पन्न हुए हैं। यहां हि प्राण हमारे सख्यमें रहें। हे परमेष्ठिन्! उस तुझको यह (रोहितः) सूर्य आयु और तेजके साथ धारण करे॥ १८॥

हे वाचस्पते! हमारा (मनः सौमनसं) मन उत्तम शुभसंकल्पयुक्त हो। (नः गोष्ठे गाः जनय) हमारी गोशालामें गौको उत्पन्न कर और (योनिषु प्रजाः) घरोंमें संतानोंको उत्पन्न कर। यहां हमारे सख्यमें यह प्राण रहे। हे परमेष्ठिन्! उस तुझको (अहं) मैं आयु और तेजके साथ (दधामि) धारण करता हूं॥ १९॥

(सविता देवः त्वा परि धात्) सविता देव तेरे चारों ओर रहे। (अग्निः वर्चसा, मित्रावरुणौ त्वा अभि) अग्नि अपने तेजसे और मित्र तथा वरुण तेरी चारों ओरसे रक्षा करें।(सर्वाः अरातीः अवक्रामन् एहि) सब शत्रुओंके ऊपर चढाई करते हुए आगे बढ तथा (इदं राष्ट्रं सूनृतावत् अकरः) इस राष्ट्रको आनंदपूर्ण कर॥ २०॥

भावार्थ- जो विविध कर्म करनेवाले ऋतु हैं, वे हमें सहायक हों, उनसे हमें दीर्घ आयु और तेजस्विता प्राप्त हो॥ १८॥

हमारा मन शुभसंकल्प करनेवाला बने, हमारी गौशाला में विपुल गौवें और घरमें वीर संतान हों। मैं परमात्माका धारण दीर्घायु और तेजस्विताके साथ करता हूं॥ १९॥

सब देव हमें सहायक हों। सब शत्रु परास्त हों और यह हमारा राष्ट्र आनंद-प्रसन्नतासे युक्त हो॥ २०॥

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित। शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥
अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥ २२ ॥
इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥ २३ ॥
सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम्।

अर्थ- हे (रोहित) सूर्य ! (यं त्वा पृषतीः पृष्टिः वहति) जिस तुझको विविध रंगवाली घोडी ले जाती है, वह तू (अपः रिणन् शुभा यासि) पानीको चलाता हुआ प्रकाशके साथ शुभ रीतिसे चलता है ॥ २१ ॥

(रोहितस्य अनुव्रता) सूर्यके अनुकूल चलनेवाली (सूरिः सुवर्णा सुवर्चाः बृहती रोहिणी) ज्ञानी, उत्तम रंगवाली, तेजस्विनी बडी रोहिणी है। उससे (विश्वरूपान् वाजान् जयेम) हम अनेक प्रकारसे अन्न प्राप्त करेंगे और (विश्वाः पृतनाः अभिष्याम) सब शत्रुओंकी सेनाओंको परास्त करेंगे ॥ २२ ॥

(इदं रोहितस्य सदः रोहिणी) यह सूर्यका घर रोहिणी है। (असौ पन्थाः येनं पृषती याति) यह मार्ग है जिससे उसकी विविधरंगवाली घोडी जाती है। (तां गन्धर्वाः कश्यपाः उन्नयंति) उसको गंधर्व और कश्यप उन्नत करते हैं, (कवयः तां अप्रमादं रक्षन्ति) ज्ञानी प्रमादरहित होकर उसकी रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥

(केतुमन्तः अमृताः हरयः अश्वाः सूर्यस्य रथं सदा सुखं वहन्ति) प्रकाशयुक्त अमर गतिमान् घोडे सूर्यके रथको सदा सुखपूर्वक चलाते हैं।

भावार्थ-सूर्यसे विविध रंगवाली किरणें सूर्यतत्त्वको यहांतक लाती है, जिससे हमें प्रकाश मिलता है ॥ २१ ॥

सूर्यप्रकाशमें बढानेकी शक्ति है, उससे हमें अनेक प्रकारके अन्न और बल प्राप्त होते है ॥ २२ ॥

सूर्य ही इस अद्भुत शक्तिका घर है, सब विविध रंगवाली किरणोंसे वह शक्ति फैलती है। ज्ञानी लोग विशेष दक्षतासे उसीको अपने अंदर धारण करते हैं ॥ २३ ॥

ये प्रकाशमान अद्भुत अमर शक्तिसे युक्त सूर्यकिरण सदा सुखदायक हैं। इन

वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥
वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥१९॥
परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥ २० ॥ (२)

अर्थ– हे वाचस्पते ! (ये नौ विश्वकर्मणाः पंच ऋतवः परि संबभूवुः) जो हमारे संपूर्ण कर्मोंका साधन करनेवाले पांच ऋतु उत्पन्न हुए हैं। यहां हि प्राण हमारे सख्यमें रहें। हे परमेष्ठिन् ! उस तुझको यह (रोहितः) सूर्य आयु और तेजके साथ धारण करे ॥ १८ ॥

हे वाचस्पते ! हमारा (मनः सौमनसं) मन उत्तम शुभसंकल्पयुक्त हो। (नः गोष्ठे गाः जनय) हमारी गोशालामें गौको उत्पन्न कर और (योनिषु प्रजाः) घरोंमें संतानोंको उत्पन्न कर। यहां हमारे सख्यमें यह प्राण रहे। हे परमेष्ठिन् ! उस तुझको (अहं) मैं आयु और तेजके साथ (दधामि) धारण करता हूं ॥ १९ ॥

(सविता देवः त्वा परि धात्) सविता देव तेरे चारों ओर रहे। (अग्निः वर्चसा, मित्रावरुणौ त्वा अभि) अग्नि अपने तेजसे और मित्र तथा वरुण तेरी चारों ओरसे रक्षा करें। (सर्वाः अरातीः अवक्रामन् एहि) सब शत्रु-ओंके ऊपर चढाई करते हुए आगे बढ तथा (इदं राष्ट्रं सूनृतावत् अकरः) इस राष्ट्रको आनंदपूर्ण कर ॥ २० ॥

भावार्थ– जो विविध कर्म करनेवाले ऋतु हैं, वे हमें सहायक हों, उनसे हमें दीर्घ आयु और तेजस्विता प्राप्त हो ॥ १८ ॥

हमारा मन शुभसंकल्प करनेवाला बने, हमारी गौशाला में विपुल गौवें और घरमें वीर संतान हों। मैं परमात्माका धारण दीर्घायु और तेजस्विताके साथ करता हूं ॥ १९ ॥

सब देव हमें सहायक हों। सब शत्रु परास्त हों और यह हमारा राष्ट्र आनंद-प्रसन्नतासे युक्त हो ॥ २० ॥

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित। शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥
अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥ २२ ॥
इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥ २३ ॥
सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम्।

अर्थ- हे (रोहित) सूर्य ! (यं त्वा पृषती: प्रष्टिः वहति) जिस तुझको विविध रंगवाली घोडी ले जाती है, वह तू (अपः रिणन् शुभा यासि) पानीको चलाता हुआ प्रकाशके साथ शुभ रीतिसे चलता है ॥ २१ ॥

(रोहितस्य अनुव्रता) सूर्यके अनुकूल चलनेवाली (सूरिः सुवर्णा सुवर्चाः बृहती रोहिणी) ज्ञानी, उत्तम रंगवाली, तेजस्विनी बडी रोहिणी है। उससे (विश्वरूपान् वाजान् जयेम) हम अनेक प्रकारके अन्न प्राप्त करेंगे और (विश्वाः पृतनाः अभिष्याम) सब शत्रुओंकी सेनाओंको परास्त करेंगे ॥ २२ ॥

(इदं रोहितस्य सदः रोहिणी) यह सूर्यका घर रोहिणी है। (असौ पन्थाः येन पृषती याति) यह मार्ग है जिससे उसकी विविधरंगवाली घोडी जाती है। (तां गन्धर्वाः कश्यपाः उन्नयंति) उसको गंधर्व और कश्यप उन्नत करते हैं. (कवयः तां अप्रमादं रक्षन्ति) ज्ञानी प्रमादरहित होकर उसकी रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥

(केतुमन्तः अमृताः हरयः अश्वाः सूर्यस्य रथं सदा सुखं वहन्ति) पताकायुक्त अमर गतिमान घोडे सूर्यके रथको सदा सुखपूर्वक चलाते हैं।

भावार्थ—सूर्यने विविध रंगवाली किरणे [illegible] है, जिससे हमें प्रकाश मिलता है ॥ २१ ॥

सूर्यप्रकाशमें चलानेकी शक्ति है, उससे हमें अनेक प्रकारके [illegible] और [illegible] प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

सूर्य ही इस [illegible] है, [illegible] विविध रंगवाली [illegible] है। ज्ञानी लोग [illegible] ॥ २३ ॥

[illegible]

वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥
वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥१९॥
परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥ २० ॥ (२)

अर्थ– हे वाचस्पते ! (ये नौ विश्वकर्मणाः पंच ऋतवः परि संबभूवुः) जो हमारे संपूर्ण कर्मोंका साधन करनेवाले पांच ऋतु उत्पन्न हुए हैं। यहां हि प्राण हमारे सख्यमें रहें। हे परमेष्ठिन् ! उस तुझको यह (रोहितः) सूर्य आयु और तेजके साथ धारण करे ॥ १८ ॥

हे वाचस्पते ! हमारा (मनः सौमनसं) मन उत्तम शुभसंकल्पयुक्त हो। (नः गोष्ठे गाः जनय) हमारी गोशालामें गौको उत्पन्न कर और (योनिषु प्रजाः) घरोंमें संतानोंको उत्पन्न कर। यहां हमारे सख्यमें यह प्राण रहे। हे परमेष्ठिन् ! उस तुझको (अहं) मैं आयु और तेजके साथ (दधामि) धारण करता हूं ॥ १९ ॥

(सविता देवः त्वा परि धात्) सविता देव तेरे चारों ओर रहे। (अग्निः वर्चसा, मित्रावरुणौ त्वा अभि) अग्नि अपने तेजसे और मित्र तथा वरुण तेरी चारों ओरसे रक्षा करें। (सर्वाः अरातीः अवक्रामन् एहि) सब शत्रुओंके ऊपर चढाई करते हुए आगे बढ तथा (इदं राष्ट्रं सूनृतावत् अकरः) इस राष्ट्रको आनंदपूर्ण कर ॥ २० ॥

भावार्थ– जो विविध कर्म करनेवाले ऋतु हैं, वे हमें सहायक हों, उनसे हमें दीर्घ आयु और तेजस्विता प्राप्त हो ॥ १८ ॥

हमारा मन शुभसंकल्प करनेवाला बने, हमारी गौशाला में विपुल गौवें और घरमें वीर संतान हों। मैं परमात्माका धारण दीर्घायु और तेजस्विताके साथ करता हूं ॥ १९ ॥

सब देव हमें सहायक हों। सब शत्रु परास्त हों और यह हमारा राष्ट्र आनंद-प्रसन्नतासे युक्त हो ॥ २० ॥

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित । शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥
अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥ २२ ॥
इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥ २३ ॥
सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।

अर्थ– हे (रोहित) सूर्य! (यं त्वा पृषतीः पृष्टिः वहति) जिस तुझको विविध रंगवाली घोडी ले जाती है, वह तू (अपः रिणन् शुभा यासि) पानीको चलाता हुआ प्रकाशके साथ शुभ रीतिसे चलता है ॥ २१ ॥

(रोहितस्य अनुव्रता) सूर्यके अनुकूल चलनेवाली (सूरिः सुवर्णा सुवर्चाः बृहती रोहिणी) ज्ञानी, उत्तम रंगवाली, तेजस्विनी बडी रोहिणी है। उससे (विश्वरूपान् वाजान् जयेम) हम अनेक प्रकारसे अन्न प्राप्त करेंगे और (विश्वाः पृतनाः अभिष्याम) सब शत्रुओंकी सेनाओंको परास्त करेंगे ॥ २२ ॥

(इदं रोहितस्य सदः रोहिणी) यह सूर्यका घर रोहिणी है। (असौ पन्थाः येन पृषती याति) यह मार्ग है जिससे उसकी विविधरंगवाली घोडी जाती है। (तां गन्धर्वाः कश्यपाः उन्नयंति) उसको गंधर्व और कश्यप उन्नत करते हैं, (कवयः तां अप्रमादं रक्षन्ति) ज्ञानी प्रमादरहित होकर उसकी रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥

(केतुमन्तः अमृताः हरयः अश्वाः सूर्यस्य रथं सदा सुखं वहन्ति) प्रकाशयुक्त अमर गतिमान् घोडे सूर्यके रथको सदा सुखपूर्वक चलाते हैं।

भावार्थ–सूर्यसे विविध रंगवाली किरणें सूर्यतत्त्वको यहांतक लाती हैं, जिनसे हमें प्रकाश मिलता है ॥ २१ ॥

सूर्यप्रकाशमें बढानेकी शक्ति है, उससे हमें अनेक प्रकारके अन्न और बल प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

सूर्य ही इस अद्भुत शक्तिका घर है, तब विविध रंगवाली किरणोंसे वह शक्ति फैलती है। ज्ञानी लोग विशेष दक्षतासे उसीको अपने अंदर धारण करते हैं ॥ २३ ॥

ये प्रकाशमान अद्भुत अमर शक्तिसे युक्त सूर्यकिरण सदा सुखदायक हैं। इन

वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥
वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥१९॥
परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥ २० ॥ (२)

अर्थ– हे वाचस्पते ! (ये नौ विश्वकर्मणाः पंच ऋतवः परि संबभूवुः) जो हमारे संपूर्ण कर्मोंका साधन करनेवाले पांच ऋतु उत्पन्न हुए हैं। यहां हि प्राण हमारे सख्यमें रहें। हे परमेष्ठिन् ! उस तुझको यह (रोहितः) सूर्य आयु और तेजके साथ धारण करे ॥ १८ ॥

हे वाचस्पते ! हमारा (मनः सौमनसं) मन उत्तम शुभसंकल्पयुक्त हो। (नः गोष्ठे गाः जनय) हमारी गोशालामें गौको उत्पन्न कर और (योनिषु प्रजाः) घरोंमें संतानोंको उत्पन्न कर। यहां हमारे सख्यमें यह प्राण रहे। हे परमेष्ठिन् ! उस तुझको (अहं) मैं आयु और तेजके साथ (दधामि) धारण करता हूं ॥ १९ ॥

(सविता देवः त्वा परि धात्) सविता देव तेरे चारों ओर रहे। (अग्निः वर्चसा, मित्रावरुणौ त्वा अभि) अग्नि अपने तेजसे और मित्र तथा वरुण तेरी चारों ओरसे रक्षा करें। (सर्वाः अरातीः अवक्रामन् एहि) सब शत्रुओंके ऊपर चढाई करते हुए आगे बढ तथा (इदं राष्ट्रं सूनृतावत् अकरः) इस राष्ट्रको आनंदपूर्ण कर ॥ २० ॥

भावार्थ– जो विविध कर्म करनेवाले ऋतु हैं, वे हमें सहायक हों, उनसे हमें दीर्घ आयु और तेजस्विता प्राप्त हो ॥ १८ ॥

हमारा मन शुभसंकल्प करनेवाला बने, हमारी गौशाला में विपुल गौवें और घरमें वीर संतान हों। मैं परमात्माका धारण दीर्घायु और तेजस्विताके साथ करता हूं ॥ १९ ॥

सब देव हमें सहायक हों। सब शत्रु परास्त हों और यह हमारा राष्ट्र आनंद-प्रसन्नतासे युक्त हो ॥ २० ॥

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित । शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥
अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥ २२ ॥
इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥ २३ ॥
सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।

अर्थ– हे (रोहित) सूर्य ! (यं त्वा पृषतीः पृष्टिः वहति) जिस तुझको विविध रंगवाली घोडी ले जाती है, वह तू (अपः रिणन् शुभा यासि) पानीको चलाता हुआ प्रकाशके साथ शुभ रीतिसे चलता है ॥ २१ ॥

(रोहितस्य अनुव्रता) सूर्यके अनुकूल चलनेवाली (सूरिः सुवर्णा सुवर्चाः बृहती रोहिणी) ज्ञानी, उत्तम रंगवाली, तेजस्विनी बडी रोहिणी है। उससे (विश्वरूपान् वाजान् जयेम) हम अनेक प्रकारसे अन्न प्राप्त करेंगे और (विश्वाः पृतनाः अभिष्याम) सब शत्रुओंकी सेनाओंको परास्त करेंगे ॥ २२ ॥

(इदं रोहितस्य सदः रोहिणी) यह सूर्यका घर रोहिणी है। (असौ पन्थाः येन पृषती याति) यह मार्ग है जिससे उसकी विविधरंगवाली घोडी जाती है। (तां गन्धर्वाः कश्यपाः उन्नयंति) उसको गंधर्व और कश्यप उन्नत करते हैं, (कवयः तां अप्रमादं रक्षन्ति) ज्ञानी प्रमादरहित होकर उसकी रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥

(केतुमन्तः अमृताः हरयः अश्वाः सूर्यस्य रथं सदा सुखं वहन्ति) प्रकाशयुक्त अमर गतिमान् घोडे सूर्यके रथको सदा सुखपूर्वक चलाते हैं।

भावार्थ–सूर्यकी विविध रंगवाली किरणें सूर्यतत्त्वको यहांतक लाती हैं, जिनसे हमें प्रकाश मिलता है ॥ २१ ॥

सूर्यप्रकाशमें चलानेकी शक्ति है, उससे हमें अनेक प्रकारके अन्न और बल प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

सूर्य ही इस अद्भुत शक्तिका घर है, यह विविध रंगवाली किरणोंसे वह शक्ति फैलती है। ज्ञानी लोग विशेष दक्षतासे उसीको अपने अंदर धारण करते हैं ॥ २३ ॥

ये प्रकाशमान अद्भुत अमर गतिसे युक्त सूर्यकिरण सदा सुखदायक हैं। इन

घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥ २४ ॥
यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव ।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥ २५ ॥
रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात् । सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥ २६ ॥
वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा ।
इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥ २७ ॥

(घृतपावा भ्राजमानः देवः रोहितः इमा पृषती दिवं विवेश) घृतसे पवित्र करनेवाला तेजस्वी सूर्यदेव इस विविध रंगवाली प्रभा समेत द्युलोकमें प्रविष्ट होता है ॥ २४ ॥

(यः तिग्मशृंगः वृषभः रोहितः) जो तीक्ष्ण सींगवाला बलवान् रोहित (अग्निं परि, सूर्यं परि बभूव) अग्नि और सूर्यके चारों ओर होता है। (यः पृथिवीं दिवं च विष्टभ्नाति] जो पृथ्वी और द्युलोकको थाम रखता है [तस्मात् देवाः सृष्टीः अधिसृजन्ते] उससे देव सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं ॥ २५ ॥

[महतः अर्णवात् रोहितः दिवं परि आरुहत्] बडे समुद्रसे सूर्य द्युलोकसे भी ऊपर चढा है। [रोहितः सर्वाः रुहः रुरोह] यह सूर्य सब उच्चताओंपर चढा है ॥ २६ ॥

[पयस्वतीं घृताचीं वि मिमीष्व] दूधवाली और घीवाली गौको सिद्ध करो, [एषा देवानां धेनुः अनपस्पृक्] यह देवोंकी गौ हलचल न करनेवाली है। [इन्द्रः सोमं पिबतु] इन्द्र सोम पीवे, [क्षेमः अस्तु] सबका क्षेम हो,[अग्निः प्र स्तौतु] अग्नि स्तुति करे,[मृधः विनुदस्व] शत्रुओंको दूर कर ॥ २७ ॥

पुष्टिकारक किरणोंसे युक्त सूर्य इस द्युलोक में प्रकाशता है ॥ २४ ॥

यह तीक्ष्ण किरणवाला बलवान् सूर्य चारों ओर घूमकर सब जगत् के पदार्थोंका धारण करता है ॥ २५ ॥

सूर्य उदय होनेपर आकाशके मध्यतक उपर चढता है, और वहांसे सबके ऊपर प्रकाशता है ॥ २६ ॥

उत्तम दूध और घी देनेवाली गौवें पालीं जांय, उनके दूध घी का यज्ञमें हवन

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित। शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥
अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥ २२ ॥
इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥ २३ ॥
सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम्।

अर्थ- हे (रोहित) सूर्य! (यं त्वा पृषतीः पृष्टिः वहति) जिस तुझको विविध रंगवाली घोडी ले जाती है, वह तू (अपः रिणन् शुभा यासि) पानीको चलाता हुआ प्रकाशके साथ शुभ रीतिसे चलता है ॥ २१ ॥

(रोहितस्य अनुव्रता) सूर्यके अनुकूल चलनेवाली (सूरिः सुवर्णा सुवर्चाः बृहती रोहिणी) ज्ञानी, उत्तम रंगवाली, तेजस्विनी बडी रोहिणी है। उससे (विश्वरूपान् वाजान् जयेम) हम अनेक प्रकारसे अन्न प्राप्त करेंगे और (विश्वाः पृतनाः अभिष्याम) सब शत्रुओंकी सेनाओंको परास्त करेंगे ॥ २२ ॥

(इदं रोहितस्य सदः रोहिणी) यह सूर्यका घर रोहिणी है। (असौ पन्थाः येनं पृषती याति) यह मार्ग है जिससे उसकी विविधरंगवाली घोडी जाती है। (तां गन्धर्वाः कश्यपाः उन्नयंति) उसको गंधर्व और कश्यप उन्नत करते हैं. (कवयः तां अप्रमादं रक्षन्ति) ज्ञानी प्रमादरहित होकर उसकी रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥

(केतुमन्तः अमृताः हरयः अश्वाः सूर्यस्य रथं सदा सुखं वहन्ति) प्रकाशयुक्त अमर गतिमान् घोडे सूर्यके रथको सदा सुखपूर्वक चलाते हैं।

भावार्थ—सूर्यसे विविध रंगवाली किरणें सूर्यतत्त्वको यहांतक लाती हैं, जिनसे हमें प्रकाश मिलता है ॥ २१ ॥

सूर्यप्रकाशमें हटानेकी शक्ति है, उससे हमें अनेक प्रकारके अन्न और बल प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

सूर्य ही इस अद्भुत शक्तिका घर है, सब विविध रंगवाली किरणोंसे वह शक्ति फैलती है। ज्ञानी लोग विशेष दक्षतासे उनको अपने अंदर धारण करते हैं ॥ २३ ॥

ये प्रकाशमान अद्भुत अमर गतिसे युक्त सूर्यकिरण सदा सुखदायक हैं। इन

उ॒द्यंस्त्वं दे॑व सूर्य स॒पत्ना॑नव॑ मे जहि ।
अवै॑ना॒नश्म॑ना जहि॒ ते य॑न्त्वध॒मं तमः॑ ॥ ३२ ॥
व॒त्सो वि॒राजो॑ वृष॒भो म॑ती॒नामा रु॑रोह शु॒क्रपृ॑ष्ठो॒ऽन्तरि॑क्षम् ।
घृ॒तेना॒र्कम॒भ्य॑र्चन्ति व॒त्सं ब्रह्म॒ सन्तं॒ ब्रह्म॑णा वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥
दिवं॑ च॒ रोह॑ पृथि॒वीं च॑ रोह रा॒ष्ट्रं च॒ रोह॒ द्रवि॑णं च रोह ।
प्र॒जां च॒ रोहा॒मृतं॑ च रोह॒ रोहि॑तेन त॒न्वं१॑ सं स्पृ॑शस्व ॥ ३४ ॥

प्रति-मन्यूयमानाः अधरे पद्यन्ताम्) हमारे शत्रु निष्फल क्रोधवाले होकर नीचे गिर जांय ॥ ३१ ॥

हे सूर्यदेव ! (त्वं उद्यन् मे सपत्नान् अवजहि) तू उगता हुआ मेरे शत्रुओंका नाश कर। (एनान् अश्मना अवजहि)इन शत्रुओंका पत्थरसे नाश कर। (ते अधमं तमः यन्तु) वे गहरे अंधेरेमें जावें ॥ ३२ ॥

(विराजः वत्सः मतीनां वृषभः शुक्रपृष्ठः अन्तरिक्षं आ रुरोह) विराट्का बच्चा, मतियोंको बढानेवाला बलशाली पीठवाला होकर अन्तरिक्षपर चढा है। (घृतेन वत्सं अर्कं अभि अर्चन्ति) घीसे बच्चारूपी सूर्यकी पूजा करते हैं। वह स्वयं (ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति) ब्रह्म होता हुआ भी उसीको ब्रह्म नाम स्तुतियोंसे बढाते हैं ॥ ३३ ॥

(दिवं च रोह, पृथिवीं च रोह) द्युलोक पर चढ और पृथ्वीपर चढ। (राष्ट्रं च रोह, द्रविणं च रोह) राष्ट्रपर चढ और धनपर चढ। (प्रजां च रोह, अमृतं च रोह) प्रजा और अमरपनपर चढ, (रोहितेन तन्वं

भावार्थ-यदि बाहरका शत्रु सेना लेकर अपने ऊपर आगया तो वीर लोग उसको परास्त करके भगा देवें। अपने अंदरके जो शत्रु होंगे, उनको भी वशमें रखना चाहिये। कोई शत्रु सिर ऊपर न कर सके ॥ २९-३१ ॥

परमेश्वर कृपा करे और हमारे शत्रुओंका बल कम करे। शत्रु नीच स्थानमें भाग जावें ॥ ३२ ॥

सूर्य बलवर्धक, बुद्धिवर्धक है। उसीका बच्चा अग्नि है। अग्निमें घीके हवन करनेसे उसकी पूजा होती है। सूर्य स्वयं ब्रह्मका दृश्यरूप है और वही ब्रह्म नाम मंत्रसे स्तुतियोंद्वारा बढाया जाता है ॥ ३३ ॥

स्वर्ग, पृथ्वी, राष्ट्र, धन, प्रजा, अमरपन आदि विषयमें प्रगति संपादन करना

समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥ २८ ॥
हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥ २९ ॥
अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।
अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥ ३० ॥ (३)
अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते ।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥ ३१ ॥

अर्थ-(अग्निः समिद्धः घृतवृद्धः घृताहुतः समिधानः) अग्नि उत्तम प्रदीप्त होनेपर घी की आहुतियां डालकर बढाया हुआ अच्छी प्रकार जलने लगा है। वह (अभीषाड् विश्वाषाड् अग्निः ये मम सपत्नान् हन्तु) सर्वत्र विजय करके शत्रुओंको दूर करनेवाला अग्नि जो मेरे शत्रु हैं, उन सबका नाश करे ॥ २८ ॥

(यः अरिः नः पृतन्यति) जो शत्रु हमपर सेना चलाकर हमला करता है (एनान् हन्तु, प्रदहतु) इन शत्रुओंको मारे, अच्छी प्रकार भस्म करे। (क्रव्यादा अग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि) मांसभक्षक अग्निद्वारा हम शत्रुओंको भस्म करते हैं ॥ २९ ॥

हे इन्द्र ! (वज्रेण बाहुमान् अवाचीनान् अवजहि) वज्रसे बहुत सामर्थ्यवान् होकर शत्रुओंको नीचे दबाकर मार दे। (अधा मामकान् सपत्नान् अग्नेः तेजोभिः आदिषि) और मेरे शत्रुओंको अग्निके तेजोंसे अपने वशमें करता हूं ॥ ३० ॥

हे अग्ने ! (सपत्नान् अस्मद् अधरान् पादय) हमारे शत्रुओंको हमारे सन्मुख नीचे गिराओ। हे बृहस्पते ! (उत्पिपानं सजातं व्यथय) कष्ट देनेवाले सजातीय शत्रुको व्यथा कर। हे इन्द्राग्नी ! हे मित्रावरुणो ! (अ–

किया जावे। दही दूध आदिके साथ सोम रस पीया जावे। इससे सबका कल्याण हो और यह यज्ञ द्वारा उपासना सबका भला करे ॥ २७ ॥

अग्निमें घीका हवन हो, अग्नि उपासनामें समाज की संघटना हो और सब मिलकर अपने शत्रुओंको दूर भगा देवें ॥ २८ ॥

यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेहं भूयासं सवितेव चारुः ॥ ३८ ॥
अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥
देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४० ॥ (४)
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।

अर्थ— (प्रदिशः दिशः चः यशाः यासि) दिशा और उपदिशाओंमें यशस्वी होकर तू जाता है। (पशूनां उत चर्षणीनां यशाः) पशु और प्रजाओंमें यशस्वी होकर तू जाता है। (पृथिव्याः अदित्याः उपस्थे यशाः) पृथ्वीके ऊपर और अदितिकी गोद में यशस्वी होकर (अहं सविता इव चारुः भूयासं) मैं ऐसे सविताके समान सुंदर बनूं ॥ ३८ ॥

(अमुत्र सन् इह वेत्थ, इतः सन् तानि पश्यसि) वहां रहकर यहां का ज्ञान प्राप्त करते और यहां रहकर उनको देखते हैं। (इतः दिवि रोचनं विपश्चितं सूर्यं पश्यन्ति) यहांसे द्युलोकमें प्रकाशमान ज्ञानी सूर्यको देखते हैं ॥ ३९ ॥

(देवः देवान् मर्चयसि, अर्णवे अन्तः चरसि) प्रकाशमान होकर अन्य प्रकाशकोंको शुद्ध करता है, समुद्रके अन्दर संचार करते हैं (समानं अग्निं इंधते) समान तेजस्वी अग्निको प्रदीप्त करता है। (कवयः तं परे विदुः) ज्ञानी उसको परे जानते हैं ॥ ४० ॥

(एना गौः अवः परेण, परः अवरेण पदा वत्सं बिभ्रती) यह गाय निम्न स्थानवालेको दूरके पदसे और परवालेको पासवाले पदसे बछडेका धारण करती हुई (उत् अस्थात्) ऊपर उठती है। (सा कद्रीची कं स्विद्

दिशा, उपदिशा, पशु, प्रजाजन, भूमि, आदि सबका यश केवल सूर्य है। सूर्यको आदर्श मानकर सब लोग सूर्यके समान सुंदर बनें ॥ ३८ ॥

सूर्य दूरदूरका भी देखता है। द्युलोकमें रहता हुआ सर्वत्र प्रकाशता है ॥ ३९ ॥

सूर्य सब अन्य प्रकाशकेन्द्रोंको भी प्रकाशित करता है। उसके उदयसे अग्नि प्रदीप्त होता है। ज्ञानी लोग सूर्यको ही श्रेष्ठ मानते हैं ॥ ४० ॥

ये देवा राष्ट्रभृतोभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥ ३५ ॥
उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।
तिरः समुद्रमति रोचसेर्णवम् ॥ ३६ ॥
रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ ३७॥

सं स्पृशस्व] अपने लालवर्णसे मेरे शरीरको पूर्ण कर ॥ ३४ ॥

[ये राष्ट्रभृतः देवाः सूर्य अभितः यन्ति] जो राष्ट्रपोषक देव सूर्यके चारों ओर घूमते हैं, [तैः संविदानः रोहितः सुमनस्यमानः ते राष्ट्रं दधातु] उनके साथ मिला हुआ रोहित सुप्रसन्न होकर तेरे राष्ट्रका धारण करे॥३५॥

[ब्रह्मपूताः यज्ञाः त्वा उत् वहन्ति] मंत्रसे पवित्र हुए यज्ञ तुझे ऊपर उठाते हैं। [अध्वगतः हरयः त्वा वहन्ति] मार्गसे जानेवाले घोडे तुझे ले चलते हैं। [समुद्रं अर्णवं तिरः अति रोचसे] समुद्र महासागर तू अति प्रकाशित करता है ॥ ३६ ॥

[वसुजिति गोजिति संधनाजिति रोहिते द्यावापृथिवी अधिश्रिते] धन, गौवें और ऐश्वर्य प्राप्त करनेवाले सूर्यके आश्रयसे द्युलोक और भूलोक ठहरे हैं। [यस्य सहस्रं सप्त च जनिमानि] जिस तेरे हजार और सात जन्म हैं। [भुवनस्य मज्मनि अधि ते नाभिं वोचेयं] इस जगत् की महिमामें तेरा हि केन्द्र है, ऐसा मैं कहूंगा ॥ ३७ ॥

चाहिये। इस कार्य करनेका बल प्राप्त करना हो तो सूर्यप्रकाशमें अपने शरीरका संबंध जोड दो. जिससे विलक्षण बल प्राप्त होकर उक्त कार्य सिद्ध होगा ॥ ३४ ॥

राष्ट्रका भरणपोषण करनेवाले देव सूर्यकी उपासना करते हैं, इसलिये सूर्यके प्रकाशमें रहते हैं। वे बल प्राप्त करते हैं, मन सुसंस्कृत करते हैं, राष्ट्र धारण करने योग्य बनते हैं ॥ ३५ ॥

सूर्य उदय होते ही मंत्रघोष और यज्ञ प्रारंभ होते हैं। सूर्यकिरण सर्वत्र फैलते हैं और समुद्रतक सब भूमिपर प्रकाश होता है ॥ ३६ ॥

धन, गौवें और ऐश्वर्य सूर्यसे संबंधित है। इसके हजारों प्रकार हैं. इन [illegible] केंद्र सूर्य ही है ॥ ३७॥

यत् ते॑ स॒धस्थं॑ पर॒मे व्यो॑मन् ॥ ४४ ॥
सूर्यो॒ द्यां सूर्यः॑ पृथि॒वीं सूर्य॒ आपोऽति॑ पश्यति ।
सूर्यो॑ भूतस्यैकं॒ चक्षु॒रा रु॑रोह॒ दिवं॑ म॒हीम् ॥ ४५ ॥
उ॒र्वीरा॑सन् परि॒धयो॒ वेदि॒र्भूमि॑रकल्पयत् ।
तत्रै॒ताव॒ग्नी आध॑त्त हि॒मं घ्रंसं॑ च॒ रोहि॑तः ॥ ४६ ॥
हि॒मं घ्रंसं॑ चा॒धाय॒ यूपा॑न् कृ॒त्वा पर्व॑तान् ।
व॒र्षाज्या॑व॒ग्नी ई॑जाते॒ रोहि॑तस्य स्व॒र्विदः॑ ॥ ४७ ॥
स्व॒र्विदो॒ रोहि॑तस्य॒ ब्रह्म॑णा॒ग्निः समि॑ध्यते ।

है और (यत् ते परमे व्योमन् सधस्थं) जो तेरा परले आकाशमें स्थान है (तत् ते वेद) तेरा वह तुझे विदित है ॥ ४४ ॥

(सूर्यः द्यां, सूर्यः पृथिवीं, सूर्यः आपः अति पश्यति) सूर्य द्युलोक पृथ्वी और जल को अत्यंत पूर्णतासे देखता है। (सूर्यः भुवनस्य एकः चक्षुः मही दिवं आरुरोह) सूर्य सब भुवनका एकमात्र नेत्र है, वह बडे द्युलोक पर आरूढ हुआ है ॥ ४५ ॥

(उर्वीः परिधयः आसन्) बडी परिधियें थीं, (भूमिः वेदिः अकल्पयत्) भूमि वेदि बनायी गयी। (तत्र रोहितः हिमं घ्रंसं च एतौ अग्नी आधत्त) वहां सूर्यने शीत और उष्ण ये अग्नी रखे ॥ ४६ ॥

(हिमं घ्रंसं च आधाय, पर्वतान् यूपान् कृत्वा) शीत और उष्ण ऋतु बनाकर, पर्वतोंको यूप बनाकर, (वर्षाज्यौ अग्नी स्वर्विदः रोहितस्य ईजाते) वर्षारूप घृतको प्राप्त करनेवाले ये दोनों अग्नि आत्मज्ञ रोहित देवके लिये यज्ञ करते हैं ॥ ४७ ॥

(स्वर्विदः रोहितस्य ब्रह्मणा अग्निः समिध्यते) आत्मज्ञानी सूर्यके

भावार्थ—सूर्यका द्युलोकमें स्थान, उसका महत्त्व यह सब ज्ञानी लोग जानते हैं ॥४४॥

सूर्य द्युलोक, आकाश, पृथ्वी, आप आदिको देखता है। सूर्यही सबका प्रकाशक है। वह पृथ्वी और आकाशको प्रकाशित करता है ॥ ४५ ॥

इस यज्ञका प्रारंभ भूमिरूपी वेदीपर हुआ। इसकी परिधियें बडीं विस्तृत थीं। शीतकाल और उष्णकाल ये दो अग्नि इस यज्ञमें थे ॥ ४६ ॥

पर्वत यूप बनाये गये, वृष्टि घीका कार्य करने लगी, और मंत्रपाठपूर्वक यह

सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥ ४१ ॥
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥ ४२ ॥
आरोहन् द्यामृतः प्राव मे वचः ।
उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥ ४३ ॥
वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमणं दिवि ।

अर्धं परा अगात्) वह कहांसे आती है और किस अर्धभागके पास जाती है ? वह (क्व स्वित् सूते) कहां प्रसूत होती है ? (अस्मिन् यूथे न) इस संघमें तो नहीं होती ॥ ४१॥ (ऋ० १।१६४।१७; अथर्व० ९।९।१७)

(सा एकपदी द्विपदी चतुष्पदी अष्टापदी नवपदी बभूवुषी) वह एक दो चार आठ और नौ पादवाली तथा बहुत होनेकी इच्छा करनेवाली (सहस्राक्षरा भुवनस्य पंक्तिः) हजारों अक्षरोंवाली भुवनकी पंक्ति है। (तस्याः समुद्राः अधि विक्षरन्ति) उससे सब समुद्रके रस बहते हैं ॥४२॥ (ऋ० १।१६४।४१; अथर्व० ९।१०।२१)

(अमृतः द्यां आरोहन् मे वचः प्र अव) तू अमर देव द्युलोक पर आरूढ होकर मेरे भाषण की रक्षा कर। (त्वा ब्रह्मपूताः यज्ञाः उत् वहन्ति) तुझे मंत्रसे पवित्र हुए यज्ञ बढाते हैं, तथा (अध्वगतः हरयः त्वा वहन्ति) मार्गस्थ घोडे तुझे ले चलते है ॥४३॥

हे (अमर्त्य) देव! (यत् ते दिवि आक्रमणं) जो तेरा द्युलोकमें आक्रमण

भावार्थ—यह गौ अपने दूरके पदसे पासवाले और पासवाले पदसे दूरके बच्चेको धारण पोषण करती है। यह कहांसे आगई, कि आधे भागके पास पहुंचती है, कहां प्रसूत होती है, इसको जानना चाहिये। वह इस संघमें तो नहीं रहती ॥ ४१ ॥

यह वाणीरूपी गौ अर्थात् काव्यमयी वाणी एक, दो, चार, आठ अथवा नौ पादोंवाले छन्दोंमें विभक्त हुई है। यह अनेक प्रकारकी है और हजार अक्षरों तक इसकी मर्यादा है। मानो यह सब भुवनोंको पूर्ण करनेवाली है और इससे विविध काव्यरस स्रवते हैं ॥ ४२ ॥

सूर्य वाणीका रक्षक है, आकाशमें चढकर सबको सामर्थ्य देता है। सब यज्ञ उसीका महिमा बढाते है, उसके किरण उसको नव जगत् में पहुंचाते हैं ॥ ४३ ॥

गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
त्वदीयं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यम् ॥ ५४ ॥
स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।
तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणा भृतम् ॥ ५५ ॥
यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५६ ॥

अर्थ-(वर्ष आज्यं, घ्रंसः अग्निः, भूमिः वेदिः अकल्पयत्) वृष्टिको घी, उष्णताको अग्नि, भूमिको वेदी बनाया गया। (तत्र अग्निः गीर्भिः एतान् पर्वतान् ऊर्ध्वान् अकल्पयत्) वहां अग्निने शब्दोंसे इन पर्वतोंको ऊंचा बना दिया है ॥ ५३ ॥

(गीर्भिः ऊर्ध्वान् कल्पयित्वा, रोहितः भूमिं अब्रवीत्) शब्दोंसे पर्वतोंको ऊंचा बनाकर सूर्य भूमिसे बोला कि (यत् भूतं यच्च भाव्यं सर्वं त्वदीयं जायताम्) जो हो चुका और जो होनेवाला है, वह सब तेराही बनकर रहे ॥ ५४ ॥

(सः प्रथमः यज्ञः भूतः भव्यः अजायत) वह पहिला यज्ञ भूत और भविष्यके लिये बना। (तस्मात् इदं सर्वं जज्ञे, यत् किं च इदं विरोचते) उससे यह सब उत्पन्न हुआ, जो कुछ यह विराजता है, यह (ऋषिणा रोहितेन आभृतं) रोहित ऋषिने—सूर्यदेवने भरण किया हुआ है ॥५५॥

(यः गां च पदा स्फुरति) जो गौको पांवसे ठुकराता है, (सूर्यं च प्रत्यङ् मेहति) किंवा सूर्यके सन्मुख मूत्र करता है, (तस्य ते मूलं वृश्चामि, परं छायां न करवः) उस पुरुषका मूल काटता हूं, उसके पश्चात् तू अपनी छाया वहां नहीं करेगा ॥ ५६ ॥

यज्ञ प्रारंभ हुआ ॥ इसमें वायु ब्रह्मणस्पति होकर कार्य करने लगा। स्वर्ग की दक्षिणा याजकों के लिये रखी गयी। इस यज्ञसे सबमें आत्मिक बल आगया ॥४७—५३॥

जो भूत, भविष्य और वर्तमान है, वह सब इसीसे संबंधित है ॥ ५४ ॥

वही यज्ञ भूतभविष्यके लिये आदर्श हुआ। इसी यज्ञसे सब कुछ बना ॥ ५५ ॥

जो गायको लात मारता है, सूर्यके सन्मुख मूत्रादि मल त्याग करता है, वह दण्डनीय है ॥ ५६ ॥

तस्मा॑द् घ्रंसस्तस्मा॑द्धिमस्तस्मा॑द् य॒ज्ञोऽजायत ॥ ४८ ॥
ब्रह्म॑णा॒ग्नी वा॑वृधा॒नौ ब्रह्म॑वृद्धौ॒ ब्रह्मा॑हुतौ ।
ब्रह्मे॑द्धाव॒ग्नी ईं॑जाते॒ रोहि॑तस्य स्व॒र्विदः॑ ॥ ४९ ॥
स॒त्ये अ॒न्यः स॒माहि॑तो॒ऽप्स्व१॒॑न्यः समि॑ध्यते ।
ब्रह्मे॑द्धाव॒ग्नी ईं॑जाते॒ रोहि॑तस्य स्व॒र्विदः॑ ॥ ५० ॥ (५)
यं वातः॑ परि॒ शुम्भ॑ति॒ यं वेन्द्रो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ।
ब्रह्मे॑द्धाव॒ग्नी ईं॑जाते॒ रोहि॑तस्य स्व॒र्विदः॑ ॥ ५१ ॥
वेदिं॒ भूमिं॑ कल्पयि॒त्वा दिवं॑ कृ॒त्वा दक्षि॑णाम् ।
घ्रंसं॑ तद॒ग्निं कृ॒त्वा च॒कार॒ विश्व॑मात्म॒न्वद् व॒र्षेणा॒ज्येन॒ रोहि॑तः ॥ ५२ ॥
व॒र्षमा॒ज्यं॑ घ्रंसो अ॒ग्निर्वेदि॒र्भूमि॑रकल्पयत् ।
तत्रै॒तान् पर्व॑ताना॒ग्निर्गी॒र्भिरू॒र्ध्वाँ अ॑कल्पयत् ॥ ५३ ॥

मंत्रोंसे अग्नि प्रदीप्त किया जाता है। (तस्माद् घ्रंसः तस्मात् हिमः, तस्मात् यज्ञः अजायत) उससे उष्णता, उससे सर्दी और उससे यज्ञ होता है ॥४८॥

(ब्रह्मणा वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ अग्नी) ज्ञानसे बढनेवाले, मंत्रके साथ प्रदीप्त होनेवाले मंत्रसे हवन किये गये, दो अग्नी हैं। (स्वर्विदः रोहितस्य ब्रह्मेद्धौ अग्नी ईजाते) आत्मज्ञानी सूर्यके प्रकाशमें मंत्रसे प्रज्वलित हुए ये दो अग्नी प्रदीप्त होते हैं ॥ ४९ ॥

(अन्यः सत्ये समाहितः) एक सत्यमें स्थिर है, (अन्यः अप्सु समिध्यते) दूसरा जलमें प्रदीप्त होता है। (स्वर्विदः रोहितस्य ब्रह्मेद्धौ अग्नी ईजाते) आत्मज्ञानी सूर्यके प्रकाशमें ये मंत्रसे प्रदीप्त हुए दोनों अग्नि प्रदीप्त होते हैं ॥ ५० ॥ [५]

(वातः इन्द्रः ब्रह्मणस्पतिः वा यं परि शुंभति) वायु, इन्द्र और ब्रह्मणस्पति ये जिसके लिये प्रकाश फैला रहे हैं, उस (स्वर्विद०) आत्मज्ञानी सूर्यदेवके लिये ये अग्नि प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ५१ ॥

(भूमिं वेदिं कृत्वा, दिवं दक्षिणां कृत्वा) भूमिकी वेदी बनाकर, द्युलोककी दक्षिणा करके, (घ्रंसं तदग्निं कृत्वा वर्षेण आज्येन रोहितः विश्वं आत्मन्वत् चकार) उष्ण ऋतुको वहांका अग्नि करके वृष्टिरूप घीसे सूर्यने सब जगत् को आत्मवान् बना दिया है ॥ ५२ ॥

॥ २ ॥

उद॑स्य के॒तवो॑ दि॒वि शु॒क्रा भ्राज॑न्त ईरते ।
आ॒दि॒त्यस्य॑ नृ॒चक्ष॑सो म॒हिव्र॑तस्य मी॒ढुषः॑ ॥ १ ॥
दि॒शां प्र॒ज्ञानां॑ स्व॒रय॑न्तम॒र्चिषा॑ सुप॒क्षमा॒शुं प॒तय॑न्तमर्ण॒वे ।
स्तवा॑म॒ सूर्यं॒ भुव॑नस्य गो॒पां यो र॒श्मिभि॒र्दिश॑ आ॒भाति॒ सर्वाः॑ ॥ २ ॥
यत् प्राङ् प्र॒त्यङ् स्व॒धया॒ यासि॒ शीभं॒ नाना॑रूपे अह॑नी॒ कर्षि॑ मा॒यया॑ ।
तदा॑दित्य॒ महि॒ तत् ते॒ महि॒ श्रवो॒ यदेको॒ विश्वं॒ परि॒ भूम॒ जाय॑से ॥ ३ ॥

अर्थ-(मीढुषः महिव्रतस्य नृचक्षसः अस्य आदित्यस्य) सिंचन करनेवाले बडे व्रत करनेवाले, मनुष्योंके निरीक्षक इस सूर्यके (शुक्राः भ्राजन्तः केतवः उत् ईरते) शुद्ध तेजस्वी किरण उदित होकर चमकते हैं ॥ १ ॥

(अर्चिषा प्रज्ञानां दिशां स्वरयन्तं) प्रकाशसे ज्ञापक दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले, (अर्णवे सुपक्षं आशुं पतयन्तं) समुद्रमें उत्तम किरणोंके साथ चलनेवाले, (भुवनस्य गोपां सूर्यं स्तवाम) त्रिभुवनके रक्षक सूर्यकी हम प्रशंसा करते हैं। (यः रश्मिभिः सर्वाः दिशः आभाति) जो अपने किरणोंद्वारा सब दिशाओंको प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

(यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया शीभं यासि) जो तू पूर्व और पश्चिम दिशामें अपनी धारक शक्तिके साथ शीघ्र जाता है,(मायया नानारूपे अहनी कर्षि) अपनी शक्तिसे अनेक रूपवाले दिन और रात बनाता है। हे आदित्य! (तत् ते महि महि श्रवः) वह तेराहि बडा महिमा है। (यत् एकः विश्वं भूम परि जायसे) जो अकेला तू सब संसारके ऊपर प्रभाव करता है ॥३॥

भावार्थ—सूर्य से वृष्टि होती है, वह बडा व्रती है, मनुष्योंका निरीक्षण करता है, पृथिवी आदिका धारण करता है, इसके उदय होनेपर चारों ओर स्वच्छ प्रकाश होता है ॥ १ ॥

यह सूर्य अपने प्रकाशसे दश दिशाओंको प्रकाशित करता है, अन्तरिक्षमें संचार करता है, यह सब भुवनोंकी रक्षा करनेवाला है, इसकी स्तुति करना योग्य है ॥ २ ॥

जो पूर्व दिशामें उदय होकर पश्चिम दिशामें अस्त होता है, जो अपने प्रकाशसे दिन और अप्रकाशसे रात्रि निर्माण करता है, उसका महिमा बडा है, वही संसारमें बडा प्रभावशाली है ॥ ३ ॥

यो मा॒मभि॒च्छाय॑म॒त्येषि॒ मां चा॒ग्निं चान्त॒रा ।
तस्यं वृश्चामि ते॒ मूलं॒ न च्छा॒यां क॑र॒वोऽप॑रम् ॥ ५७ ॥
यो अ॒द्य दे॑व सूर्य॒ त्वां च॒ मां चा॑न्त॒राय॑ति ।
दु॒ष्वप्न्यं॒ तस्मि॑ञ्छम॑लं दुरि॒तानि॑ च मृज्महे ॥ ५८ ॥
मा प्र गा॑म प॒थो व॒यं मा य॒ज्ञादि॑न्द्र सो॒मिन॑ः ।
मान्त स्थु॑र्नो अरा॑तयः ॥ ५९ ॥
यो य॒ज्ञस्य॑ प्र॒साध॑नस्तन्तु॑र्दे॒वेष्वात॑तः ।
तमाहु॑तमशीमहि ॥ ६० ॥ (६)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अर्थ-(यः मां अभिच्छायं अत्येषि) जो तू मुझे अपनी छायामें रखकर चलता है, (मां अग्निं च अन्तरा) मेरे और अग्निके बीचमें गुजरता है, उस तेरा मूल मैं काटता हूं, जिससे तू इस तरह आगे छाया न कर सकोगे ॥ ५७ ॥

हे देव सूर्य ! [यः अद्य त्वां च मां च अन्तरा आयति] जो आज तेरे और मेरे बीचमें आता है, [तस्मिन् दुष्वप्न्यं शमलं दुरितानि च मृज्महे] उसमें दुष्ट स्वप्न, दुष्ट कल्पना और पाप [illegible] ॥ ५८ ॥

[वयं पथः मा प्रगाम] हम मार्गको न छोडें. हे इन्द्र ! [सोमिनः यज्ञात् मा] हम सोम यागसे भी दूर न जावें. [नः अरातयः अन्तः मा स्थुः] हमारे अन्दर हमारी [illegible] न रहें ॥ ५९ ॥ [ऋ. १०।५७।१]

[यः यज्ञस्य प्रसाधनः तन्तुः देवेषु आततः] जो यज्ञका [illegible] तन्तु देवोंमें फैला है, [तं आहुतं अशीमहि] उसका सेवन हम करें। ६०।
[६] ऋ. १०।५७।२

भावार्थ-जो अपनी छायासे दूसरेको [illegible] है, अग्नि तथा सूर्य [illegible] बीच [illegible] रहता है, वह भी दण्डनीय है। ५७—५८ ॥

हम अपना इष्ट मार्ग कभी न छोडें। यज्ञसे दूर न हों। हमारे अन्दर [illegible] हो ॥ ५९ ॥

जो सब [illegible] देवोंमें [illegible] है, [illegible] ॥ ६० ॥

प्रथम अनुवाक समाप्त । १

सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ७ ॥
सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥ ८ ॥
उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत् ।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥
उद्यन् रश्मिना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।

अर्थ—हे सूर्य! (अंशुमन्तं स्योनं सुवह्निं वाजिनं सुखं रथं अधितिष्ठ] तेजस्वी सुखदायी चलनेवाले गतिवाले उत्तम रथपर चढ। [सप्त०] उस तुझको सात किरणें अथवा सेकडो किरण ले चलती हैं ॥ ७ ॥

[सूर्यः हिरण्यत्वचसः बृहतीः सप्त हरितः यातवे रथे अयुक्त] सूर्यने सुवर्णके समान चमकनेवाले बडे सात किरण चलनेके लिये अपने रथमें जोडे हैं। [शुक्रः देवः तमो विधूय रजसः परस्तात् अमोचि दिवं आरुहत्] शुद्ध देवने अंधकारको स्थानसे हटाकर रजोलोकसे परे छोड दिया और स्वयं द्युलोकपर चढा ॥ ८ ॥

(देवः बृहता केतुना उत् आगन्) सूर्यदेव बडे प्रकाशके साथ उदयको प्राप्त हुआ है, (तमः अपावृक् ज्योतिः अश्रैत्) उसने अन्धकार दूर किया और तेजका आश्रय किया है। (सः दिव्यः सुपर्णः अदितेः वीरः पुत्रः विश्वा भुवनानि व्यख्यत्) उस दिव्य प्रकाशमान अदितिके वीर पुत्र सूर्यने सब भुवनोंको प्रकाशित किया है ॥ ९ ॥

(उद्यन् रश्मीन् आ तनुषे) उदय होनेपर किरणोंको तू फैलाता है। (विश्वा रूपाणि पुष्यसि) सब रूपोंको पुष्ट करता है। (उभौ समुद्रौ

भावार्थ—तेरा रथ तेजस्वी सुखदायी, गतिमान् बलवान् है। उसके किरण तेरा प्रभाव बढा रहे हैं ॥ ७ ॥

सूर्य अपने चमकनेवाले किरणोंके साथ अपने रथमें विराजता है। यह प्रकाशमान देव अन्धकारको दूर करके उसको दूर भगा देता है और द्युलोकमें विराजता है ॥८॥ सूर्य उदय होता है, उससे अन्धकार दूर होता है, उसके प्रकाशसे संपूर्ण विश्व प्रकाशित होता है ॥ ९ ॥

विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।
स्रुताद् यमत्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥ ४ ॥
मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गा अति याहि शीभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥ ५ ॥
स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ६ ॥

अर्थ-(वह्वीः सप्त हरितः) बडी सात किरणें,(यं भ्राजमानं तरणिं विपश्चितं वहन्ति) जिस तेजस्वी तारनेवाले ज्ञानी देवको ले जाती हैं । (यं अत्रिः स्रुतात् दिवं उन्निनाय) जिसको अत्ता आत्माने स्रवनेवाले जलसे द्युलोक तक पहुंचाया है, (तं त्वा आजिं परियान्तं पश्यन्ति) उस तुझको चारों ओर घूमते हुए देखते हैं ॥ ४ ॥

(परियान्तं आजिं त्वा मा दभन्) चारों ओर घूमनेवाले तुझको शत्रु न दबा देवें । (स्वस्ति, दुर्गान् शीभं अति याहि) सुखरूपतासे कठिन स्थानोंके पार शीघ्रतासे चल । हे सूर्य! (दिवं च देवीं पृथिवीं च अहोरात्रे विमिमानः यत् एषि) द्युलोक और दिव्य पृथिवीको, अहोरात्रको निर्माण करता हुआ तू जाता है ॥ ५ ॥

हे सूर्य ! (ते चरसे रथाय स्वस्ति) तेरे चलनेवाले रथके लिये शुभ-मंगल हो । येन उभौ अन्तौ सद्यः परि यासि) जिससे दोनों सीमाओंतक तत्काल जाता है । (सप्त वह्वीः यदि वा वहिष्ठाः हरितः शतं अश्वाः यं ते वहन्ति) सात किरणें किंवा चलनेवाली सौ अश्वरूप किरणें जिस तुझको चलाती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ- सात तेजस्वी किरणें सूर्यका प्रकाश प्रभावयुक्त बनाती है। ज्ञानी लोग इसका महत्त्व जानते हैं। यह सूर्य द्युलोकमें चढकर सर्वत्र अपना तेज फैलाता है॥४॥

तू चारों ओर प्रकाश को फैलाता है, तेरी किरणें शीघ्रगतिवाली है, तेरे प्रकाशसे सबका कल्याण होता है । तू द्युलोक और पृथ्वीको प्रकाशित करता हुआ दिन और रात्रिको निर्माण करता है ॥ ५ ॥

तेरा रथ कल्याणरूप है , इसीसे तू उदयसे अस्ततक आक्रमण करता है। सात किरणें और अनंत प्रकाश तेरा प्रभाव बढा रहे हैं ॥ ६ ॥

तन्वे३ुतदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥ १३ ॥
यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः ।
अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥ १४ ॥
तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नापं चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नावं रुन्धते ॥ १५ ॥
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १६ ॥

ओंको प्राप्त होता है वैसा तू दोनों अन्तिम भागोंको प्राप्त होता है। (ननु इतः पुरा अमी देवाः एतत् ब्रह्म विदुः) निश्चयपूर्वक इससे पूर्वहि ये देव इस ब्रह्मको जानते हैं ॥ १३ ॥

(यत् समुद्रं अनुश्रितं तत् सूर्यः सिपासति) जो समुद्रके आश्रयसे रहता है वह सूर्य प्राप्त करना चाहता है। (अस्य यः पूर्वः अपरः च महान् अध्वा विततः) इसका यह पूर्व पश्चिम बडा मार्ग फैला है ॥ १४ ॥

(तं जूतिभिः समाप्नोति, ततो न अपचिकित्सति) उस मार्गको वह वेगोंसे समाप्त करता है, उस मार्गसे वह इधर उधर मनको नहीं जाने देता। (तेन देवानां अमृतस्य भक्षं न अवरुन्धते) उस कारण देवोंके अमृत अन्नके भागसे दूर नहीं होता ॥ १५ ॥

(केतवः त्यं जातवेदसं देवं सूर्यं) किरण उस बने हुए को जाननेवाले सूर्य देवको (विश्वाय दृशे) समस्त संसारके दर्शनके लिये (उत् उ वहन्ति) उच्च स्थानमें प्रकाशित करते हैं ॥ १६ ॥ (ऋ० १।५०।१; वा०यजु० ७।४१; अथर्व० २०।४७।१३)

भावार्थ- जैसा बच्चा माता पिताओंको प्राप्त करता है, वैसाही सूर्य उदय और अस्तके अन्तको प्राप्त होता है। इसका सब तत्त्व सब देव यथावत् जानते हैं ॥ १३ ॥

जो समुद्रके रत्नादि हैं वह सूर्य प्राप्त करता है, इस सूर्यका यह पूर्व पश्चिमका मार्ग बडा भारी है ॥ १४ ॥

वह अपने मार्गको शीघ्रतासे समाप्त करता है, अपना मन इधर उधर होने नहीं देता। इस कारण इसको अमृतान्न का भाग नियमसे प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

सूर्यदेवके किरण सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करनेके लिये ही प्रकाशते हैं और इसको ऊपर उठाते हैं ॥ १६ ॥

उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वाँल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः ॥१०॥ (७)
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥ ११ ॥
दिवि त्वात्त्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥ १२ ॥
उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव ।

क्रतुना विभासि) दोनों समुद्रोंको यज्ञसे प्रकाशित करता है। और (परिभूः भ्राजमानः सर्वान् लोकान्) सबपर प्रभाव करता हुआ तेजस्वी तू सब लोकोंको प्रकाशित करता है ॥ १० ॥ ७ ॥

(एतौ शिशू क्रीडन्तौ मायया पूर्वापरं चरतः) ये दो बालक अर्थात् सूर्य और चन्द्र खेलते हुए, स्वशक्तिसे आगे पीछे चलते हैं। और (अर्णवं परियातः) समुद्रतक भ्रमण करते हुए पहुंचते हैं। (अन्यः विश्वा भुवना विचष्टे) उनमेंसे एक सब भुवनोंको प्रकाशित करता है और (अन्यः ऋतून् विदधत् नवः जायसे) दूसरा ऋतुओंको बनाता हुआ नया नया बनता है ॥ ११ ॥ (अथर्व० ७।८१ (८६)।१; १४।१।२३)

हे सूर्य ! (मासाय कर्तवे अत्रिः त्वा दिवि अधारयत्) महिने बनानेके लिये अत्रिने तुझे द्युलोकमें धारण किया। (सः तपन् विश्वा भूता अवचाकशत् सुधृतः एषि) वह तपता हुआ सब भूतोंको प्रकाशित करता हुआ स्वयं सुस्थिर होकर चलता है ॥ १२ ॥

(वत्सः मातरौ इव उभौ अन्तौ सं अर्षसि) जैसा बछडा मातापिता-

भावार्थ— सूर्य उदय होनेपर उसका प्रकाश फैलता है, समुद्रतकके संपूर्ण भूमिपर सब लोक यज्ञकर्म शुरू करते हैं, इस तरह सब जगत् देदीप्यमान होता है ॥ १० ॥

संसाररूपी घरके छोटे बडे (चंद्र और सूर्य) बालक अपनी शक्तिसे खेलते हुए समुद्र तक पुरुषार्थ करते हुए जाते हैं। उनमें से एक जगत्को प्रकाशित करता है, और दूसरा ऋतुओंको बनाता है। इसी तरह सब गृहस्थियोंके पुत्र अपने पुरुषार्थसे जगत् को प्रकाशित करें ॥ ११ ॥

सूर्य महिने बनानेके लिये द्युलोकमें प्रकाशित होता है, वह प्रकाशता है, सबका धारण भी करता है ॥ १२ ॥

येना॑ पावक॒ चक्ष॑सा भुर॒ण्यन्तं॒ जनाँ॒ अनु॑। त्वं व॑रुण॒ पश्य॑सि ॥ २१ ॥
वि द्यामे॑षि॒ रज॑स्पृ॒थ्वह॒र्मिमा॑नो अ॒क्तुभि॑ः। पश्य॒न् जन्मा॑नि सूर्य ॥ २२ ॥
स॒प्त त्वा॑ ह॒रितो॒ रथे॒ वह॑न्ति देव सूर्य।
शो॒चिष्के॑शं विचक्षणम् ॥ २३ ॥
अयु॑क्त स॒प्त शु॒न्ध्युव॒ः सूरो॒ रथ॑स्य न॒प्त्य॑ः।
ताभि॑र्याति॒ स्वयु॑क्तिभिः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे (पावक वरुण) पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ देव ! (येन चक्षसा त्वं जनान् भुरण्यन्तं अनु पश्यासि) जिस नेत्रसे तू मनुष्योंमें भरणपोषण करनेवाले मनुष्यको देखता है, उससे मुझे देख ॥ २१ ॥ (ऋ० १।५०।६)

हे सूर्य ! (अक्तुभिः अहः मिमानः) रात्रियोंसे दिनको मापता हुआ (पृथु रजः द्यां ऐपि) विस्तृत अन्तरिक्ष लोकको और द्युलोकको प्राप्त होता है और (जन्मानि पश्यन्) सब जन्म लेनेवालोंको देखता है ॥२२॥ (ऋ० १।५०।७)

हे सूर्यदेव ! (सप्त हरितः शोचिष्केशं विचक्षणं त्वा रथे वहन्ति) सात किरण शुद्ध करनेवाले दर्शक ऐसे तुझको रथमें चलाते हैं ॥ २३ ॥ (ऋ. १।५०।८)

(सूरः रथस्य नप्त्यः सप्त शुंध्युवः अयुक्त) ज्ञानमय रथको सात शुद्ध किरण जोडे हैं (ताभिः स्वयुक्तिभिः याति) उनसे अपनी योजनाओंसे यह जाता है ॥ २४ ॥ (ऋ. १।५०।९)

भावार्थ-सूर्य जिस प्रेममय नेत्रसे पुरुषार्थी मनुष्यको देखता है, उसी नेत्रसे वह मुझे देखे, अर्थात् वह मुझपर प्रेम करे ॥ २१ ॥

सूर्य अन्तरिक्ष लोकमें संचार करता हुआ, और सब लोगोंके व्यवहारोंका निरीक्षण करता हुआ, दिन और रात्रिका विभाग करता हुआ, द्युलोकमें विराजता है ॥ २२ ॥

सूर्यदेवकी सात किरणें उसको रथमें चलाती हैं, वह पवित्र किरणोंवाला और ज्ञानी है ॥ २३ ॥

ज्ञानमय सूर्यके सात किरण रथमें जोडे हैं, वे शुद्धता करनेवाले हैं। वे अपनी योजनाओंसे चलते हैं ॥ २४ ॥

अप॒ त्ये ता॒यवो॑ यथा॒ नक्ष॑त्रा यन्त्य॒क्तुभिः॑ । सूरा॑य वि॒श्वच॑क्षसे ॥ १७ ॥
अदृ॑श्रन्नस्य के॒तवो॒ वि र॒श्मयो॒ जनाँ॒ अनु॑ । भ्राज॑न्तो अ॒ग्नयो॑ यथा ॥ १८ ॥
त॒रणि॑र्वि॒श्वद॑र्शतो ज्योति॒ष्कृद॑सि सूर्य । विश्व॒मा भा॑सि रोच॒न ॥ १९ ॥
प्र॒त्यङ् दे॒वानां॒ विशः॑ प्र॒त्यङ्ङुदे॑षि॒ मानु॑षीः
प्र॒त्यङ् विश्वं॒ स्व॑र्दृ॒शे ॥ २० ॥ (८)

अर्थ-(यथा त्ये तायवः,नक्षत्रा अक्तुभिः अप यन्ति)जैसे वे चोर वैसे नक्षत्रगण रात्रिके साथ दूर भाग जाते हैं और (विश्वचक्षसे सूराय) संसारके प्रकाशित करनेवाले सूर्यके लिये स्थान करते हैं ॥ १७ ॥ (ऋ० १।५०।२; अथर्व. २०।४७।१४)

(यथा भ्राजन्तः अग्नयः) जैसे चमकनेवाले अग्नि होते हैं, (अस्य केतवः रश्मयः जनान् अनु वि अदृश्रन्) इसके ध्वजरूपी किरण लोगोंके प्रति जाते हुए दीखते हैं ॥ १८ ॥ (ऋ० १।५०।३; वा०य० ८।४०; अथर्व. २०।४७।१५)

हे (रोचन सूर्य) प्रकाशक सूर्य ! तू (तरणिः विश्वदर्शतः ज्योतिष्कृत् असि) तारक विश्वको दर्शानेवाला और प्रकाश करनेवाला है (विश्वं आ भासि) सब जगत् को प्रकाशित करता है ॥ १९ ॥ (ऋ. १।५०।४)

(देवानां विशः प्रत्यङ्) देवोंकी प्रजाओंके प्रति और (मानुषीः प्रत्यङ् उदेषि) मानवी प्रजाओंके प्रति तू उदित होता है तथा (स्वः दृशे विश्वं प्रत्यङ्) प्रकाशके दर्शनके लिये सब विश्वके प्रति जाता है ॥ २० ॥ ८ ॥ (ऋ० १।५०।५)

भावार्थ— जैसे चोर स्वामीके आनेसे भाग जाते है, वैसेहि सूर्यके आनेसे सब नक्षत्र भाग जाते है और सूर्यदेवके लिये स्थान खुला छोड देते हैं ॥ १७ ॥

चमकनेवाले अग्निके समान इसके किरण अत्यंत तेजस्वी और सबको प्रकाश देनेवाले है ॥ १८ ॥

सूर्य तेजस्वी है, तारक है, सबको रूप दर्शानेवाला है, कान्तिको फैलानेवाला है, उसीसे सब जगत् तेजस्वी होता है ॥ १९ ॥

दैवी और मानवी प्रजाओंके हितार्थ यह सूर्य उदित होता है। सब विश्वको यह तेजका मार्ग दर्शाता है ॥ २०॥

अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ॥ २८ ॥
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥ २९ ॥
रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्व१न्तः ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥ ३० ॥ (९)

अर्थ— [अतन्द्रः यास्यन् हरितः यदा आस्थात्] आलस्य न करनेवाला जब जानेकी इच्छा करता है तब वह अपने अश्वोंपर आरूढ होकर [रोचमानः द्वे रूपे कृणुते] प्रकाशित होकर दो रूप बनाता है। हे आदित्य! [केतुमान् उद्यन् विश्वा रजांसि सहमानः] किरणोंसे युक्त होकर उदयको प्राप्त होनेवाला सब लोकोंको जीतनेवाला तू [प्रवतः विभासि] उच्च स्थानसे चमकता है ॥ २८ ॥

हे सूर्य ! हे आदित्य ! [बट् महान् असि ३] तू सबसे बडा है। [ते महतः महिमा महान्] तुझ महान् देवका महिमा बहुत बडा है ॥ २९ ॥ [ऋ० ८।१०१।११; वा. यजु. ३३।३९; अथर्व. २०।५८।३]

हे [देव पतंग] चालक देव ! तू [दिवि अन्तरिक्षे पृथिव्यां अप्सु अन्तः रोचसे] द्युलोक, अन्तरिक्षलोक, भूलोक और जलोंके अन्दर प्रकाशित होता है। [रुच्या उभौ समुद्रौ व्यापिथ] तू अपने तेजसे दोनों समुद्रतक व्यापता है। ऐसा तू [स्वः-जित् देवः महिषः असि] प्रकाशको प्राप्त करनेवाला देव महासामर्थ्ययुक्त है ॥ ३० ॥ ९ ॥

भावार्थ- यह एक पांववाला होनेपर भी अनेक पांववालोंसे आगे बढता है। सब अनेक पांववाले इसी एक पांववालेके आश्रयसे रहते हैं ॥ २७ ॥

यह आलस्य छोडकर सदा अपने कर्तव्यमें तत्पर रहता है। यह प्रकाश और अंधेरा उत्पन्न करता है। यह किरणोंसे सबको प्रभावित करके उच्च स्थानमें विराजता है ॥ २८ ॥ सूर्य सबसे बडा है, उसकी महिमा भी बहुत बडी है ॥ २९ ॥

यह सूर्य पृथ्वी जल अन्तरिक्ष तथा द्युलोकमें प्रकाशता है, पृथ्वीपर और अन्तरिक्षके दोनों जलस्थानोंमें अपना प्रकाश यह फैलाता है। यही सबमें अधिक सामर्थ्यशाली है ॥ ३० ॥

रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी ।
स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव ॥२५॥
यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः ।
सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥ २६ ॥
एकपाद् द्विपदो भूयो विचक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं समासते ॥ २७ ॥

अर्थ—(तपसः तपस्वी रोहितः दिवं आरुहत्) प्रकाशसे तेजस्वी बना सूर्य द्युलोकपर चढा है । (सः योनिं एति) वह मूलस्थानको प्राप्त होता है, (सः उ पुनः जायते) वह पुनः पुनः उत्पन्न होता है, [सः देवानां अधिपतिः बभूव] वह देवोंका स्वामी हुआ है ॥ २५ ॥

[यः विश्वचर्षणिः उत विश्वतः-मुखः] जो सब प्राणिमात्रके रूपवाला और सब ओर मुखवाला है, [यः विश्वतः-पाणिः उत विश्वतः-पृथः] जिसके हाथ और भुजा सब ओर हैं, [बाहुभ्यां पतत्रैः सं सं भरति] जो अपने बाहुओं और चरणोंद्वारा भरणपोषण करता है, ऐसा [द्यावा-पृथिवी जनयन् देवः एकः] भूलोक और द्युलोकका निर्माण करनेवाला देव एकही है ॥ २६ ॥ [ऋ० १० । ८१ । ३; वा० य० १७ । १९ पाठान्तरयुक्त]

[एकपाद् द्विपदः भूयः विचक्रमे] एक पांववाला दो पांववालेसे अधिक चलता है, [द्विपात् त्रिपादं पश्चात् अभ्येति] दो पांववाला तीन पांववाले के पीछेसे आकर मिलता है । [द्विपात् ह षट्पदः भूयः विचक्रमे] दो पांववाला निश्चयसे छः पांववालेसे भी अधिक चलता है. [ते एकपदः तन्वं समासते] वे एक पांववालेके शरीरका आश्रय करते हैं ॥ २७ ॥ [ऋ० १०।११७।८; अथर्व. १३।३।२५ पाठान्तरयुक्त]

भावार्थ—प्रकाशमान सूर्य द्युलोकमें आरूढ होकर पश्चात् अपने स्थानमें पहुंचता है और फिर उदयको प्राप्त होता है, इस तरह वह सब अन्य देवोंका अधिपति हुआ है ॥ २५ ॥ सब प्राणियोंको रूप देनेवाला सूर्य है । इसका मुख सर्वत्र है, वैसेहि हाथ और भुजाएं सर्वत्र हैं । यह अपने हाथों द्वारा सबका पोषण करता है । यह एक ही देव पृथ्वीसे द्युलोक तकके सब पदार्थ मात्रको उत्पन्न करता है ॥ २६ ॥

चि॒त्रं दे॒वाना॒मुद॑गा॒दनी॑कं॒ ज्योति॑ष्मान् प्र॒दिशः॒ सूर्य॑ उ॒द्यन् ।
दि॒वाक॑रो॒ऽति॑ द्यु॒म्नैस्तमां॑सि॒ विश्वा॑तारीद् दुरि॒तानि॑ शु॒क्रः ॥ ३४ ॥
चि॒त्रं दे॒वाना॒मुद॑गा॒दनी॑कं॒ चक्षु॑र्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्या॒ग्नेः ।
आप्रा॒द् द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षं॒ सूर्य॑ आ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च ॥ ३५ ॥
उ॒च्चा पत॑न्तमरु॒णं सु॑प॒र्णं मध्ये॑ दि॒वस्त॒रणिं॒ भ्राज॑मानम् ।
पश्या॑म त्वा सवि॒तारं॒ यमा॒हुरज॑स्रं॒ ज्योति॒र्यद॒विन्द॒दत्रिः॑ ॥ ३६ ॥

अर्थ-[दिवानां केतुः चित्रं अनीकं] देवोंका ध्वज, विलक्षण मूल आधाररूप [ज्योतिष्मान् सूर्यः प्रदिशः उद्यन्] तेजस्वी सूर्य दिशाओंमें उदित होता हुआ [शुक्रः विश्वा दुरितानि तमांसि द्युम्नैः अतारीत्] शुद्ध सूर्य सब पापरूप अंधकारोंको अपने तेजोंसे पार करता है, और [दिवा करोति] दिनका प्रकाश करता है ॥ ३४ ॥ [अथर्व. २०।१०७।१३]

[देवानां चित्रं अनीकं, मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः] देवोंका अद्भुत धारक बल, मित्र वरुण और अग्निकी आंख [द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं आप्रात्] द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवीको व्यापता है ऐसा [सूर्यः जगतः तस्थुषः च आत्मा] सूर्य जंगम और स्थावरका आत्मा है ॥ ३५ ॥ [ऋ० १।११५।१; वा० यजु० ७।४२; १३।४६; अथर्व. २०।१०७।१४]

[उच्चा पतन्तं सुपर्णं दिवः मध्ये भ्राजमानं तरणिं] उच्च स्थानसे गमन करनेवाले पक्षी जैसे आकाशके मध्यमें तेजस्वी होकर तैरनेवाले [यं अजस्रं ज्योतिः आहुः तं सवितारं त्वा पश्याम] जिसे विशेष तेजस्वी करके कहते हैं उस तुझ सूर्यको हम देखते हैं, [यत् अत्रिः अविन्दत्] जिसे भोक्ता प्राप्त करता है ॥ ३६ ॥

भावार्थ— यह देवोंके आगमनकी सूचना देता है, यह विचित्र अद्भुत बलसे युक्त है, यह जब उदयको प्राप्त होता है, तब सब स्थानका अंधेरा दूर करके सर्वत्र प्रकाश करता है ॥ ३४ ॥

यह सब देवोंका बल और सबकी आंखहि है। यह अपने प्रकाशसे विश्वको भरता है। यही सूर्य मानो सब स्थावरजंगम जगत का आत्मा है ॥ ३५ ॥

यह शीघ्रगामी पक्षीके समान आकाशमें तैरता है। इसका विलक्षण तेज है, जो हम देखते हैं। जो इस तेजका स्वीकार करना चाहे उसको यह प्राप्त हो सकता है ॥ ३६ ॥

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥ ३१ ॥
चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥ ३२ ॥
तिग्मो विभ्राजन् तन्वं शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः ।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥३३॥

अर्थ–[आशुः विपश्चित् पतंगः व्यध्वे प्रयतः] शीघ्रगामी ज्ञानी संचालक विशेषतः मार्गमें शुद्ध [परस्तात् अर्वाङ्] उपरसे यहां तक [विष्णुः विचित्तः शवसा अधितिष्ठन्] व्यापक और विशेष चिन्तनशक्तिसे युक्त अपने बलसे अधिष्ठाता होता हुआ [केतुना एजत् विश्वं प्र सहते] प्रकाशसे गतिमान् विश्वका धारण करता है ॥ ३१ ॥

[चित्रः चिकित्वान् महिषः सुपर्णः] विलक्षण ज्ञानी, समर्थ, और उत्तम गतिमान् [अन्तरिक्षं रोदसी आरोचयन्] अन्तरिक्ष, पृथिवी और द्युलोकको प्रकाशित करनेवाला सूर्य है। ऐसे [सूर्ये अहोरात्रे परिवसाने] सूर्यपर दिन और रात बसते हुए [अस्य विश्वा वीर्याणि प्र तिरतः] इसके सब वीर्य फैलाते हैं ॥ ३२ ॥

[तिग्मः विभ्राजन् तन्वं शिशानः] तीक्ष्ण प्रकाशवाला अपने शरीरको तीक्ष्ण करनेवाला, [अरंगमासः प्रवतः रराणः] पर्याप्त गतिवाला उच्च स्थानपर रमनेवाला [ज्योतिष्मान् पक्षी महिषः वयोधाः] तेजस्वी आकाशमें संचार करनेवाला बलवान् और बल धारण करनेवाला [विश्वाः प्रदिशः कल्पमानः आस्थात्] सब दिशाओंमें स्थान [illegible] स्थिर रहता है ॥ ३३ ॥

भावार्थ–यह शीघ्रगामी देखनेवाला संचालक [illegible] सब विश्वको अपने प्रकाशसे प्रकाशित करता है ॥ ३१ ॥

यह विलक्षण सामर्थ्यशाली इस त्रिलोकीको प्रकाशित करता है। यह दिन [illegible] रातको निर्माण करके सबके पराक्रमशक्तिको [illegible] करता है ॥ ३२ ॥

यह तेजस्वी और तीक्ष्ण सूर्य, पर्याप्त गतिसे युक्त और सदा उच्च [illegible] वाला पक्षीके समान आकाशके अंदर [illegible] करता हुआ सब [illegible] रहता है ॥ ३३ ॥

रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम् ।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥ ४० ॥ (१०)
सर्वा दिशः समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिवः ।
दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ ४१ ॥
आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद् विभाति ॥ ४२ ॥
अभ्य१न्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः ।

अर्थ-(रोहितः लोकः अभवत्, दिवं अतपत्) सूर्य ही सब लोक बना और द्युलोक को प्रकाशित करने लगा। (रोहितः रश्मिभिः भूमिं समुद्रं अनु सं चरत्) सूर्यही अपने किरणोंसे भूमि और समुद्रमें संचार करता है ॥ ४० ॥ (१०)

(दिवः अधिपतिः रोहितः सर्वाः दिशः समचरत्) द्युलोक का स्वामी सूर्य सब दिशाओंमें संचार करता है। (दिवं समुद्रं आत् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति) द्युलोक समुद्र भूमि सब प्राणी आदि सबकी वह रक्षा करता है ॥ ४१ ॥

(अतन्द्रः शुक्रः रोचमानः बृहतीः आरोहन्) आलस्यरहित बलवान् तेजस्वी सूर्य बडी दिशाओंमें आरूढ होकर (द्वे रूपे कृणुते) दो रूप बनाता है। वह (चित्रः चिकित्वान् महिषः) विलक्षण ज्ञानी और समर्थ (वातं आयाः) वायुको प्राप्त होता है, और (यत् यावतः लोकान् अभि विभाति) जितने लोक हैं उन सबको वह प्रकाशित करता है ॥ ४२ ॥

(अहोरात्राभ्यां कल्पमानः महिषः) दिन और रात्रिसे समर्थ होता हुआ यह सूर्य (अन्यत् अभि एति, अन्यत् अभि अस्यते) एक भागके

भावार्थ-यह सूर्य काल, प्रजापालक, यज्ञ, तेज, सब लोक बनाता है, यही अपने प्रकाशसे सब जगत् को परिपूर्ण करता है ॥ ३९-४० ॥

यह द्युलोकका स्वामी सर्वत्र संचार करके सब जगत की रक्षा करता है ॥ ४१ ॥

आलस्य छोडकर समर्थ और तेजस्वी यह सूर्य सबसे ऊंचे स्थानपर आरूढ होता है। अन्धकार और प्रकाश इसीसे उत्पन्न होते हैं। जहांतक लोक हैं वहांतक इसका प्रकाश फैलता है ॥ ४२ ॥

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः ।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥ ३७ ॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ ३८ ॥
रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः ।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वराभरत् ॥ ३९ ॥

अर्थ– [दिवः पृष्ठे धावमानं सुपर्णं अदित्याः पुत्रं] द्युलोकके पीठपर दौडनेवाले पक्षीके समान अदितीके पुत्रको [नाथकामः भीतः उपयामि] नाथ की इच्छा करनेवाला भयभीत हुआ मैं शरण जाता हूं । हे सूर्य ! [सः नः दीर्घ आयुः प्रतिर] वह तू हमें दीर्घ आयु दे, [ते सुमतौ स्याम, मा रिषाम] तेरी उत्तम बुद्धिमें हम रहें और हमारा नाश न हो ॥ ३७ ॥

[हरेः हंसस्यः सहस्राह्ण्यं स्वर्ग पततः अस्य पक्षौ वियतौ] हरणशील हंसके समान गतिशील, हजार दिनके मार्गपर स्थित द्युलोक पर चलनेवाले इस सूर्यके दोनो ओर किरण फैले हैं । (स सर्वान् उरसि उपदद्य) वह सब देवोंको अपनी छातीपर धारण करता हुआ, (विश्वा भुवनानि संपश्यन् याति) सब भुवनोंको देखता हुआ चलता है ॥ ३८ ॥ (अथर्व १०।८।१८; १३।३।१४)

(रोहितः कालः अभवत्) यह सूर्य ही काल हुआ है, (अग्रे रोहितः प्रजापतिः) आगे सूर्यही प्रजापालक बना है, (रोहितः यज्ञानां मुखं) यही सूर्य यज्ञोंका मुख्य होकर (स्वः आभरत्) प्रकाश प्रदान करता है ॥ ३९ ॥

भावार्थ— आकाशके पृष्ठभागपर दौडनेवाले पक्षीके समान यह सूर्य है । मैं दुःखोंसे पीडित होकर भयभीत हुआ इसकी प्रार्थना करता हूं कि यह हमें दीर्घ आयु देवे और हमें सुरक्षित रखे ॥ ३७ ॥

इस तेजस्वी सूर्यके किरण सब ओर हजार दिनतक प्रवास करनेकी दूरीतक जाते हैं । यही सब देवोंका आधार है, यह सबका निरीक्षण करता हुआ चलता है ॥ ३८ ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ ४६ ॥ (११)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

(२)

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते ।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतंगो अनु विचाकशीति ॥
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १ ॥

अर्थ-[जनानां समिधा अग्निः प्रति अबोधि] जनोंकी समिधाओंसे अग्नि जाग उठा है। [धेनुं इव उषसां आयतीं] गौ जैसी उषा आनेके समय जागती है। [वयां प्र उज्जिहानाः यह्वा इव] शाखाओंको ऊपर फेंकनेवाले पौधोंके समान [भानवः नाकं अच्छ प्र सिस्रते] किरण स्वर्गधामकी ओर पहुंचते हैं। ॥ ४६ ॥ (११)

(यः इमे द्यावा-पृथिवी जजान) जो इन दोनों द्युलोक और पृथिवी लोकको उत्पन्न करता है, (यः भुवनानि द्रापिं कृत्वा वस्ते) जो सब भुवनोंको चोला बनाकर उसमें रहता है, (यस्मिन् षट् उर्वीः प्रदिशः क्षियन्ति) जिसमें छः बडी दिशाएं निवास करती हैं, (याः पतङ्गः अनु विचाकशीति) जिनको गतिमान् सूर्य प्रकाशित करता है। (यः एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति) जो ऐसे ज्ञानी ब्राह्मणको नाश करता है, या कष्ट देता है, (एतत् आगः तस्य क्रुद्धस्य देवस्य) इसका पाप उस क्रुद्ध देवके प्रति होता है। हे (रोहित) सूर्य ! उस पापीको (उत् वेपय) कम्पा दे, तथा (प्रक्षिणीहि) उसका नाश कर, (ब्रह्मज्यस्य पाशान् प्रतिमुञ्च) ब्रह्मघातकीके ऊपर पाशोंको गिरा दे, अर्थात् उसे बंधनमें डाल दे ॥ १ ॥

भावार्थ- जनताने जो समिधाएं होमी थीं, उनसे यह अग्नि प्रदीप्त हुआ है। जैसी गौ प्रातःकाल जागती है, वैसा यह अग्नि जाग उठा है। जैसे पौधे अपनी शाखाओंको ऊपर आकाशमें फैलाते हैं, वैसेहि अग्निकी ज्वालाएं सीधी ऊपर जाती हैं और प्रकाशको फैलाती हैं ॥ ४६ ॥

द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥ २ ॥

सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥ ४३ ॥
पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव ।
विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४४ ॥
पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम् ।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४५ ॥

सन्मुख होता है और दूसरा भाग दूसरी ओर फेंका जाता है। (वयं नाधमानाः गातुविंद रजसि क्षियन्तं सूर्यं हवामहे) हम सब त्रस्त हुए मार्गदर्शक और अन्तरिक्षमें निवास करनेवाले सूर्यकी स्तुति करते हैं ॥ ४३ ॥

(महिषः पृथिवी प्रः) बलवान् पृथिवीको पूर्ण करनेवाला (नाधमानस्य गातुः, अदब्धचक्षुः विश्वं परि बभूव) दुःखी मनुष्यका मार्गदर्शक, जिसका आंख न दबा है ऐसा सूर्य इस विश्वपर है। यह [विश्वं संपश्यन् सुविदत्रः यजत्रः] सब विश्वको देखनेवाला ज्ञानी याजक [इदं शृणोतु यत् अहं ब्रवीमि] यह सुनें जो मैं कहता हूं ॥ ४४ ॥

[अस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं परि] इस का महिमा पृथिवी और समुद्रके चारों ओर फैला है। [ज्योतिषा विभ्राजन् द्यां अन्तरिक्षं परि] तेजसे प्रकाशता हुआ द्युलोक और अन्तरिक्ष के चारों ओर फैला है। (सर्वं संपश्यन्०) सबको देखता हुआ वह ज्ञानी याजक यह सुनें कि जो मैं कहता हूं ॥ ४५ ॥

भावार्थ— यह सूर्य दिन और रात बनाता है, जिस समय यह जिस भूभागके सन्मुख होता है वहां दिन होता है और दूसरे भूभागमें रात्रि होती है। इस अन्तरिक्ष लोकमें विराजमान तेजस्वी सूर्यकी हम स्तुति करते हैं, वह हमें मार्गदर्शक होवे ॥ ४३ ॥

यह सूर्य सामर्थ्यवाला है, दुःखी मनुष्यको यही रास्ता बताता है। सब विश्वपर इसकी प्रभुता है। यह वर्णन वह सुने ॥ ४४ ॥

इसकी महिमा पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें फैली है। वह ज्ञानी यह सुने ॥ ४५ ॥

यो अ॑न्ना॒दो अन्न॑पतिर्ब॒भूव॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑रु॒त यः ।
भू॒तो भ॑वि॒ष्यद् भुव॑नस्य॒ यस्पति॑ः ॥ तस्मै॑ दे॒वस्य॑० ॥ ७ ॥
अ॒हो॒रा॒त्रैर्विमि॑तं त्रिं॒शद॑ङ्गं त्रयोद॒शं मास॒ं यो नि॒र्मिमी॑ते ।
तस्मै॑ दे॒वस्य॑० ॥ ८ ॥
कृ॒ष्णं नि॒यानं॒ हर॑यः सुप॒र्णा अ॒पो वसा॑ना दिव॒मुत् प॑तन्ति ।
त आव॑वृत्र॒न्त्सद॑नादृ॒तस्य॑ । तस्मै॑ दे॒वस्य॑० ॥ ९ ॥
यत् ते॑ च॒न्द्रं क॑श्यप रोच॒नाव॒द् यत् सं॑हि॒तं पु॑ष्क॒लं चि॒त्रभा॑नु ।
अस्मि॑न्त्सूर्या॑ आर्पि॑ताः सा॒कम् ॥ तस्मै॑ दे॒वस्य॑० ॥ १० (१२)

चक्षुषा रोदसी ऐक्षत) जो अंदरसे क्रुद्ध होकर आंखसे द्युलोक और भूलोकको देखता है ॥ ० ॥ ६ ॥

(यः अन्नादः अन्नपतिः उत यः ब्रह्मणस्पतिः बभूव) जो अन्नभक्षक, अन्नका स्वामी और ज्ञानका स्वामी बना है, तथा (यः भुवनस्य पतिः भूतः भविष्यत्) जो जगत् का स्वामी था और रहेगा ॥ ० ॥ (यः अहोरात्रैः विमितं त्रिंशत्–अंगं) जो दिन और रात्रीके तीस दिनोंका बना एक महिना ऐसे (त्रयोदशं मासं यः निर्मिमीते) तेरह महिने जो निर्माण करता है ॥ ० ॥ ७–८ ॥

(अपः वसानाः सुपर्णाः हरयः) जलका धारण करनेवाले उत्तम गतिमान् सूर्यकिरण (कृष्णं नियानं दिवं उत्पपन्ति) कृष्ण वर्ण या नीलवर्णवाले सबके स्थानरूप द्युलोकके प्रति चलते हैं, (ते ऋतस्य सदनात् आववृत्रन्) वे किरण जलके स्थानसे पुनः पुनः लौटते हैं ॥ ० ॥ हे (कश्यप) देखनेवाले देव ! (यत् ते चन्द्रं रोचनावत् पुष्कलं संहितं चित्रभानु) जो तेरा आनन्दकारी प्रकाशमय बहुत इकट्ठा हुआ विचित्र तेज है (अस्मिन् सप्त सूर्याः साकं अर्पिताः) इसमें सात सूर्य साथ साथ रहते हैं ॥ ० ॥ ९–१० ॥

भावार्थ– जिसकी प्रेरणासे वायु और जलप्रवाह चल रहे हैं ॥ जो सबको मारता और जीवित करता है, जिसकी जीवनशक्तिसे सब प्राणिमात्र जीवित रहते हैं ॥ जो प्राणसे द्यावापृथिवीको तृप्त करके अपानसे समुद्रको परिपूर्ण करता है, जिसमें अग्नि आदि सब देव पंक्ति बांधकर रहते हैं, जिसमें सब दिशाएं, सब जलप्रवाह,

यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति ।
तस्य देवस्य ० ॥ २ ॥
यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा ।
तस्य देवस्य ० ॥ ३ ॥
यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति ।
तस्य देवस्य ० ॥ ४ ॥
यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः ।
यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे ॥ तस्य देवस्य० ॥ ५ ॥
यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोक्षराः ।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत ॥ तस्य देवस्य० ॥ ६ ॥

अर्थ– (यस्यात् वानाः ऋतुथा पवन्ने) जिससे वायु ऋतुओंके अनुसार बहते हैं, (यस्मात् समुद्राः अधि वि क्षरन्ति) जिससे समुद्र–जलप्रवाह–विविध प्रकारसे प्रवाहित होने हैं ॥ ० ॥ (यः मारयनि प्राणयनि) जो मारता है, जो जीवित रखता है, (यस्मात् विश्वा भुवनानि प्राणन्ति) जिससे सब भुवन जीवित रहने हैं ॥ ० ॥ २—३ ॥

(यः प्राणेन द्यावापृथिवी नर्पयनि) जो प्राणसे द्युलोक और भूलोक-को तृप्त करना है और (यः अपानेन समुद्रस्य जठरं पिपर्ति) जो अपानसे समुद्रका पेट पूर्ण करना है ॥ ० ॥ (यस्मिन्) जिसमें विराट् परमेष्ठी प्रजापनि अग्नि वैश्वानर (सह पंक्त्या श्रिनः) पंक्तिके साथ आश्रय लिये हैं ॥ ० ॥ ४–५ ॥

(यस्मिन् षट् उर्वीः पञ्च दिशः अधिश्रिनाः) जिसमें छः नथा पांच बडी दिशाएं आश्रित हुई हैं नथा जिसमें (चनस्रः आपः यज्ञस्य त्रयः अक्षराः) चार प्रकारके जल और यज्ञके नीन अक्षर हैं, (यः अन्तरा क्रुद्धः

भावार्थ– जिस परमात्माने यह संपूर्ण जगत् निर्माण किया है और जो उसके अन्दर व्यापकर रहता है, जिसके अन्दर ये सूर्यसे प्रकाशित होनेवाली सब दिशा और उपदिशाएं रहती हैं, वह विश्वाधिपति परमात्मा उसपर बडा क्रुद्ध होता है, जो ज्ञानी मनुष्यको कष्ट देता है, उसको कंपायमान करता है, क्षीणबल करता है और अन्तमें बंधनमें डाल देता है ॥ १ ॥

यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः ।
भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः ॥ तस्य देवस्य० ॥ ७ ॥
अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते ।
तस्य देवस्य० ॥ ८ ॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य । तस्य देवस्य० ॥ ९ ॥
यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु ।
अस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः साकम् ॥ तस्य देवस्य० ॥ १० (१२)

चक्षुषा रोदसी ऐक्षत) जो अंदरसे क्रुद्ध होकर आंखसे द्युलोक और भूलोकको देखता है ॥ ० ॥ ६ ॥

(यः अन्नादः अन्नपतिः उत यः ब्रह्मणस्पतिः बभूव) जो अन्नभक्षक, अन्नका स्वामी और ज्ञानका स्वामी बना है, तथा (यः भुवनस्य पतिः भूतः भविष्यत्) जो जगत् का स्वामी था और रहेगा ॥ ० ॥ (यः अहोरात्रैः विमितं त्रिंशत्-अंगं) जो दिन और रात्रीके तीस दिनोंका बना एक महिना ऐसे (त्रयोदशं मासं यः निर्मिमीते) तेरह महिने जो निर्माण करता है ॥ ० ॥ ७-८ ॥

(अपः वसानाः सुपर्णाः हरयः) जलका धारण करनेवाले उत्तम गतिमान् सूर्यकिरण (कृष्णं नियानं दिवं उत्पतन्ति) कृष्ण वर्ण या नीलवर्णवाले सबके स्थानरूप द्युलोकके प्रति चलते हैं, (ते ऋतस्य सदनात् आववृत्रन्) वे किरण जलके स्थानसे पुनः पुनः लौटते हैं ॥ ० ॥ हे (कश्यप) देखनेवाले देव ! (यत् ते चन्द्रं रोचनावत् पुष्कलं संहितं चित्रभानु) जो तेरा आनन्दकारी प्रकाशमय बहुत इकट्ठा हुआ विचित्र तेज है (अस्मिन् सप्त सूर्याः साकं अर्पिताः) इसमें सात सूर्य साथ साथ रहते हैं ॥ ० ॥ ९-१० ॥

भावार्थ– जिसकी प्रेरणासे वायु और जलप्रवाह चल रहे हैं ॥ जो सबको मारता और जीवित करता है, जिसकी जीवनशक्तिसे सब प्राणिमात्र जीवित रहते हैं ॥ जो प्राणसे द्यावापृथिवीको तृप्त करके अपानसे समुद्रको परिपूर्ण करता है, जिसमें अग्नि आदि सब देव पंक्ति बांधकर रहते हैं, जिसमें सब दिशाएं, सब जलप्रवाह

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथंतरं प्रति गृह्णाति पश्चात् ।
ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम् ॥ तस्य देवस्य० ॥ ११ ॥
बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथंतरमन्यतः सबले सध्रीची ।
यद् रोहितमजनयन्त देवाः ॥ तस्य देवस्य० ॥ १२ ॥
स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् ॥ तस्य देवस्य० ॥ १३ ॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ यस्य देवस्य० ॥ १४ ॥

अर्थ- (बृहत् एनं पुरस्तात् अनुवस्ते) बृहत् गान इसके सामने होता है और (रथंतरं पश्चात् प्रतिगृह्णाति) रथन्तर गान पीछेसे इसका ग्रहण करता है ॥ ० ॥ (बृहत् अन्यतः पक्ष आसीत्) बृहत् गानका एक पक्ष है और (रथंतरं अन्यतः) रथन्तर गानका दूसरा पक्ष है, (सबले सध्रीची) ये दोनों बलवान् तथा साथ रहनेवाले पक्ष हैं। (यत् रोहितं देवाः अजनयन्त) वहां देवोंने रोहित सूर्यको निर्माण किया ॥०॥ ११-१२॥

(सः वरुणः सायं अग्निः भवति) वह वरुण है, परंतु वह सायंकाल अग्नि होता है, (सः प्रातः उद्यन् मित्रः भवति) वह सवेरे उदय होनेके समय मित्र कहलाता है। (सः सविता भूत्वा अन्तरिक्षेण याति) वही सविता बनकर अन्तरिक्षमें संचार करता है, (सः इन्द्रः भूत्वा मध्यतः दिवं तपति) वह इन्द्र होकर द्युलोकके मध्यमें तपता है ॥ ० ॥ १३ ॥

(अर्थ देखो अथर्व० १०।८।१८; १३।२।३८) ॥ ० ॥ १४ ॥

यज्ञके सब विधिज्ञान आश्रित हुए है, जो क्रुद्ध होकर अपने आंखसे सबका निरीक्षण करता है ॥ २-६ ॥

जो एक मात्र सबका भक्षक है तथापि जो अन्न और ज्ञान सबको देता है, जो सबका एक मात्र स्वामी था, है और रहेगा, जो दिन रात्र, महिना और वर्षरूपी कालचक्र निर्माण करता है, जिसके किरण पृथ्वीपरका जल लेकर आकाशमें उडते हैं और वहां मेघमंडलमें वारंवार प्रकाशित होते है, जिसका प्रकाश एकत्रित होकर सबको प्रकाशित करता है और जिसमें ये सब सूर्य रहते हैं ॥ ७-१० ॥

बृहत् और रथन्तर गान इसके आगेपीछे चलते हैं। ये दोनों यज्ञके प्रबल

यो अ॑न्नादो अन्न॑पतिर्ब॒भूव॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑रु॒त यः ।
भूतो भ॑वि॒ष्यद् भुव॑नस्य॒ यस्पति॑ः ॥ तस्मै॑ दे॒वस्य॑० ॥ ७ ॥
अ॒होरा॒त्रैर्विमि॑तं त्रिं॒शद॑ङ्गं त्रयोद॒शं मासं॒ यो निर्मिमी॑ते ।
तस्यं॑ दे॒वस्य॑० ॥ ८ ॥
कृ॒ष्णं नि॒यानं॒ हर॑यः सुप॒र्णा अ॒पो वसा॑ना॒ दिव॒मुत् प॑तन्ति ।
त आव॑वृत्र॒न्त्सद॑नादृ॒तस्य॑ । तस्यं॑ दे॒वस्य॑० ॥ ९ ॥
यत् ते॑ च॒न्द्रं क॑श्यप रोच॒नाव॒द् यत् सं॑हि॒तं पु॑ष्क॒लं चि॒त्रभा॑नु ।
अस्मि॑न्त्सू॒र्या आर्पि॑ताः सा॒कम् ॥ तस्यं॑ दे॒वस्य॑० ॥ १० (१२)

चक्षुषा रोदसी ऐक्षत) जो अंदरसे क्रुद्ध होकर आंखसे द्युलोक और भूलोकको देखता है ॥ ० ॥ ६ ॥

(यः अन्नादः अन्नपतिः उत यः ब्रह्मणस्पतिः बभूव) जो अन्नभक्षक, अन्नका स्वामी और ज्ञानका स्वामी बना है, तथा (यः भुवनस्य पतिः भूतः भविष्यत्) जो जगत् का स्वामी था और रहेगा ॥ ० ॥ (यः अहोरात्रैः विमितं त्रिंशत्-अंगं) जो दिन और रात्रीके तीस दिनोंका बना एक महिना ऐसे (त्रयोदशं मासं यः निर्मिमीते) तेरह महिने जो निर्माण करता है ॥ ० ॥ ७-८ ॥

(अपः वसानाः सुपर्णाः हरयः) जलका धारण करनेवाले उत्तम गतिमान् सूर्यकिरण (कृष्णं नियानं दिवं उत्पपन्ति) कृष्ण वर्ण या नीलवर्णवाले सबके स्थानरूप द्युलोकके प्रति चलते हैं, (ते ऋतस्य सदनात् आववृत्रन्) वे किरण जलके स्थानसे पुनः पुनः लौटते हैं ॥ ० ॥ हे (कश्यप) देखनेवाले देव ! (यत् ते चन्द्रं रोचनावत् पुष्कलं संहितं चित्रभानु) जो तेरा आनन्दकारी प्रकाशमय बहुत इकट्ठा हुआ विचित्र तेज है (अस्मिन् सप्त सूर्याः साकं अर्पिताः) इसमें सात सूर्य साथ साथ रहते हैं ॥ ० ॥ ९-१० ॥

भावार्थ- जिसकी प्रेरणासे वायु और जलप्रवाह चल रहे हैं ॥ जो सबको मारता और जीवित करता है, जिसकी जीवनशक्तिसे सब प्राणिमात्र जीवित रहते हैं ॥ जो प्राणसे द्यावापृथिवीको तृप्त करके अपानसे समुद्रको परिपूर्ण करता है, जिसमें अग्नि आदि सब देव पंक्ति बांधकर रहते हैं, जिसमें सब दिशाएं, सब जलप्रवाह,

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथंतरं प्रति गृह्णाति पश्चात् ।
ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम् ॥ तस्य देवस्य० ॥ ११ ॥
बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथंतरमन्यतः सबले सध्रीची ।
यद् रोहितमजनयन्त देवाः ॥ तस्य देवस्य० ॥ १२ ॥
स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् ॥ तस्य देवस्य० ॥ १३ ॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ यस्य देवस्य० ॥ १४ ॥

अर्थ- (बृहत् एनं पुरस्तात् अनुवस्ते) बृहत् गान इसके सामने होता है और (रथंतरं पश्चात् प्रतिगृह्णाति) रथन्तर गान पीछेसे इसका ग्रहण करता है ॥ ० ॥ (बृहत् अन्यतः पक्ष आसीत्) बृहत् गानका एक पक्ष है और (रथंतरं अन्यतः) रथन्तर गानका दूसरा पक्ष है, (सबले सध्रीची) ये दोनों बलवान् तथा साथ रहनेवाले पक्ष हैं । (यत् रोहितं देवाः अजनयन्त) वहां देवोंने रोहित सूर्यको निर्माण किया ॥०॥ ११-१२॥

(सः वरुणः सायं अग्निः भवति) वह वरुण है, परंतु वह सायंकाल अग्नि होता है, (सः प्रातः उद्यन् मित्रः भवति) वह सवेरे उदय होनेके समय मित्र कहलाता है । (सः सविता भूत्वा अन्तरिक्षेण याति) वही सविता बनकर अन्तरिक्षमें संचार करता है, (सः इन्द्रः भूत्वा मध्यतः दिवं तपति) वह इन्द्र होकर द्युलोकके मध्यमें तपता है ॥ ० ॥ १३ ॥

(अर्थ देखो अथर्व० १०।८।१८; १३।२।३८) ॥ ० ॥ १४ ॥

यज्ञके सब विधिज्ञान आश्रित हुए है, जो क्रुद्ध होकर अपने आंखसे सबका निरीक्षण करता है ॥ २-६ ॥

जो एक मात्र सबका भक्षक है तथापि जो अन्न और ज्ञान सबको देता है, जो सबका एक मात्र स्वामी था, है और रहेगा, जो दिन रात्र, महिना और वर्षरूपी कालचक्र निर्माण करता है, जिसके किरण पृथ्वीपरका जल लेकर आकाशमें उडते है और वहां मेघमंडलमें वारंवार प्रकाशित होते हैं, जिसका प्रकाश एकत्रित होकर सबको प्रकाशित करता है और जिसमें ये सब सूर्य रहते हैं ॥ ७-१० ॥

बृहत् और रथन्तर गान इसके आगेपीछे चलते हैं। ये दोनों यज्ञके प्रबल

अयं स देवो अप्स्व१न्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्त्रिः ।
य इदं विश्वं भुवनं जजान ॥ तस्य देवस्य० ॥ १५ ॥
शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम् ।
यस्योर्ध्वा दिवं तन्व१स्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति ॥ तस्य देवस्य० ॥१६॥
येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः ।
यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति ॥ तस्य देवस्य० ॥ १७ ॥
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ तस्य देवस्य० ॥१८॥

अर्थ— (यः इदं विश्वं भुवनं जजान) जिसने यह सब जगत् निर्माण किया (अयं सः देवः सहस्रमूलः पुरुशाकः अत्त्रिः अप्सु अन्तः) वह देव यहाँ [illegible] हजारों मूल और शाखाएं हैं और जो सबका भक्षक है, वह [illegible] है ॥ ० ॥ १५ ॥

(वर्चसा भ्राजमानं शुक्रं देवं) तेजसे चमकनेवाले पवित्र देवको (रघुष्यदः हरयः दिवि वहन्ति) गतिमान किरण द्युलोकमें चलाते हैं। (यस्य ऊर्ध्वाः तन्वः दिवं तपन्ति) जिसके ऊपरके भाग सूर्यलोकको [illegible] और (अर्वाङ् सुवर्णैः पटरैः विभाति) इस ओर उत्तम रंगोंसे [illegible] चमकता है ॥ ० ॥ (येन हरितः आदित्यान् संवहन्ति) जिसके साथ किरण सूर्योंको चलाते हैं, (येन यज्ञेन प्रजानन्तः बहवः [illegible]) जिस यज्ञके साथ बहुत ज्ञानी जाते हैं, (यत् एकं ज्योतिः बहुधा विभाति) जो एक तेज अनेक प्रकारसे प्रकाशता है ॥ ० ॥ १६-१७ ॥

[एकचक्रं रथं सप्त युञ्जन्ति] एक चक्रवाले रथको सात अश्व-किरण-[illegible] [सप्तनामा एकः अश्वः वहति] सात नामवाला एक अश्व उसको [illegible] है इसका [त्रिनाभि अजरं अनर्वं चक्रं] तीन केंद्रोंवाला जरा [illegible]

बृहदे॑नमनु॑ वस्ते पुरस्ता॑द् रथंत॒रं प्रति॑ गृह्णाति प॒श्चात् ।
ज्योति॒र्वसा॑ने सद॒मप्र॑मा॒दम् ॥ तस्य॑ दे॒वस्य॑० ॥ ११ ॥
बृ॒हद॒न्यत॑: प॒क्ष आसी॑द् रथंत॒रम॒न्यत॒: सब॑ले स॒ध्रीची॑ ।
यद् रोहि॑त॒मज॑नयन्त दे॒वाः ॥ तस्य॑ दे॒वस्य॑० ॥ १२ ॥
स वरु॑णः सा॒यम॒ग्निर्भ॑वति॒ स मि॒त्रो भ॑वति प्रा॒तरु॒द्यन् ।
स स॑वि॒ता भू॒त्वान्तरि॑क्षेण याति॒ स इन्द्रो॑ भू॒त्वा त॑पति मध्य॒तो दि॒वम्॥तस्य॑ दे॒वस्य॑०॥१३॥
स॒हस्रा॒ह्ण्यं॑ वि॒य॑तावस्य प॒क्षौ हरे॑र्हं॒सस्य॒ पत॑तः स्व॒र्गम् ।
स दे॒वान्त्सर्वा॒नुर॑स्युप॒दद्य॑ सं॒पश्य॑न् याति॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ यस्य॑ दे॒वस्य॑० ॥ १४ ॥

अर्थ- (बृहत् एनं पुरस्तात् अनुवस्ते) बृहत् गान इसके सामने होता है और (रथंनरं पश्चात् प्रतिगृह्णाति) रथन्तर गान पीछेसे इसका ग्रहण करता है ॥ ० ॥ (बृहत् अन्यतः पक्ष आसीत्) बृहत् गानका एक पक्ष है और (रथंनरं अन्यतः) रथन्तर गानका दूसरा पक्ष है, (सबले सध्रीची) ये दोनों बलवान् तथा साथ रहनेवाले पक्ष हैं। (यत् रोहितं देवाः अजनयन्त) वहां देवोंने रोहित सूर्यको निर्माण किया॥०॥ ११-१२॥

(सः वरुणः सायं अग्निः भवति) वह वरुण है, परंतु वह सायंकाल अग्नि होता है, (सः प्रातः उद्यन् मित्रः भवति) वह सवेरे उदय होनेके समय मित्र कहलाता है। (सः सविता भूत्वा अन्तरिक्षेण याति) वही सविता बनकर अन्तरिक्षमें संचार करता है, (सः इन्द्रः भूत्वा मध्यतः दिवं तपति) वह इन्द्र होकर द्युलोकके मध्यमें तपता है ॥ ० ॥ १३ ॥

(अर्थ देखो अथर्व० १०।८।१८; १३।२।३८) ॥ ० ॥ १४ ॥

यज्ञके सब विधिज्ञान आश्रित हुए है, जो क्रुद्ध होकर अपने आंखसे सबका निरीक्षण करता है ॥ २-६ ॥

जो एक मात्र सबका भक्षक है तथापि जो अन्न और ज्ञान सबको देता है, जो सबका एक मात्र स्वामी था, है और रहेगा, जो दिन रात्र, महिना और वर्षरूपी कालचक्र निर्माण करता है, जिसके किरण पृथ्वीपरका जल लेकर आकाशमें उडते है और वहां मेघमंडलमें वारंवार प्रकाशित होते है, जिनका प्रकाश एकत्रित होकर सबको प्रकाशित करता है और जिसमें ये सब रहते है ॥ ७-१० ॥

बृहत् और रथन्तर गान इसके आगेपीछे चलते हैं। ये दोनों यज्ञके प्रबल

वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे। तस्य देवस्य० ॥२२॥
त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितोऽर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि।
किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवाः॥ तस्य देवस्य० ॥२३॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्वे उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः ॥ तस्य देवस्य० ॥ २४ ॥
एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः तस्य देवस्य ॥
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २५ ॥

जन्म हम जानते हैं ॥ ० ॥ (यः जायमानः पृथिवीं वि और्णोत्) जो जन्मतेहि पृथ्वीको आच्छादित करता है (अन्तरिक्षे समुद्रं आ अदधात्) अन्तरिक्षमें समुद्रको धारण करता है ॥ ० ॥ २१–२२ ॥

हे अग्ने! (त्वं क्रतुभिः, अर्कः क्रतुभिः हितः) तू यज्ञोंसे और सूर्य-किरणोंसे युक्त है, तू (समिद्धः दिवि उत् अरोचथाः) प्रदीप्त होकर द्यु-लोकमें प्रकाशता है। (मरुतः पृश्निमातरः किं अभ्यार्चन्) भूमिको माता माननेवाले मरुत् तब उसकी अर्चना करने लगे कि (यत् देवाः रोहितं अजनयन्त) जिस समय देवोंने सूर्यको प्रकट किया ॥ ० ॥ (यः आत्मदा बलदा यस्य प्रशिषं विश्वे देवाः उपासते) जो आत्मिक बल देनेवाला और शक्ति देनेवाला है, जिसकी आज्ञाका पालन सब देव करते हैं, (यः अस्य द्विपदः चतुष्पदः ईशे) जो इस द्विपाद और चतुष्पादका स्वामी है ॥ ० ॥ २३–२४ ॥

भावार्थ— अस्त, उदय, उषा, द्यु, अन्तरिक्ष ये सब तीन तीन हैं। सबका जन्म तीन प्रकारका है। जन्मतेहि पृथ्वीको प्रकाशित करता और अन्तरिक्षमें जलों-को धरता है। अग्नि यज्ञोंके साथ और सूर्यकिरणोंके साथ प्रकाशित होता है। प्रदीप्त अग्नि यज्ञमें और चमकनेवाला सूर्य द्युलोकमें प्रकाशता है। जब देवोंके द्वारा सूर्यका उदय हुआ तब वायु भी बह रहेथे ॥ आत्मिक और शारीरिक बल देने-वाला देव है, इसकी आज्ञा सब मानते हैं, सब द्विपाद चतुष्पाद उसीकी आज्ञामें रहते हैं ॥ २१–२४ ॥

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा ॥ तस्य देवस्य० ॥ १९ ॥
सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे ।
तस्य देवस्य० ॥ २० ॥ (१३)
निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः ।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म ॥ तस्य देवस्य० ॥२१॥

रहित और नाशरहित यह चक्र है, [यत्र इमा विश्वा भुवना अधि तस्थुः] जहां ये सब भुवन ठहरे हैं ॥ ० ॥ १८ ॥ [ऋ० १।६४।२; अथर्व ९।९।२]

[देवानां पिता मतीनां जनिता] देवोंका पालक और बुद्धियोंका उत्पादक [उग्रः वह्निः अष्टधा युक्तः वहति) उग्र अग्नि आठ प्रकारसे युक्त होकर चलता है। (ऋतस्य तंतुं मनसा मिमानः) यज्ञके धागेको मनसे मापता हुआ (मातरिश्वा सर्वाः दिशः पवते) अंतरिक्षमें निवास करनेवाला सब दिशाओंमें गति करता है ॥ ० ॥ १९ ॥

(सम्यञ्चं तन्तुं सर्वाः प्रदिशः अनु) इस सीधे यज्ञके धागेको सब दिशाओंके अनुसार (गायत्र्यां अंतः अमृतस्य गर्भे) गायत्रीके अंदर अमृतके गर्भमें देखते हैं ॥ ० ॥ २० ॥

(तिस्रः निम्रुचः तिस्रः व्युषः) तीन अस्त और तीन उषःकाल हैं। हे (अंग) प्रिय ! (त्रीणि रजांसि तिस्रः दिवः) तीन अन्तरिक्ष और तीन द्युलोक हैं। हे अग्ने ! (ते त्रेधा जनित्रं विद्म) तेरा तीन प्रकारका जन्म हम जानते हैं। तथा (देवानां त्रेधा जनिमानि विद्म) देवोंके तीन

भावार्थ— तेजस्वी सूर्यको द्युलोकमें किरण प्रकाशित करते हैं। इसके ऊपरके किरण द्युलोकको प्रकाशित करते हैं और इस ओरके किरण इस ओर प्रकाश देते हैं। एकचक्रवाले सूर्यरथको सात किरण प्रकाशित करते हैं। एकके हि ये सात भाग हैं। इसका चक्र अजर अमर है और इसीके आधारसे सब भुवन रहते हैं। यह सब देवोंका और बुद्धियोंका उत्पादक और पालक है। यह प्रचण्ड अग्नि है और आठ प्रकारका होकर प्रकाशता है। इसीसे यज्ञका अखंड धागा फैलाया जाता है। यह अन्तरिक्षमें रहकर सर्वत्र प्रकाशित होता है। यह यज्ञका तन्तु सब दिशाओंमें फैल रहा है यह गायत्रीमें अमृतके केन्द्रमें है ॥ १६–२० ॥

[४]

[१] स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥ १ ॥
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥
स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् ।० ॥ ३ ॥
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।० ॥ ४ ॥
सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।० ॥ ५ ॥
तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश ।० ॥ ६ ॥
पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति ।०॥ ७ ॥
तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥ ८ ॥
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥
तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥ १० ॥

अर्थ- [१] (स्वः सविता दिवः पृष्ठे अवचाकशत् सः एति) वह सूर्य द्युलोकके पृष्ठभागपर प्रकाशता है और अपने तेजको प्राप्त करता है ॥ १ ॥ उसने अपने (रश्मिभिः नभः आभृतं) किरणोंसे आकाशको भरपूर कर दिया। (यह महेन्द्रः आवृतः एति) वडा इन्द्र तेजसे आवृत होकर चलता है ॥ २ ॥ (सः धाता०) वह धाता विधाता और वही (वायुः) वायु है जिसने [नभः उच्छ्रितं] आकाश ऊंचा बनाया है ॥ ३ ॥

वह अर्यमा, वरुण, रुद्र और महादेव है ॥ ४ ॥ वह अग्नि, सूर्य, और महायमभी वही है ॥ ५ ॥ [तं एकशीर्षाणः दश वत्साः युताः उपतिष्ठन्ति] उसके साथ एक मस्तकवाले दस बछडे संयुक्त होकर रहते हैं ॥ ६ ॥ [पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति] पीछेसे पूर्व दिशामें तेज फैलाता है [यत् उदेति विभासति] जो उदय होता और प्रकाशता है ॥ ७ ॥

[तस्य स एष मारुतः गणः शिक्याकृतः एति] उसके साथ यह वायु गण छिक्केमें धरेके समान चलता है ॥ ८ ॥ उसने किरणोंसे आकाश व्याप दिया है, यह महा इन्द्र तेजसे आवृत होकर चलता है ॥ ९ ॥ [तस्य इमे नव कोशा विष्टंभाः नवधा हिताः] उसके ये नौ कोश विविध रूपसे नौ प्रकार रखे हैं ॥ १० ॥

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो राज्या वत्सोऽजायत ।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥ २६ ॥ (१४)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

(एकपाद् द्विपदः भूयः विचक्रमे) एक पांववाला दो पांववालेसे अधिक दौडता है, (द्विपात् त्रिपादं पश्चात् अभ्येति) दो पांववाला तीन पांववालेके पीछेसे चलता है। (अथर्व. १३।२।२७) (चतुष्पाद द्विपदं अभिस्वरे पंक्तिं संपश्यन् उपतिष्ठमानः चक्रे) चार पाववाला दो पाववालोंको एकस्वरमें रहनेवालोंकी पंक्तिको देखता हुआ और उनसे सेवा लेता है। (तस्य देवस्य०) इस देवके प्रति वह पाप होता है कि जो ज्ञानीब्राह्मणके नाश करनेसे होता है। उस नाशकको वह कंपाता, क्षीण करता और बंधनमें डालता है ॥ २५ ॥ (ऋ. १०।११७।८)

(कृष्णायाः राज्याः पुत्रः वत्सः अर्जुनः अजायत) काले वर्णवाली रात्रिका पुत्र बच्चा प्रकाशमान सूर्य हुआ है। (सः रोहितः रुहः रुरोह) वह लाल रंगवाला सब चढानेवालोंके ऊपर चढा है. वही (ह द्यां रोहति) निश्चयसे द्युलोक पर चढता है ॥ २६ ॥ १४ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

भावार्थ–यह देव एकपादवाला होनेपर भी अनेक पांववालोंके आगे चढता है। यह सबकी पूजा स्वीकारता हुआ सबको पंक्तिमें रखकर उपासक बनाता है। इस देवताका अपराध वह करता है कि जो ज्ञानीब्राह्मणको सताता है। वह इस अपराधीको कंपाता, क्षीण करता और बंधनमें डालता है ॥ २५ ॥

रात्रि व्यतीत होकर दिन हुआ और सूर्य उदय हो चुका है। वह उदय होते हि सबसे ऊपर चढने लगा और अंतमें द्युलोकमें विराजमान होकर प्रकाशने लगा है ॥ २६ ॥

तृतीय अनुवाक समाप्त ॥ ३ ॥

[६]

[३] ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥२२॥
भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥ २३ ॥
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २४ ॥
स एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽभ्वं स रक्षः ॥ २५ ॥
स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः ॥ २६ ॥
तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ॥ २७ ॥
तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ॥ २८ ॥ (१७)

[७]

[४] स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ॥ २९ ॥
स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ॥ ३० ॥
स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥ ३१ ॥
स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥ ३२ ॥
स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥ ३३ ॥

अर्थ– [३] [ब्रह्म] ज्ञान, तप, कीर्ति, यश, [अंभः नभः] जल, अवकाश, ब्राह्मतेज, अन्न और खानपानके पदार्थ, भूत, भविष्य, श्रद्धा, [रुचिः] तेज, कान्ति, स्वर्ग और स्वधा उसे प्राप्त होती है, जो [यः एतं देवं एकवृतं वेद] इस देवको एक मात्र व्यापक देव जानता है ॥ २२–२४ ॥ [१६]

वही मृत्यु है, वही अमृत है, वह (अभ्वं) महान् है और वही [रक्षः] रक्षक अथवा राक्षस है ॥ २५ ॥ वह रुद्र (वसुदेये वसुवनिः, नमो वाके अनुसंहितः वषट्कारः) धनदानके समय धन प्राप्त करनेवाला है और वही नमस्कार यज्ञमें उत्तम रीतिसे बोला गया वषट्कार है ॥ २६ ॥ (तस्य प्रशिषं इमे सर्वे यातवः उप आसते) उसकी आज्ञामें ये सब राक्षसादि रहते हैं ॥ २७ ॥ (तस्य वशे अमू सर्वा नक्षत्रा चन्द्रमसा सह) उसके वशमें ये सब नक्षत्र चन्द्रमाके साथ रहते हैं ॥ २८ ॥ (१७)

[४] (सः वै अह्नः, रात्र्याः, अन्तरिक्षात्, वायोः, दिवः, दिग्भ्यः, भूमेः, अग्नेः, अद्भ्यः ऋग्भ्यः, यज्ञात् अजायत) वह निश्चयसे दिन रात्रि

स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥ १२ ॥
एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥ (१५)

[५]

[२] कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥ १४ ॥
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १५ ॥
न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।० ॥ १६ ॥
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।० ॥ १७ ॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।० ॥ १८ ॥
स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।० १९ ॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।० ॥ २० ॥
सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ।० ॥ २१ ॥ (१६)

अर्थ- (सः प्रजाभ्यः विपश्यति यत् च प्राणिति यत् च न) वह प्रजाओंको देखता है, जो प्राणधारण करते हैं और जो नहीं करते ॥ ११ ॥ (तं इदं निगतं सहः) वह यह इकट्ठा हुआ सामर्थ्य है। [सः एषः एकः एकवृत् एकः एव] वह यह एक है, एकमात्र व्यापक देव केवल एकहि है ॥ १२ ॥ (एते देवाः अस्मिन् एकवृतः भवन्ति) ये सब देव इसमें एकरूप होते हैं ॥ १३ [१५]

[२] [यः एतं देवं एकवृतं वेद] जो इस देवको एकमात्र एक जानता है उसे कीर्ति, यश, [अम्भः] जल, [नभः] अवकाश और [ब्राह्मण-वर्चसं] ब्राह्मतेज, अन्न और [अन्नाद्यं] खानपानके सब भोग प्राप्त होते हैं ॥ १४-१५ ॥ यह द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ सप्तम, अष्टम, नवम, दशम है [न अपि उच्यते] ऐसा नहीं कहा जाता है ॥१६—१८॥

[स सर्वस्मै विपश्यति यत् च प्राणिति यत् च न] वह सबको देखता है, जो जीवित है और जो नहीं ॥ १९ ॥ [तं इदं०] वह यह इकट्ठा हुआ सामर्थ्य है, वह एक है, एकमात्र व्यापक देव केवल एकही है। ये सब देव इसमें एकरूप होते हैं ॥ २०-२१ ॥

[८]

[५] भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥ ४६ ॥
भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥४७॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ४८ ॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ४९ ॥
अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।० ।० ॥ ५० ॥
अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।० ।० ॥ ५१ ॥ [१९]

[९]

[६] उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ।० ।० ॥ ५२ ॥
प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ।० ।० ॥ ५३ ॥

अर्थ– [५] (न-मुरात् इन्द्रः भूयान्) अमरसेभी इन्द्र वडा है, (इन्द्र, मृत्युभ्यः भूयान् असि) हे इन्द्र, तू मृत्युओंसे भी वडा है ॥ ४६ ॥ (इन्द्र अरात्याः भूयान्) हे प्रभो ! शत्रुओंसे भी तू वडा है, (त्वं शच्याः पतिः असि) तूं शक्तिका स्वामी है। (विभूः प्रभूः इति त्वा वयं उपास्महे) तू व्यापक और स्वामी है, ऐसी हम तेरी उपासना करते हैं ॥ ४७ ॥

(पश्यत नमस्ते अस्तु) हे दर्शनीय, तेरे लिये नमस्कार है। (पश्यत, मा पश्य) हे शोभन ! तू मुझे देख ॥ ४८ ॥ (अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन) खानपान, यश, तेज और ब्राह्मवर्चसके साथ मुझे युक्त कर ॥ ४९ ॥ (अम्भः अमः महः सहः इति वयं त्वा उपास्महे) जल, पौरुष, महत्ता, और वल स्वरूप तेरी हम उपासना करते हैं ॥ ५० ॥ (अम्भः अरुणं रजः रजतं सहः इति त्वा वयं उपास्महे) जल, लाल वल और श्वेत सामर्थ्यरूप तेरी हम उपासना करते है ॥ ५१ ॥ (१९)

[६] (उरुः पृथुः सुभूः भुवः इति त्वा वयं उपास्महे) महान् विस्तृत उत्तम होनेवाला, ज्ञानयुक्त ऐसी तेरी हम उपासना करते हैं ॥ ० ॥ ५२ ॥ (प्रथः वरः व्यचः लोकः इति त्वा वयं उपास्महे) विस्तृत श्रेष्ठ, व्यापक और स्थानदाता ऐसी तेरी हम उपासना करते हैं ॥ ० ॥ ५३ ॥ (भवद्वसुः, इदद्वसुः, संयद्वसुः आयद्वसुः इति त्वा वयं उपास्महे) धनयुक्त, इस

स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ॥ ३४ ॥
स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥ ३५ ॥
स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥ ३६ ॥
स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥ ३७ ॥
स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ॥ ३८ ॥
स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ३९ ॥
स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥ ४० ॥
स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ॥ ४१ ॥
पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥ ४२ ॥
यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ॥ ४३ ॥
तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥ ४४ ॥
उपो ते बध्वे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥ ४५ ॥ [१८]

अन्तरिक्ष वायु द्यु दिशा भूमि अग्नि जल ऋचा यज्ञसे हुआ. वैसाहि (तस्मात् अहः, रात्रिः, अन्तरिक्षं, वायुः, द्यौः, दिशः, भूमिः, अग्निः, अपः, ऋचः, यज्ञः अजायत) उससे दिन रात्रि अन्तरिक्ष वायु द्यु दिशा भूमि अग्नि जल ऋचा और यज्ञ हुआ ॥ २९-३९ ॥

(सः यज्ञः तस्य यज्ञः) वह यज्ञ है, उसीका यज्ञ है। (सः यज्ञस्य शिरस्कृत्) वह यज्ञका सिर करनेवाला है ॥ ४० ॥ (सः स्तनयति, स वियोतते) वह गर्जता है, वह चमकता है, (सः उ अश्मानं अस्यति) वह पत्थर (ओले) फेंकता है ॥ ४१ ॥ (पापाय वा भद्राय वा पुरुषाय वा असुराय वा) पापीके लिये, उत्तम पुरुषके लिये, असुर वृत्तिके पुरुषके लिये ॥ ४२ ॥ (यत् वा ओषधीः कृणोषि, यत् वा वर्षसि) जो ओषधियां निर्माण करता है, जो वर्षा करता है, (भद्रया यत् वा जन्यं अवीवृधः) उत्तम कल्याण बुद्धिसे जो तू जन्मे हुए को बढाता है ॥ ४३ ॥ हे (मघवन्) इन्द्र ! (तावान् ते महिमा) यह तेरा महिमा है, (उपः ते शतं तन्वः) ये सब तेरे सैंकडों शरीर हैं ॥ ४४ ॥ (उपः ते बध्वे बद्धानि) ये सब तेरे करोडों तेरे साथ बंधे हैं, (यदि वा न्यर्बुदं असि) और तू अरबोंकी संख्यामें है ॥ ४५ ॥ (१८)

अथर्ववेदके तेरहवें काण्डका मनन।

रोहित देवता।

अथर्ववेदके तेरहवें काण्डका देवता 'रोहित' है, इस रोहित का स्वरूप क्या है, इसका सबसे प्रथम मनन करना अत्यंत आवश्यक है। इस देवता के विषयके अथर्ववेदकी सर्वानुक्रमणी में ये निर्देश हैं—

उदेहि वाजिन्निति काण्डं ब्रह्माध्यात्मं रोहितादित्यदैवत्यं त्रैष्टुभम्॥

अथर्व० बृ० स० १३।१

"इस तेरहवें काण्डका देवता 'ब्रह्म अध्यात्म, रोहित आदित्य' है।" यहां आदित्य शब्द है कि जो देवताका निश्चय करनेमें सहायक हो सकता है। आदित्यका अर्थ सूर्य है। इस संपूर्ण काण्डका विचार करनेसे पता लगता है कि यहां सूर्य ही देवता प्रामुख्यसे वर्णित हुई है। इस विषयके सूचक मंत्रभाग ये हैं—

रोहित सूर्य।

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य। १।२२

इदं सदो रोहिणी रोहितस्य। १।२३

"रोहिणी नक्षत्र यह रोहितका घर है और यह रोहिणी रोहित को अनुसरती है।" यहां आकाशस्थ रोहितका वर्णन है, अतः यह सूर्यपरक है। द्वितीय सूक्तके २४ मंत्र साक्षात् सूर्यपरक हैं और २५ वें मंत्रमें 'यह तपस्वी रोहित द्युलोकपर चढता है' ऐसा कहा है, अतः यहां रोहित शब्द पूर्वानुवृत्त सूर्यके लिये ही है।

रोहितः कालो अभवत्। २।३९

यहां 'रोहित काल अर्थात् समय है' ऐसा कहा है। सूर्यसे काल होता है यह प्रत्यक्ष अनुभव है, क्यों कि दिनरात उसीसे होते हैं। और अन्यत्र सूर्यका नाम 'काल' आता है। आगे—

रोहितो यज्ञानां मुखम्। २।३९

'रोहित यज्ञोंका मुख है।' ऐसा कहा है, वह सूर्य ही है, क्यों कि सूर्योदय होनेसे यज्ञका प्रारंभ होता है। आगे—

रोहितोऽन्तरिक्षमतदिवम्॥ २।४०

भवंद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५४ ॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्यं मा पश्यत ॥ ५५ ॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेनं ॥ ५६ ॥ [२०]

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

॥ त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ॥

धनसे युक्त, सब धनोंको इकट्ठा करनेवाला, सब धनोंको पास करनेवाला मानकर तेरी हम उपासना कर रहे हैं ॥ ५४ ॥ (पश्यत ते नमः अस्तु) हे दर्शनीय ! तेरे लिये नमस्कार हो (मा पश्य) मुझे देख ॥ ५५ ॥ (अन्नाद्येन०) खानपान, यश, तेज और ब्रह्मवर्चससे मुझे युक्त कर ॥ ५६ ॥ (२०)

भावार्थ– यही देव धाता विधाता, अग्नि वायु रुद्र महादेव आदि है। सब अन्य देवता इसके अंदर हैं। यह एक है, निःसन्देह केवल एक है। जो इसको एक जानता है वही तेजस्वी, वर्चस्वी और खानापानादि भोगसे युक्त होता है। उसीसे सब पदार्थ हुए हैं और सब पदार्थोंमें वही विद्यमान है। यज्ञ भी उसीसे हुआ और यज्ञमें वही रहता है। वह बुरे और भलेके पालनके लिये सब वनस्पतियां बनाता है। यही सब इसकीहि महिमा है। इसके सैंकडों हजारों करोडों अरबों शरीर हैं। वह अमरोंसे और मृत्युसेभी महान् है। सब शक्तियां उसीकी है, अतः शक्तियोंकी उपस्थिति उसमें है, ऐसी उपासना उसी देवकी सबको करना उचित है ॥ १–५६ ॥

तेरहवां काण्ड समाप्त ।

वह सूर्यका पोता है। विद्युत सूर्यका पुत्र है और विद्युतका पुत्र अग्नि है, अतः आलंकारिक भाषामें सूर्यका पोता अग्नि हुआ। अग्नि कैसा उत्पन्न होता है, यह प्रश्न यहां हो सकता है। इसके उत्तरमें निवेदन है कि सूर्यकी उष्णतासे मेघमंडलमें विद्युत बनती है, यह विद्युत सूखे घास आदिपर गिरकर अथवा वृक्षपर गिरकर अग्नि उत्पन्न होता है। अतः यह अग्नि वास्तविक सूर्यका ही अंश है। वस्तुतः विचार किया जाय तो यह बात स्पष्ट विदित होगी, कि इस पृथ्वीपर अथवा इस सूर्यमालिका में जो भी कुछ अग्नितत्त्व अथवा उष्ण पदार्थ किंवा उष्णता उत्पन्न करनेवाला पदार्थ है, वह सब सूर्यके संबंधके कारण हि उष्णता देनेमें समर्थ है। अग्नि सूर्यसे उत्पन्न हुआ यह बात इससे पूर्व दर्शायीही है। अब पाठक लकडीका विचार करें। लकडी जलानेसे उष्णता उत्पन्न होती है, वह उष्णता कहांसे आगयी? जो उष्णता वृक्ष सूर्यकिरणोंसे प्राप्त करके अपनेमें संग्रहित करते हैं, वही लकडीमें होती है और जलनेसे वही प्रकट होती है। वस्तुतः यह सूर्यसे आयी उष्णता ही है। इसी तरह लकडीका कोयला या भूमिके अंदर मिलनेवाला कोयला, मिट्टीका तेल आदि जो जो पदार्थ उष्णता उत्पन्न करनेवाले करके प्रसिद्ध हैं, उनकी सबकी सब उष्णता सूर्यसे प्राप्त होती है। कोई सूर्यसे भिन्न अन्य पदार्थ नहीं है जो उष्णता दे सके। अतः सब आग्नेय पदार्थ सूर्यके हि विभिन्न रूप हैं।

तीन अग्नि।

पृथ्वीपर अग्नि, अन्तरिक्षमें विद्युत्, द्युलोकमें सूर्य ये तीन अग्नि हैं। वेदमें तीन अग्नि का वर्णन अनेक वार आया है वे तीन अग्नि ये हैं। परंतु ये तीन अग्नि भिन्न भिन्न नहीं हैं। ये सब एक ही अग्निके रूप हैं और वह एक अग्नि सूर्यही है। क्यों कि सूर्य के ही रूपान्तर होकर ये अग्नि बने है। अतः कहा है—

स एति सविता०। सो अग्निः। स इन्द्रः। (४।१-५)

"वह सूर्य हि अग्नि और इन्द्र अर्थात् विद्युत् है।" क्यों कि सर्य ही रूपान्तरित होकर अग्नि और विद्युत् बना है। इस प्रकार तीन पृथक् अग्नि अनुभवमें आते हैं तथापि वे विभिन्न नहीं हैं, एकही सूर्य तीन रूपोंमें दिखाई देता है।

जब गुरुकुलमें आठ वर्षका बालक प्रविष्ट होता है, तब उसको संध्याके पश्चात् अग्निमें हवन करनेका उपदेश होता है। उस समय वह समझता है कि अपना उपास्य देव अग्नि है। वह श्रद्धाभक्ति से अग्निकी उपासना करता है और मनमें सोचता है कि क्या यह अग्निदेव स्वतंत्र है? विचार करते करते उसके हृदयमें

“रोहित द्युलोकपर तपता है।” यह वर्णन सूर्यका स्पष्ट ही है। और इसमें तपनेका उल्लेख सूर्यका ही है, क्योंकि सूर्यके अतिरिक्त तपनेवाला दूसरा कोई तेजस्वी पदार्थ इस जगत् में नहीं है। आगे तृतीय सूक्तके अन्तिम मंत्रमें—

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः॥ (३।२६)

“कृष्ण वर्णवाली रात्रिका पुत्र श्वेत रंगवाला हुआ। वह रोहित बढता हुआ द्युलोकपर चढा।” इस वर्णन में तो स्पष्टही रोहित नाम सूर्यके लिये आया है। रात्रिका पुत्र सूर्य निःसन्देह है क्यों कि रात्रिके उदरमें वह जन्मता है, ऐसा आलंकारिक वर्णन अन्यत्र वेदमें भी है।

इस तरह इस सूक्तमें रोहित शब्दसे सूर्यका वर्णन मुख्यतया है, ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है। तथापि अग्निका भी निर्देश इस रोहित सूक्तमें है—

रोहित—अग्नि।

रोहितो यज्ञस्य जनिता। (१।१३)

‘रोहित यज्ञका उत्पादक है।’ अग्नि हि यज्ञका उत्पादक है यह बात सिद्ध करनेके लिये अन्य प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है। यद्यपि सूर्योदयके पश्चात् यज्ञ होते हैं, इसलिये सूर्य भी यज्ञका उत्पादक माना जा सकता है और वैसा वह है भीः परंतु साक्षात् अग्निमें आहुतियां होमी जाती हैं, इस कारण अग्नि भी यज्ञका उत्पादक है। यही बात अन्य शब्दोंसे कही है—

रोहितो यज्ञं व्यदधात्। (१।१४)

“रोहित यज्ञको बनाता है” यह अग्नि है इसलिये यज्ञको बना सकता है। अस्तु। इस तरह रोहित नाम अग्निका भी है। अर्थात् ‘रोहित’ शब्द द्वारा जैसी अग्निकी वैसी सूर्यकी भी कल्पना इन सूक्तोंमें स्पष्ट है। कोई इसका इन्कार कर नहीं सकता। इन सूक्तों के मंत्र देखनेसे कई मंत्र स्पष्ट सूर्यपरक हैं ऐसा दीखता है, कई अग्निपरक हैं यह बात भी स्पष्ट है, कई दोनोंके वर्णनपरक हो सकते हैं। यह क्या बात है? सूक्त पढते पढते बीच बीचमें अग्निके और सूर्यके मंत्र मिलजुलकर आते हैं यह बात पढनेवालेके ध्यानमें आ सकती है। ऐसा क्यों है, इसका विचार करना आवश्यक है।

वेदमें आग्नेय पदार्थोंका मुख्य केन्द्र सूर्य माना है। अपनी पृथ्वीपर जो अग्नि है

इसी आदित्यसे जन्मा हूं, मैं इसी आदित्यकी शक्तिसे जीवित हूं और अन्तमें मैं आदित्यमेंहि मिल जाऊंगा।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति।
यं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्मेति ॥ तै. उ. ३।१

" जिससे ये सब भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होनेपर जिससे जीवित रहते हैं, फिर जाकर अन्तमें जिसमें मिलते हैं, वह ब्रह्म है।" यह ब्रह्मका लक्षण वह शिष्य इस समय सूर्यमें सार्थ हुआ अनुभव करता है, क्योंकि सब भूतमात्र सूर्यसे उत्पन्न हुए, सूर्यसे पाले जाते हैं और अन्तमें सूर्यमेंहि मिल जाते हैं। यह अनुभव स्पष्टतया दर्शाता है कि सूर्यही हमारे लिये साक्षात् ब्रह्म है। इस तरह विचार करता हुआ वह ब्रह्मचारी सूर्यकोहि अपना उपास्य मानता है, इस समय उसके सन्मुख ये वाक्य आते हैं—

एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यदादित्यो दृश्यते। कौ० उ० २।१२
आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः॥ छां० उ० ३।१९।१
आदित्यं ब्रह्मेत्युपास्ते। छां. उ. ३।१९।१
स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्ते॥ छां. उ. ३।१९।४
यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः॥ तै. उ. २।८।१; ३।१०।४
यश्चायं हृदये यश्चासावादित्ये स एकः। मै. उ. ६।१७; ७।७
आदित्यो ब्रह्म॥ मै. उ. ६।१६
ब्रह्म तमसः परमपश्यदमुष्मिन्नादित्ये...विभाति॥ मै. उ. ६।२४
य एष आदित्ये पुरुषः स परमेष्ठी आत्मा॥ महानि. उ. २३।१
आदित्ये पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपासे। बृ. उ. २।१।२; ३।१३
आदित्यात्मा ब्रह्म। मै. उ. ६।१६
आदित्यवर्णमूर्जस्वन्तं ब्रह्म। मै. उ. ६।२४

" जो यह सूर्य दीखता है, वही ब्रह्म प्रकाशता है। आदित्य ब्रह्म है यह आदेश है। आदित्य ब्रह्म है ऐसी उपासना करता है। जो मनुष्यमें है और जो आदित्यमें है वह एकही है। जो हृदयमें है और जो आदित्यमें है वह एकही है। यह आदित्यही ब्रह्म है। अंधकारके परे रहनेवाला यह आदित्य है उसमें ब्रह्म प्रकाशता है। इस आदित्यमें जो पुरुष है, वही परमेष्ठी आत्मा है। इस आदित्यमें जो पुरुष है, वह ब्रह्म है ऐसी मैं

वृष्टिकालमें आकाशमंडलमें चमकनेवाली विद्युत् आती है, किसी समय वह विद्युत् किसी वृक्षपर गिरती है, उस समय वह वृक्ष जलता है। इस कालमें गुरु उस शिष्य को समझाता है कि अपना अग्नि विद्युत् से इसी प्रकार इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ। पश्चात् वह विद्युत् को महादेव मानता है, परंतु पिछे अधिक विचार करनेपर उसे पता लगता है कि यह विद्युत् भी सूर्यसे हि उत्पन्न हुई है। अतः वह उस समय सूर्यको ही महादेव जानता है। उस समय वह कहता है—

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठे०।
स धाता स विधर्ता स वायुः०।
स वरुणः स रुद्रः स महादेवः।
सो अग्निः स उ सूर्यः स उ महायमः। (४।१—५)

'वही सविता धाता विधाता वायु वरुण रुद्र महादेव अग्नि सूर्य और महायम है।' इस तरह इस सूर्यमालिकाका कर्ता धर्ता अधिष्ठाता यही सूर्य है, इसका एक मात्र आधार यह सूर्य है, यह ज्ञान उस शिष्यको होता है। इस समय वह अपनी सूर्योपासना गायत्रीमंत्रसेही करता है—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

इस गुरुमंत्रका अर्थ इस समय वह ऐसा करता है कि "हम उस [illegible] उत्साह देनेवाले तेजका ध्यान करते हैं।" ऐसा ध्यान [illegible] अपने ब्रह्मवर्चसका आदर्श मानता है, अपनी तपस्याका [illegible], [illegible] ब्रह्मचर्यका प्रतिरूप सूर्यमें वह देखता है। आदित्य [illegible] पद धारण करता है। वह विचार करता है कि यदि सभी [illegible] बनी है, तो इस पृथ्वीपरके सभी जीवजन्तु और इनके [illegible] इसी सूर्यके अंश हैं। सूर्यसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं। अतः वेद कहता है कि—

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। [illegible]

"जो सूर्यके अंदर पुरुष है, वह मैं हूं।" [illegible] है। सूर्य मेरा पिता है [illegible] इसमें है। मेरी [illegible]

होकर रहती है। अर्थात् सूर्यमें विद्युत और अग्नि एकरूप होकर रहते हैं, इसी तरह यह पृथ्वीभी एक समय सूर्यरूपही थी। यदि यह पृथ्वी सूर्यका एक भाग थी, तो उस पृथ्वीपरके सभी पदार्थ सूर्यरूपमें थे इसमें संदेह हो नहीं सकता।

इस रीतिसे संगति लगा लगाकर, मनन कर करके वह ब्रह्मचारी सोचता है और विचार करता है, अनुभव लेता है, अपने मनकी दौड लगाता है, कल्पना करता है और अपने मत निश्चित और निर्भ्रांत करनेका यत्न करता है, निरंतर ध्यान करता है कि—

० प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम्।
० मह इति त्वोपास्महे वयम्।
० सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम्।
० लोक इति त्वोपास्महे वयम् ॥ अ. १३।८, ९ मंत्र ४७–५३

"तू प्रभु है, तू महान् है, तू उत्तम सत्ता और ज्ञानसे युक्त है और तूही सबको स्थान देता है ऐसी हम सब मिलकर तेरी उपासना करते है।" (वयं त्वा उपास्महे) हम सब तेरी उपासना करते है, इस प्रयोगमें सब मिलकर उपासना है, संघद्वारा होनेवाली यह उपासना है, केवल व्यक्तिद्वारा होनेवाली यह उपासना नहीं है। यह संघ ब्रह्मचारी गणोंका गुरुकुलनिवासी हो, अथवा ग्राम या नगरवालोंका हो। इस से कोई विचारमें भिन्नता नहीं हो सकती। सूर्य ही सब सूर्यमालाके अन्तर्गत वस्तुमात्रका प्रभु और कर्ताधर्ता है, वही सबसे महान् है, वही सबको ज्ञान देनेवाला है और वही सबका उत्तम रीतिसे निवास करनेवाला है, यह निश्चित है। ये और मंत्र ४६ से ५६ तक के ११ मंत्र इन मंत्रों में जो अनेकानेक गुण वर्णन किये हैं, वे उपासनाके समय सूर्यमे कैसे घटते हैं, इसीका विचार उपासक करते हैं। और अपने उपास्य की शक्ति अपने में धारण करनेका यत्न करते हैं। 'जैसा मेरा उपास्य देव है, वैसा तेजस्वी और कर्ताधर्ता बनूंगा' यही आकांक्षा उपासकोंकी सदा रहती है और सतत किये ध्यानसे सफल भी होती है।

स स्तनयति स विद्योतते स उ अश्मानमस्यति।
पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥ १३।७।४१—४२

" वह हमारा उपास्य देव पुण्यात्मा मनुष्य और पापी राक्षस के लिये समान:। गर्जता, चमकता और ओले वर्षाता और वृष्टि करता है।" वह किसीका पक्षपात

उपासना करता हूं। आदित्यका आत्मा ब्रह्म है। ब्रह्म तेजस्वी है और सूर्यके रंगका है।"

इस प्रकार अनेक वाक्य हैं जो सूर्यको ब्रह्म बताते हैं। ये वाक्य इस समय इस ब्रह्मचारीके सन्मुख आते हैं और वह आदित्य को ब्रह्म मानकर उसकी उपासना करता है। जो ब्रह्मचारी अग्निकी उपासना करता था, वही उस अग्निके जनक विद्युत् की उपासना करने लगा था, वही अब सूर्य को अपना आदर्श उपास्य मानता है। सूर्यको कर्ता धर्ता मानता है, वही सब तेजस्विताका केन्द्र है, वही सबका धारक और आकर्षक है, सबको आधीन रखनेवाला वही एक देव है। जो सब सूर्यमालाके ग्रहों और उपग्रहोंको धारण करता है, वह उस सूर्यमालाके अन्तर्गत पदार्थमात्रको धारण करता है, उसके देव होनेमें क्या संदेह हो सकता है? अत एव अथर्वश्रुति मे कहा है कि-

स धाता स विधर्ता। अथर्व० १३।४।४

"वही सविता धारण करनेवाला और विशेष रीतिसे आधार देनेवाला है।" पूर्वोक्त उपनिषद्वचनों में 'इस आदित्यमें ब्रह्म है' ऐसे वचन आगये हैं। इससे आदित्यका देह और उसमें विराजमान ब्रह्म है, यह कल्पना व्यक्त होती है। मानो यहां सूर्यका दृश्यमान आकार ब्रह्मका देह है और उसमें व्यापनेवाला ब्रह्म है। जैसा मनुष्य में देह और आत्मा है, वैसाही सूर्यमें देह और परमात्मा है। अतः 'सूर्यमें जो पुरुष है, वह मै हूं' इस कथन का तात्पर्य सूर्य में जो ब्रह्म और गोलक है, उनका अंश मेरा आत्मा और देह ये हैं, ऐसा स्पष्ट है। जो कुछ इस पृथ्वीपर बना है वह सूर्यके अंशका बना है, यह एकबार मान लिया जाय, तो सभी चराचर पार्थिव और अपार्थिव वस्तु जो भी इस भूमिपर है वह सूर्यसे बनी है, यह सिद्ध होता है।

पूर्वोक्त प्रकार वह ब्रह्मचारी अपने मनमें इन वाक्यों कि संगति लगाता है। वह विचार करता है कि-

स एष एक एकवृदेक एव।
सर्वे अस्मिन्देवा एकवृतो भवन्ति॥ अथर्व १३।४

"वह एक है, एकमात्र एक है, सब देव इनमें एकरूप होते हैं।" जो अग्नि विद्युत आदि विभिन्न देव हैं, वे सब इस सूर्यदेवमें एकरूप हो जाते हैं। पूर्व स्थानमें बताया है कि अग्नि विद्युत्में मिला रहता है और उसी नातेसे विद्युतभी सूर्यमें एक

"हे ऐश्वर्यवान् प्रभो! यह अद्‌भुत तेरा महिमा है, ये सब सेंकडों (हजारों, लाखों करोडों या) अरबोंकी संख्यामें जो अनंत शरीर हैं, वे सब तेरे ही हैं।" तात्पर्य तूहि इस विश्वरूपमें अपने आपको ढालता है, क्यों कि भूमिभी तेरेसे हि वनी और भूमिसे सब पदार्थ बने हैं। अतः तुझसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है। यह देव एकमात्र अकेला एक है–

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते॥ अ० १३।५।१६–१८

"वह एक है, दूसरा तीसरा चौथा पांचवां छठां सातवां आठवां नववां दसवां वह नहीं है।" क्योंकि वह एकमात्र अकेला एक है। सूर्यमालामें सूर्यका यही स्थान है, यही महत्त्व है और यही वैभव तथा ऐश्वर्य है। तथा–

स एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽभ्वं स रक्षः।
स रुद्रः वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके०॥
तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते।
तस्याम् सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह॥ अ० १३।६।२५–२८

"वही मृत्यु है, वही अमृत है, वही वडा देव है और वही रक्षक अथवा राक्षस है। वही रुद्र है। सब ये चलनेवाले ग्रहनक्षत्रादिक, तथा सब नक्षत्र और चन्द्रमाभी उसीकी आज्ञामें रहते हैं।" क्यों कि सूर्यकी आकर्षणमें ये सब ग्रह हैं, जो सूर्यमालामें विद्यमान हैं। सूर्यके आकर्षणका प्रभाव इन सवपर हो रहा है। ऐसा यह महान् सूर्यदेव सबको अमरपन देनेवाला है और सबको मृत्यु देनेवाला भी वही है। वही रुद्र है वही राक्षस है और संरक्षक भी है। अर्थात् वही सब कुछ है।

सूर्यके न होनेसे अथवा सूर्यके अतितापसे मृत्यु होता है, तथा सूर्यका प्रकाश जीवन देता है, इसलिये वही अमरत्व देनेवाला है। इसलिये इसी एक देवको ये सब नाम लगते हैं। इस समयतक इसके नाम अमृत, मृत्यु, रक्षः, रुद्र ये आगये हैं, इन नामोंके अतिरिक्त इस सूक्तमें आये नाम अब देखिये—

स एति सविता...महेन्द्रः...स धाता...विधर्ता...
स वायुः...सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः।
सोऽग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः। अ. १३।४।१–५

"वह सविता, महेन्द्र, धाता, विधर्ता, वायु, अर्यमा, वरुण, रुद्र, महादेव, अग्नि,

नहीं करता, उसका प्रकाश सबके लिये समान रीतिसे आता है, वह पुण्यात्माके लिये प्रकाशता है और पापीके लिये नहीं, ऐसी बात नहीं। वह सबकोही अपने प्रकाशसे मार्ग दर्शाता है। यहां यह मंत्रभाग देखकर उपासकभी कहने लगाता है ' कि मैंभी सब मनुष्यमात्रकी ओर अथवा प्राणिमात्रकी ओर समान भावसे अपनी दृष्टि रखूंगा, किसीका पक्षपात नहीं करूंगा। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र निषाद अन्त्यज चांडाल आदि सबकी सहायता समभावसे करूंगा। मेरा उपास्य सूर्य देव है, वह अपना प्रकाश सबको देता है, वही मेरा कर्तव्य बताता है, अतः मैं भी वैसाही करूंगा। समभाव रखनाही मेरा कर्तव्य है।' सामाजिक आचरणमें विषमता नहीं रखनी चाहिये। यह उपासना सामाजिक उपासना है, सब आवें और संमिलित होकर उपासना करें। जिनपर उस उपास्य सूर्यदेवका प्रकाश पड सकता है, वे सब इस उपासनामें संमिलित हो सकते हैं।

सब लोगोंको तथा सब जगत्को अंधेरेसे हटाकर प्रकाशमें लानेके लिये रात्रि और दिनके युगमें इस सूर्यदेवका अवतार होता है। प्रत्येक युगमें इस तरह इस देवका अवतार हो रहा है। और यह यहां आकर हमें प्रकाशका मार्ग बताकर हमारा उद्धार करता है। यदि यह देव इस तरह युगयुगमें न आवे तो सब जगत् अंधेरमें रहेगा और जीवमात्रकी स्थितिहि नहीं होगी। हम सबका जीवन उसीके प्रकाशके साथ संबंधित है। अहा! हमारे जीवनका आधार यह देव है। इसीकी जीवनशक्तिसे सबका जीवन हो रहा है, इस तरह इस जगत्का अणुरेणु उसके साथ संबंधित है। इस समय उपासकके सामने ये मंत्र आते हैं—

०तस्मादहरजायत,......रात्रिरजायत,......अन्तरिक्षमजायत.......वायुरजायत.........द्यौरजायत.......दिशोऽजायन्त.........भूमिरजायत ...... अग्निरजायत.........आपोऽजायन्त.........ऋचोऽजायन्त..........यज्ञोऽजायत ॥ अ. १८।७।२९—३९

" इसी सूर्य देवसे दिवस, रात्रि, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ, दिशा, भूमि, अग्नि, जल, मंत्र और यज्ञ होगये है।" यदि वह न होता तो इनमेंसे कुच्छभी न बनता, इनका कर्ताधर्ता यही हमारा उपास्य देव है।

नावांस्ते मघवन् नहि॒मोपो ने नन्वः शतम्।
.......यदि वासि न्यर्बुदम् ॥ अ० १३।७।४४-४५

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥ ४५ ॥
यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ॥ ५८ ॥

अ. १३।१

"सूर्यके घोडे सदा प्रकाशयुक्त हैं, इसके रथको सुखपूर्वक चलाते हैं। सर्वत्र पवित्रता करनेवाला सूर्यदेव विविध रंगवाली प्रभाके साथ द्युलोकमें प्रविष्ट होता है ॥ हे सूर्यदेव ! तू उदयको प्राप्त होता हुआ मेरे शत्रुओंका नाश कर ॥ प्रकाशके पोषक देव सूर्यके चारों ओर भ्रमण करते हैं ॥ द्युलोकमें प्रकाशित होनेवाले सूर्यको सब देखते हैं ॥ सूर्य द्युलोक भूमिलोक आदि सबको देखता है। सूर्यही सब जगत् का एकमात्र आंख है। वह द्युलोकपर आरूढ होकर विराजता है ॥ हे सूर्य जो ! पुरुष तेरे और मेरे बीचमे विरोध कराता है वह पापी है।" इत्यादि मंत्र सूर्यका वर्णन स्पष्ट रूपसे करते हैं, और उपास्य देवका महत्त्व उपासकके अन्तःकरणमें स्थिर करते हैं। इस प्रथम सूक्तके अन्य मंत्रभी इन मुख्य मंत्रोंके अनुसंधानसे विचारने चाहिये। अब द्वितीय सूक्तके मंत्रोंमें सूर्यका वर्णन कैसा गंभीर रीतिसे किया है, सो देखिये—

उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ॥ १ ॥
स्तवाम सूर्य भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः ॥२॥
विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ॥ ४ ॥
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥ ५ ॥
स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ६ ॥
सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् ॥ ७ ॥
सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ॥ ८ ॥
उद्यन्रश्मिना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ॥ १० ॥
दिवि त्वात्रिरधारयत्सूर्या मासाय कर्तवे ॥ १२ ॥
यत्समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः ॥ १४ ॥

अ. १३।२

"वृष्टि करनेवाले नियमोंमें चलनेवाले मानवोंका निरीक्षण करनेवाले सूर्यके तेजस्वी

सूर्य, महायम है।" इस सूर्यके ये नाम हैं तथा--

इन्द्रः ... शच्याः पतिः ... विभूः ... प्रभूः। अ. १३।८।४६-४७

"इन्द्र, शचीपति, विभु, प्रभुभी वही है।" ये सर्व नाम उसी देवके वाचक हैं। अर्थात् ये सब नाम उसीके गुणवर्णन कर रहे हैं। यदि यह सत्य है तो इन देवताओंके जो मंत्र हैं वे सब मंत्र इसी सूर्यदेवताका वर्णन करते हैं ऐसा मानना चाहिये। तभी तो ये इसके नाम सार्थ, अन्वर्थक और योग्य हो सकते है। इतनी कल्पना उपासक के मनमें आते हि वह इन सब मंत्रोंमें इसका वर्णन देखता है और अपने उपास्य देवका माहात्म्य जानता है और उसको मनमें धारण करता है।

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत्।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः॥
स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणिति यच्च न।
अ० १३।४।१,२,११

"वह द्युलोक के पीठपर प्रकाशता है, उसके किरणोंसे आकाश भरगया है, वह सब प्रजाओंको विशेष रीतिसे देखता है।" यह सब वर्णन उपासक को प्रत्यक्ष है। सूर्य आकाशमें प्रकाशता है, उसके किरणोंसे आकाश भर गया है, वह सबको देखता है, यह सब सूर्यके विषय में प्रतिदिन मनुष्यको प्रत्यक्ष हो रहा है। इस तरह अपने उपास्य देवकी महिमा उपासक जानता है और उसके विषयमें अपने मनका आदर वढाता है।

इस काण्डके पहिले तीन सूक्त मुख्यतः सूर्यके वाचकही है। इनमें प्रमुखतः जो मंत्र सूर्यका वर्णन करते हैं और जो विशेषकर ब्रह्मचारीके सन्मुख सूर्यका ध्यान करते समय आते हैं, उनका अब मनन करते है—

उदेहि वाजिन्। १३।१।१

"हे बलवान् सूर्यदेव! उदयको प्राप्त हो।" यह प्रार्थना सूर्य को लक्ष्य करके हि है। इसके साथ देखने योग्य मंत्र ये है—

सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम्।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश॥२४॥
उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि॥ ३२॥
ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यान्ति सूर्यं॥ ३५॥
इनः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम्॥ ३९॥

किरण उदयको प्राप्त होनेके पश्चात् बहुतही चमकते हैं॥ जो अपने तेजस्वी किरणोंद्वारा सब दिशाओंको प्रकाशित करता है, उस सूर्यदेवकी प्रशंसा हम करते है, उसके गुण गाते हैं॥ बडे प्रभावशाली सात किरण तेजस्वी ज्ञानी सूर्यदेवको उठाकर ले जाते हैं॥ द्युलोक, भूलोक तथा अहोरात्रको निर्माण करके, हे सूर्य! तू जाता है॥ जिससे दोनों सीमाओं तक तू जाता है. उस चलनेवाले रथके लिये स्वस्ति हो! बडी सात किरणें किंवा गतिमान् सौ किरणें तुझको चला रही है॥ हे सूर्य! तू ऐसे सुख-दायी गतिमान् उत्तम रथपर चढ॥ सूर्यने सुवर्णके समान चमकनेवाले तेजस्वी किरण वेगके लिये अपने रथको जोते हैं। उदय होनेपर तू किरणोंको फैलाता है और सब रूपोंको प्रकाशित करता है॥ महिनोंका विभाग करनेके लिये तुझे द्युलोकमें रखा है॥ जो समुद्रके आश्रयसे रहता है. वह सूर्य प्राप्त करना चाहता है॥"

यहांतकके सब मंत्र प्रायः सूर्यपरकही है। जो मंत्र यहां अधूरे दिये है. उनके शेष भाग पाठक पूर्वस्थलमें देखें और उनके अर्थका मनन करें। इससे यहांतकके सब मंत्र सूर्यके गुणगायन करनेवाले है, ऐसा स्पष्ट हो जायगा। इनके (१६ से २४ तक) आगेके ९ मंत्र ऋग्वेदमें मंडल १।५० में आगये है और वहांभी इनकी सूर्यदेवताही है। अतः ये सूर्यका गुणवर्णन कर रहे है. इसमे कोई संदेह ही नहीं। इनमेंसे कुछ मंत्र यजु-र्वेद और अथर्ववेदमे भी दूसरे स्थानपर आगये है और सर्वत्र सूर्यदेवताके ही मंत्र है। इस कारण इनके संबंधका अधिक विचार करनेकी यहां कोई आवश्यकता नहीं है। इनके आगेके मंत्रोंसे सूर्यविषयक मंत्र देखिये—

> अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः।
> केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ॥ २८
> बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।
> महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥ २९
> रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतंग पृथिव्यां रोचसे रोचसे
> अप्स्वन्तः ॥ ३० ॥ अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने० ॥ ३३ ॥
> चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन्।
> दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥ ३४
> सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ३५
> उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम्।

परमात्मा सर्वव्यापक और पूर्ण निराकार है, उसकी उपासना निर्विषयध्यानादि द्वारा होती है। परंतु हरएक मनुष्य प्रारंभसे अन्ततक अमूर्त ब्रह्मकी उपासना यथा-योग्य रीतिसे कर सकता हैं, ऐसी बात नहीं है। उदाहरणके लिये सद्य उपनीत बालक ब्रह्मचारी ६ या ८ वर्षकी आयुमें अमूर्त ब्रह्मका ध्यान कैसा करे? इसके लिये यह असंभव है। ध्यानधारणाकी सिद्धिके पश्चात् यह उपासना होना संभव हो सकती है। यह निरालंबोपासना उन्नतिकी अवस्थामें संभवनीय है। तब तक सालंबोपासना करनेकी अवस्था रहती है, उसमें अग्निहोत्रकी अग्निसे बढता हुआ और सूर्योपस्थान करता हुआ उपासक अपनी प्रगति कर सकता है। यह सालंब उपासना इस काण्डके इन सब सूक्तोंमें बताई है और इस उपासनाके लिये 'सूर्य' का निर्देश यहां किया है।

निरुक्तादि ग्रंथोंमें जहां देवताओंका निरूपण किया है, वहां भी सब वेदके देवता-ओंके नाम सूर्यपर घटानेका ही यत्न किया है। और देवशत्रु असुरोंके नाम मेघोंपर घटानेका यत्न किया है। यदि वह प्रकरण पाठक सूक्ष्म विचार के साथ यहां अनु-संधान करके देखेंगे, तो उनको वही बात यहां दीख सकती है।

इस सूक्तमें भी सूर्यके नाम जो गिनाये हैं, उनमें रुद्र, इन्द्र, चन्द्र, महेन्द्र, सविता आदित्य, धाता, विधाता, विधर्ता, पतंग, अर्यमा, वरुण, यम, महायम, देव, महा-देव, एक, एकवृत्, रोहित, सुपर्ण, अरुण इत्यादि नाम गिनाये हैं। अर्थात् इन नामोंके अनेक देवताओंके सूक्तोंसे एक ही सूर्यदेवका वर्णन होता है, यह बात इस रीतिसे स्पष्ट हो जाती है। सब अन्य देव एक ही सूर्यमें मिल जाते हैं इस तरहके वर्णनसे अनेक देवोंका भेदभाव सूर्यमें नष्ट होता है यह स्पष्ट है, अर्थात् अनेक देवता-ओंके मंत्रोंसे वेदमें सूर्यका ही वर्णन है और वह उपासना के लिये ही है।

पुराणोंमी सूर्यपर हि 'विष्णु' का रूपक करके अनेक अवतारोंका वर्णन और अनेक कथाओंके प्रसंग वर्णन किये हैं। श्रीमद्भागवतमें भी प्रातःकालके सूर्यका नाम ब्रह्मा, मध्याह्नके सूर्यका नाम विष्णु और रात्रिके समय के सूर्यका नाम शिव रुद्र ... सूर्यमें हि बताया है। इस तरह सूर्यके रूपकपरहि ब्रह्मा विष्णु शिव ... शुक्र वहकल्पित हैं, यह बात वहां स्पष्ट हो गयी है। ब्रह्मा की पुत्री सावित्री ... यस्योर्ध्वा लक्ष्मी और शिवकी पत्नी काली यह सब इस तरह सूर्यपर हि रूपक ... सत युञ्जन्ति रोचन करनेसे सहस्रों पृष्ठोंका महाग्रंथ बनेगा, वैसा यहां बना...

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो राञ्याः वत्सोऽजायत ।
सह द्यामधि रोहति० ॥ २६ ॥ अ० १३।२

" जलका धारण करनेवाले सूर्यकिरण नीलवर्णवाले आकाशकी दिशासे ऊपर जाते हैं, वे जलके अर्थात् मेघोंके स्थानको पहुंचते है ॥ हे सूर्य ! जो आनन्द देनेवाला चन्द्रप्रकाश है. उसमें सूर्यके सात किरण ही समर्पित हुए है (अर्थात् सूर्यके किरण चन्द्रमें जाकर वहांसे जो प्रकाश हमें प्राप्त होता है. वह चान्दना कहकर प्रसिद्ध है ॥) वही सूर्य जब अन्तरिक्षमें होता है, तब उसको सविता कहते है और जब मध्याह्नमें तपता है, उस समय उसको इन्द्र कहा जाता है (अर्थात् ८ बजेसे १०॥ बजेतकके सूर्यका नाम 'सविता' है और ११ से १ बजेतकके सूर्यका नाम 'इन्द्र' है ॥) सूर्यरूपी पवित्र देवका प्रकाश आकाशमें फैला है. जिसके किरण एक ओर द्युलोकको प्रकाशित करते है और दूसरी ओर भूमंडलकी ओर वही विविध प्रकार के साथ चमकता है । सूर्यके रथको सात अश्व जोते है (अर्थात् सात किरण है) ॥ कृष्णा नामक काले रंगवाली रात्रिका पुत्रही यह प्रकाशमान सूर्य है. वह द्युलोकपर चढता है ॥ "

इस तरह तीनों सूक्तोंमें जो मंत्र है वे सब सूर्यका वर्णन [illegible] । इनमें [illegible] मंत्र अत्यंत स्पष्ट है. कई अग्निके मिषसे सूर्यका वर्णन करते है. [illegible] सूर्यकाही वर्णन करते हैं और कई स्पष्ट रूपसे [illegible] वर्णन [illegible] । पाठक इन मंत्रोंका शब्दार्थ जो पूर्व स्थलमें दिया है. वारंवार देखें. मनन [illegible] आशयको जानें और देखें कि यहां सूर्यकी स्तुति [illegible] है ।

इस काण्डकी देवता आदित्य. रोहित और अध्यात्म है । [illegible] ये नाम सूर्यके है । रोहित नाम अग्निका भी है. परंतु [illegible] होनेसे सूर्यके साथ संबंधित है । अध्यात्म पदसे यहां [illegible] चाहिये । इसका तात्पर्य व्यक्तिगत आत्माके [illegible] सूर्यका ही अंश है इसलिये जो आध्यात्मिक अंश [illegible] यहां अंशरूपसे प्रत्येक व्यक्तिमें आया है. [illegible] सूर्यसेहि आया है इस तरह [illegible] व्यक्तिगत सूर्यकी [illegible] है ।

७ यूयमुग्राः पृश्निमातरः (३)= तुम बडे उग्रवीर भूमिको माता माननेवाले हैं। शूरवीर सब अपने मातृभूमिका सत्कार करें।

८ प्रमृणीत शत्रून् = शत्रुओंका नाश करो।

९ रुहो रुरोह (४) = बढनेवाले बढें। जो उन्नति प्राप्त करना चाहते हैं, वे न रुकें, उनके मार्गमें रुकावट न हो।

१० गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः= उन्नतिके मार्गको देखता हुआ तू यहां राष्ट्रको उन्नतिके मार्गपर रख।

११ आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽऽहार्षीत् (५)= तेरे राष्ट्रको इस (परिस्थितिमें) उसी वीरने लाया है, उसीका सन्मान करना तुझे योग्य है।

१२ व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत्= उसने शत्रु दूर भगा दिये और तेरे लिये निर्भयता की है।

१३ सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन (८)= तेरे राष्ट्रमें दूध और घी भरपूर हो, ये पौष्टिक पदार्थ विपुलतामें प्राप्त हों।

१४ ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि (९) =ज्ञान और दूध से पुष्ट होता हुआ तू अपने प्रजाजनोंमें और राष्ट्रमें जागता रह, कभी न सो जा। राष्ट्रमें जाग्रत रहकर राष्ट्रको उन्नत करनेका यत्न कर।

१५ यास्ते विशस्तपसः संबभूवुः (१०)= जो प्रजाएं तपके लिये संघटित होती हैं (उनकी उन्नति होती है।)

१६ तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन= वे प्रजाजन शुभ मनोभावनाके साथ तेरे साथ सत्कार्यमें प्रविष्ट हों, सब मिलकर शुभ कार्य करें।

१७ विश्वा रूपाणि जनयन्युवा कविः (११) = तरुण कवि अनेक काव्य के रूपक बनाता है, अनेक रूपक निर्माण करता है।

१८ तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा विभाति = अग्नि तीक्ष्ण प्रकाशके साथ प्रकाशता है।

१९ गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि (१२) =मेरे गौओंका और वीरोंका पोषण होता रहे।

२० वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि (१३) = वाणी, कान और मनके साथ हवन करता हूं, (वाणीसे मंत्रोच्चारण, कानसे मंत्रश्रवण और मनसे मनन करता हुआ हवन करता हूं।)

का विचार नहीं है और वैसी यहां आवश्यकता भी नहीं है। यहां जितना दिग्दर्शन किया है उतना इस वैदिक विषयके ज्ञानके लिये पर्याप्त है। वेदके अन्यान्य वर्णन जैसे सूर्यपर घटते हैं वैसे हि ब्राह्मण ग्रंथकी कथाएं और इतिहास पुराणकी कथाएं भी सूर्यपर रूपकालंकार से रचित हैं यही बात यहां संक्षेपसे बताना है। इसका अर्थ कोई यह न समझे कि प्रत्येक पंक्ति सूर्यपरक है, परंतु इतनाही समझे कि मुख्य कथाप्रसंग सूर्यपर अलंकार मानकर रचा गया था। उपप्रसंगोंमें विविध संचार हुए ही होंगे। इस तरह सब ग्रंथोंके वर्णन मुख्यतया सूर्यपरक हैं। इतना कहनेसे सबकी उपास्य देवता सूर्य है यह बात सूचित होती है। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किसी स्वतंत्र ग्रंथ में करेंगे इतनाही यहां बताकर इस काण्डका विवेचन यहां समाप्त करते हैं॥

बोध वाक्य।

इस काण्डमें कई वाक्य अन्यान्य रीतिसे विशेष उपदेश देते हैं, उनका विचार अब संक्षेपसे करेंगे—

प्रथम सूक्त।

१ उदेहि वाजिन् (१)= हे बलवान्! अभ्युदयको प्राप्त हो! अपना अभ्युदय करो, कदापि अवनत न हो।

२ इदं राष्ट्रं प्रविश सूनृतावत्= इस सत्यनिष्ठ राष्ट्रमें आवेश उत्पन्न कर, इस प्रिय राष्ट्रमें प्रविष्ट होकर कार्य कर।

३ स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु= वह तुझे अपने राष्ट्रकी उन्नतिके हेतु उत्तम भरणपोषणके साधनोंसे युक्त करे। तू अपने राष्ट्रमें राष्ट्रीय उन्नतिके लिये उत्तम भरणपोषणके साधनोंसे युक्त होकर विराजमान हो।

४ उद्वाज आगन् (२)= अपना बल उन्नतिके लिये प्रकट कर, उन्नतिके हि कार्यमें अपना सामर्थ्य लगा दो।

५ विश आरोह त्वद्योनयो याः= प्रजाजनोंमें उच्च हो, जिनमें तुम्हारी उत्पत्ति है। तू अपनी जातिमें उन्नत हो, उच्च स्थान प्राप्त कर।

६ अप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आवेशयेह= जलस्थानों, औषधियोंके उद्यानों, गौवों, चतुष्पादों और द्विपादोंको यहां अपने देशमें उत्तम रीतिसे रहने दो। ये रहें और उन्नत होवें।

तेजस्वी घोडे सदा उत्तम सुखदायी रथको उत्तम रीतिसे ले चलाते हैं।

३५ वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं धेनुरनपस्पृगेषा (२७)= दूध और घी देनेवाली गौको विशेष रीतिसे तैयार कर, यह दोहनेके समय हलचल न करनेवाली उत्तम गौ है।

३६ क्षेमो अस्तु, विमृधो नुदस्व = सबका कल्याण हो, शत्रु दूर हो जांय।

३७ अभीषाड् विश्वाषाड् सपत्नान् हन्तु ये मम (२८)=जो मेरे शत्रु हैं उन सबको विजयी वीर नाश करे।

३८ हन्त्वेनान्प्रदहत्वरिर्यो नः पृतन्यति (२९)= जो शत्रु हमपर सेनाके साथ हमला करता है, उसको मारा जावे।

३९ वयं सपत्नान् प्रदहामसि = हम सब शत्रुओंको जलावेंगे।

४० अवाचीनानव जहि अधा सपत्नान्मामकान्(३०)=हमारे शत्रुओंको नीचे करके दबा दे।

४१ सपत्नानधरान्पादयस्वास्मत् (३१) = हमारे शत्रुओंको नीचे गिरा दो।

४२ अस्मद्व्यथया सजातमुत्पिपानं = हमारे सजातीय शत्रुको व्यथासे युक्त कर, दुःखी कर।

४३ अधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः (३१) = हमारे शत्रु निष्फलक्रोधवाले होकर नीचे गिर जांय।

४४ सपत्नानव मे जहि, अवैनानश्मना जहि, ते यन्त्वधमं तमः (३२) = मेरे शत्रुओंका नाश कर, शत्रुओंका पत्थरोंसे नाश कर, मेरे शत्रु अंधेरेमें जावें।

४५ वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति (३३)=बच्चेको ज्ञानवान् होते हुए भी ज्ञानके साथ बढाते हैं।

४६ पृथिवीं च रोह, राष्ट्रं च रोह, द्रविणं च रोह, प्रजां च रोह, अमृतं च रोह। (३४) = पृथ्वी, राष्ट्र, धन, प्रजा और अमरपन की वृद्धि कर।

४७ ये राष्ट्रभृतः, तैष्टे राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानाः (३५) =जो राष्ट्र-पोषक वीर हैं, उनके द्वारा तेरे राष्ट्रका उत्तम मनके साथ धारण होवे।

२१ स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु = वह मुझे उन्नतियोंके साथ समितिके लिये उन्नत बनावे।

२२ तस्मात्तेजांस्युप मेमान्यागुः (१४) = उस (यज्ञ) से अनेक तेज मुझे प्राप्त हो गये हैं। यज्ञसे विविध तेज प्राप्त होते है।

२३ आ त्वा रुरोह रेतसा सह (१५) = वीर्य के साथ वह तुझे उन्नत करे. पराक्रम के साथ वह (यज्ञ) तुझे बढावे।

२४ वाचस्पते पृथिवी नः स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा (१७) = हे वाणीके पति ! पृथ्वी हमारे लिये कल्याण करनेवाली होवे, घर हमारे लिये सुखदायक होवे, बिछौने हम सबके लिये कल्याणकारी होवें।

२५ इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु = यहां ही प्राण हमारी मित्रतामें रहे, हम दीर्घायु हों।

२६ तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु = हे परमात्मन् ! अग्नि तुझे आयु और तेजके साथ युक्त करे।

२७ वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः (१९) = हे वाणीके अधिष्ठाता ! मेरा मन सुविचारयुक्त हो, गोशालामें गौवें हों और हमारे घरमें संतान हों।

२८ सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहि (२०) = [illegible] आगे बढ, सब शत्रुओंका नाश कर और उन्नत हो।

२९ इदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् = इस राष्ट्रको [illegible] बनाओ।

३० अनुव्रता रोहिणी [illegible] = [illegible] उत्तम वर्णवाली तेजस्विनी बढनेवाली [illegible]

३१ [illegible] = [illegible] प्रकारके [illegible]।

३२ [illegible] = [illegible] करेंगे।

३३ [illegible] = [illegible] उसकी रक्षा करते हैं।

३४ [illegible] = [illegible]

अथर्ववेद।

त्रयोदश काण्डकी विषयसूची।

विषय	पृष्ठ
१ राष्ट्रोद्धारक।	२
२ ऋषि, देवता और छन्द।	३
३ वह निःसन्देह एक है।	६
४ त्रयोदश काण्ड। अध्यात्म-प्रकरण। प्रथम सूक्त।	७
५ ,, ,, द्वितीय सूक्त।	२८
६ ,, ,, तृतीय सूक्त।	४०
७ अथर्ववेद-तेरहवें काण्डका मनन।	५४
१ रोहित देवता।	५४
२ ,, सूर्य।	,,
३ ,, अग्नि।	५५
४ तीन अग्नि।	५६
८ बोध-वाक्य।	६१

त्रयोदश काण्ड समाप्त।

४८ भूमिमब्रवीत्, त्वदीयं सर्वं जायतां यद्भूतं यच्च भाव्यम् (५४)= उसने मातृभूमिसे कहा कि 'जो हुआ और जो होनेवाला है, वह सब तेरे लिये अर्पण हो जाय।'

४९ स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत। तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत्किंचेदं विरोचते। (५५) = वह पहिला बना हुआ और बननेवाला यज्ञ हुआ, उससे बना यह सब जो कुछ चमकता है।

द्वितीय सूक्त।

५० स्तवाम भुवनस्य गोपां (२) = भुवनके रक्षक की प्रशंसा करते है।

५१ मा त्वा दभन्परियान्तमाजिं (५) = युद्धमें जानेवाले तुझे शत्रु न दबावें।

५२ स्वस्ति दुर्गां अति याहि शीघ्रं = कुशलतापूर्वक शीघ्र कठिन स्थानोंके परे जा।

५३ रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनं (७)= तेजस्वी, सुखदायी, बलवान्, उत्तम चलनेवाले सुंदर रथपर चढ।

५४ द्यावापृथिवी जनयन्देव एकः (२६) = एक ही ईश्वरने द्युलोक और भूलोक बनाये हैं।

५५ अतन्द्रो यास्यन् (२८)= आलस्य छोडनेपर हि प्रगति करता है।

इस तरह अनेक उपदेशपर वाक्य इस काण्डमें हैं, जो मुख्य देवताका वर्णन करते हुए अन्यान्य बोध पाठकोंको देते है। पाठक इस रीतिने इस काण्डका अध्ययन करें।

दम्पती वियुक्त न हो।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥

अथर्व० १४।१।२२

" हे वर व वधू ! हे विवाहित स्त्रीपुरुषो ! (इह एव स्तं) तुम दोनों इस गृहस्थाश्रममें रहो। (मा वि यौष्टं) तुम कभी वियुक्त न हुआ करो। (पुत्रैः नप्तृभिः क्रीडन्तौ) पुत्रों और नातियोंके साथ खेलते हुए और (मोदमानौ) उनके साथ आनन्द करते हुए (सु-अस्तकौ) उत्तम घरदारसे युक्त होकर (विश्वं आयुः व्यश्नुतं) पूर्ण आयुतक उपभोग करते रहो।"
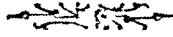
मुद्रक तथा प्रकाशक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, स्वाध्यायमंडल,
भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा.)

अथर्ववेद

स्वाध्याय।

(अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।)

चतुर्दशं काण्डम्

लेखक और प्रकाशक।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्यायमंडल, औंध (जि० सातारा.)

प्रथम वार

[illegible]

अथर्ववेदका स्वाध्याय।

(अथर्ववेद सुबोध भाष्य)

चतुर्दश काण्ड।

यह चतुर्दश काण्ड अथर्ववेदके तृतीय बृहद्विभागमें द्वितीय है। इस काण्डमें 'विवाह-संस्कार' यही एक महत्त्वपूर्ण विषय है। अतः जो पाठक इस काण्डका विशेष मनन-पूर्वक अध्ययन करेंगे, उनको "वैदिक विवाह-पद्धति" का यथायोग्य ज्ञान हो सकता है।

इसमें दो अनुवाक् हैं। प्रथमानुवाकमें ६४ मंत्रोंका एक सूक्त है और द्वितीयानुवाकमें ७५ मंत्रोंका एक सूक्त है। सब मिलकर १३९ मंत्र इस काण्डमें हैं। ये दोनों सूक्त दशतिविभागसे विभक्त हुए हैं, प्रथम सूक्तमें १० मंत्रोंकी ५ दशतियां हैं और छठी दशति १४ मंत्रोंकी है; इसी तरह द्वितीय सूक्तमें ७ दशतियां दस मंत्रोंकी हैं और आठवीं दशति ५ मंत्रोंकी है। परंतु यह दशतिविभाग केवल मंत्रोंकी गिनतीके अनुसार है, इसका अर्थके साथ विशेषसा संबंध नहीं है। अब इस काण्डके ऋषि, देवता और छंद देखिये—

ऋषि देवता और छन्द।

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	देवता	छन्द
प्रथमोऽनुवाकः।				
१	सावित्री सूर्या	६४	आत्मदेवत्यं (स्वदं) १-५ सोम, ६ [illegible] विवाहः, [illegible] सो- [illegible] [illegible]	अनुष्टुप्, [illegible]

सोमे॑नादि॒त्या ब॒लिनः॒ सोमे॑न पृथि॒वी म॒ही ।
अथो॒ नक्ष॑त्राणामे॒षामु॒पस्थे॒ सोम॒ आहि॑तः ॥ २ ॥
सोमं॑ मन्यते पपि॒वान् यत् सं॑पि॒षन्त्योष॑धिम् ।
सोमं॒ यं ब्र॒ह्माणो॑ वि॒दुर्न तस्या॑श्नाति॒ पार्थि॑वः ॥ ३ ॥
यत् त्वा॑ सोम प्र॒पिब॑न्ति॒ तत॒ आ प्या॑यसे॒ पुनः॑ ।
वा॒युः सोम॑स्य रक्षि॒ता समा॑नां॒ मास॒ आकृ॑तिः ॥ ४ ॥

अर्थ- (सोमेन आदित्याः बलिनः) सोमसे आदित्य बलवान हुए हैं। तथा (सोमेन पृथिवी मही) सोमसेहि पृथ्वी बडी हुई है। (अथो एषां नक्षत्राणां उपस्थे) और इन नक्षत्रोंके पास (सोमः आहितः) सोम रखा है ॥२॥

(यत् ओषधिं संपिंषन्ति) जब सोम नामक औषधिको पीसते हैं, तब (पपिवान् सोमं मन्यते) सोमपान करनेवाला सोमरस पीया ऐसा मानता है। (ब्रह्माणः यं सोमं विदुः) ज्ञानी लोग जिसको सोम करके समझते हैं, (तस्य पार्थिवः न अश्नाति) उसका भक्षण कोई पृथ्वीपर रहनेवाला मनुष्य नहीं करता ॥ ३ ॥

हे (सोम) सोम ! (यत त्वा प्रपिबन्ति) जब तुझे पीते हैं, (ततः पुनः आप्यायसे) उसके पश्चात् पुनः तू वृद्धिको प्राप्त करता है। (वायुः सोमस्य रक्षिता) वायु सोमका रक्षक है, और (समानां आकृतिः मासः) वर्षोंकी आकृति महिना ही है ॥ ४ ॥

भावार्थ-सोमसे आदित्यमें बल आया और पृथ्वीका विस्तार हुआ है, और नक्षत्रों में भी सोम ही तेज बढा रहा है। इसी तरह ये वधूवर सोम आदि वनस्पति भक्षण कर अपने बल,महत्त्व और तेज की वृद्धि करें ॥१॥

जब यज्ञमें सोमका रस निकालने लगते हैं, तब सोमरस पीनेका निश्चय सबको होता है। परंतु जिसको ज्ञानी जन सोम समझते हैं, वह भिन्नही है, कोई साधारण मनुष्य उसका रस पी नहीं सकता। (ये वधू वर उसी सोमरसको पीनेका पुरुषार्थ करें) ॥ ३ ॥

यह सोम जब पीया जाता है, तब पुनः वृद्धिको प्राप्त होता है। यह नष्ट नहीं होता है। क्यों कि प्राण हि इसका रक्षक है। जैसे क्रमसे महिने आनेसे वर्ष होता है, (इसी तरह नये पत्ते आनेसे सोम वल्ली पूर्ववत्

अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

(अथर्ववेदका सुबोध भाष्य)

चतुर्दशं काण्डम् ।

विवाह-प्रकरण ।

[१]

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥

अर्थ— (सत्येन भूमिः उत्तभिता) सत्यने भूमिको उठाया है । और (सूर्येण द्यौः उत्तभिता) सूर्यने द्युलोक उठाया है । (ऋतेन आदित्याः तिष्ठन्ति) ऋतसे आदित्य रहते हैं । और (सोमः दिवि अधिश्रितः) सोम द्युलोकमें आश्रित हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ— सत्यसे मातृभूमिका उद्धार किया जाता है, सूर्यके प्रकाशसे आकाश तेजस्वी होता है, सरलता के कारण आदित्य अपने स्थानमें स्थिर रहते हैं और सोम द्युलोक के प्रकाशमें आश्रय लेकर रहा है। (इसी प्रकार ये वधुवर सत्य, सूर्यप्रकाश, सरलता और द्युलोक अर्थात् स्वर्ग के आधारसे अपना जीवनक्रम चलावें ।) ॥ १ ॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ५ ॥
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥ ६ ॥
रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥ ७ ॥

अर्थ- हे सोम! (आच्छद् विधानैः गुपितः) आच्छादनोंसे सुरक्षित (बार्हतः रक्षितः) बडोंसे रक्षित हुआ तू (ग्राव्णां इत् शृण्वन् तिष्ठसि) इस रस निकालनेवाले पत्थरोंका शब्द सुनता हुआ रहता है। (पार्थिवः ते न अश्नाति) कोई मनुष्य तेरा रस भक्षण नहीं करता ॥ ५ ॥

(यत् सूर्या पतिं अयात्) जब सूर्या अपने पतिके पास गयी, तब (चित्तिः उपबर्हणं आः) संकल्प सिरोना हुआ, (चक्षुः अभि अञ्जनं आः) आंख अञ्जन बना तथा (द्यौः भूमिः कोशः आसीत्) द्यौ और पृथिवी खजाना था ॥ ६ ॥

(रैभी अनुदेयी आसीत्) रैभी ऋचा विदायीकी भाषा हो गई, (नाराशंसी न्योचनी) नाराशंसी मंत्र स्वागतका भाषण बने, (सूर्यायाः वासः भद्रं इत) सूर्याका वस्त्र बहुत कल्याणकारी है। वह सूर्या (गाथया परिष्कृता एति) गाथाओंसे सुशोभित होकर जाती है ॥ ७ ॥

हरीभरी हो जाती है, ऐसे हि वधूवर सांसारिक आपत्ति आनेपर हताश न हों, परंतु द्विगुणित उत्साहसे अपना जीवन व्यतीत करें।) ॥ ४ ॥

सोम सब प्रकारसे सदा सुरक्षित है, आंतरिक और बाह्य रक्षण-साधनोंसे वह सुरक्षित हुआ है। इस सुरक्षित हुए दिव्य सोमका भक्षण कोई साधारण मनुष्य नहीं कर सकता। (ये वधूवर इसी तरह अपने आपको सुरक्षित रखें और अपने आपको किसीका भक्ष्य होने न दें।) ॥ ५ ॥

जब वधू वरके घर जाती है, तब उसका मनही उसका सिरोना और आंख ही अञ्जन होता है, (अर्थात् बाह्य साधन उसके सुखके कारण नहीं होते, उसके मनके भावहि उसको सुख देते हैं) मानो उसके लिये यह सब आकाश का अवकाश खजानेके समान प्रतीत होता है, क्यों

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥ १४ ॥
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥ १५ ॥

अर्थ- हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (यत् सूर्यायाः वहतुं) जब सूर्याका दहेज लेकर (पृच्छमानौ त्रिचक्रेण अयातं) तुम दोनों पूछते हुए तीन चक्रोंवाले रथसे चले, तब (वां एकं चक्रं) तुम्हारा एक चक्र (क्व आसीत्) कहां था, और तुम दोनों (देष्ट्राय क्व तस्थतुः) दर्शानेके लिये कहां ठहरे थे ? ॥ १४ ॥

हे (शुभस्पती) शुभ करनेवाले ! तुम दोनों (यत् वरेयं सूर्यां उप अयातं) जब वरके द्वारा पूछने योग्य सूर्याके समीप गये, (वां तत् विश्वे देवाः अन्वजानन्) तुम्हारा वह कर्म सब देवोंने पसंद किया था, (पूषा पुत्रः पितरं अवृणीत) पूषाने पुत्र पिताको स्वीकार करनेके समान तुम्हारा स्वीकार किया ॥ १५ ॥

भावार्थ- यह वधू पतिके घर जाते समय जिस मनोमय रथपर बैठती है, उसके चक्र शुद्ध हों । (यहां चालचलनकी शुद्धता और मनोरथों की पवित्रता वधू धारण करे यह बात सूचित की है ।) ॥ १२ ॥

वधूका पिता वरको समर्पण करनेके लिये गौरूपी दहेज पहिले वरके स्थानपर पहुंचावे । वह पहिले वहां पहुंचे और पश्चात् विवाह हो । जैसा मघा नक्षत्रमें गौवीं भेजी जांय, तो फल्गुनी नक्षत्रमें विवाह होवे ॥ १३ ॥

वधूकी ओरसे जो दहेज वरके पास लेजाना हो वह कोई दो सज्जन (यहां दो अश्विनी देव) अपने रथमें बैठकर ले जावें । पूछ पूछ कर ठीक वरके स्थानपर पहुंच जाय । ये ही वधूके रथको वरके स्थानका मार्ग दर्शानेवाले होंगे, इसलिये ये किसी योग्य स्थानपर ठहरें ॥ १४ ॥

वरकी ओरसे मंगनी करनेवाले (दोनों अश्विनीकुमार) दो वैद्य वधूके पिताके पास कन्याकी मंगनी करनेके लिये जांय, अन्य सब लोग उनको संमति देवें । जैसा पुत्र पिताका आदरके साथ स्वागत करता है, वैसा उन मंगनी करनेके लिये आये हुओंका स्वागत वधूका पिता करे ॥ १५ ॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम्।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥ ११ ॥
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥ १२ ॥
सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्।
मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते ॥ १३ ॥

अर्थ-(ऋक्-सामाभ्यां अभिहितौ ते गावौ) ऋग्वेद मंत्रों और सामवेदके मन्त्रोंद्वारा प्रेरित हुए तेरे दोनों बैल (सामनौ ऐतां) शान्तिसे चलते हैं। (श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां) दोनों कान तेरे रथके दो चक्र थे। (दिवि पन्थाः चराऽचरः) द्युलोकमें तेरा मार्ग चर और अचर रूप समस्त संसार है ॥११॥

(ते यात्याः चक्रे शुची) तेरे जानेके रथके दोनों चक्र शुद्ध हैं। (अक्षे व्यानः आहतः) उसके अक्षके स्थानपर व्यान नामक प्राण रखा है। (पतिं प्रयती सूर्या) पतिके पास जानेवाली सूर्या इस (मनः-मयं आ रोहत्) मनोमय रथपर चढती है ॥ १२ ॥

(यं सविता अवासृजत्) जिसको सविताने भेजा था वह (सूर्यायाः वहतुः प्रागात्) सूर्याका दहेज आगे गया है। (मघासु गावः हन्यन्ते) मघा नक्षत्रोंमें गौवें भेजी जाती है। और (फल्गुनीषु व्युह्यते) फल्गुनी नक्षत्रोंमें विवाह होता है ॥ १३ ॥

स्थिति ऐसी होनी चाहिये।) ॥ ९ ॥

जब वधू अपने पतिके घर जाये तब वह रथमें बैठकर जाये। उसको दो उत्तम बैल (या घोडे) जोते हुए हों। संभव हुआ तो ये उत्तम श्वेत-वर्ण के हों। (वस्तुतः वधूका मनही यह रथ है, बाह्य रथकी अपेक्षा वधूका मनही ऐसा चाहिये कि जिसमें ये रथ आदि बाह्य आडम्बर कल्पनासेहि पूर्ण हों।) ॥ १० ॥

इस वधूके रथके वाहक वेदमंत्रों द्वारा चलाये जांय, साथसाथ सामवेद-मंत्रोंका गायन होता रहे। यह वधू इसलिये गृहस्थाश्रम स्वीकारने के लिये पतिके घर जाती है, कि इसका स्वर्गका मार्ग सुगम हो अर्थात् पतिपत्नी मिलकर ऐसा आचरण करें कि जिससे उनको सहज स्वर्ग प्राप्त हो जाय ॥ ११ ॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै ॥ १९ ॥
भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ २० ॥ [२]

अर्थ-(त्वा वरुणस्य पाशात् प्र मुञ्चामि) तुझको मैं वरुणके पाशसे मुक्त करता हूं (येन त्वा सुशेवाः सविता अवध्नात्) जिससे तुझे सेवा करने योग्य सविताने बांधा था । (ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके) सदाचारीके घरमें और सत्कर्म कर्ताके लोकमें (सह-संभलायै ते) पतिके सहवर्तमान तुझे (स्योनं अस्तु) सुख होवे ॥ १९ ॥

(भगः त्वा हस्तगृह्य इतः नयतु) भग तुझे हाथ पकडकर यहांसे चलावे, आगे (अश्विनौ त्वा रथेन प्रवहतां) अश्विदेव तुझे रथमें बिठलाकर पहुंचावें । अपने पतिके (गृहान् गच्छ) घरको जा । (यथा त्वं गृहपत्नी वशिनी असः) वहां तू घरकी स्वामिनी और सबको वशमें रखनेवाली हो । वहां (त्वं विदथं आवदासि) तूं उत्तम विवेकका भाषण कर ॥ २० ॥

संबंध सुदृढ होवे । परमेश्वर इस वधूको पतिकुलमें उत्तम पुत्रोंसे युक्त और उत्तम भाग्यसे युक्त करे ॥ १८ ॥

विवाह होते हि कन्या वरुणके बन्धनोंसे मुक्त होती है । सविता देवने हि कन्याको वरुणके धर्मपाशोंसे बांधा होता है । कन्याका विवाह होते ही वह पतिके घर सदाचारी और सत्कर्म करनेवालोंके घरमें पहुंचती है । पतिका घर वधूको धर्मशिक्षा देनेवाला बने ॥ १९ ॥

वधूका हाथ पकडकर भाग्यका देव उसको पहिले चलावे, अश्विनीदेव रथमें बिठलाकर विवाहके पश्चात् पतिके घर पहुंचावे । इस तरह वधू पतिके घर पहुंचे । वहां पतिके घरकी स्वामिनी और सबको अपने वशमें रखनेवाली होकर रहे । ऐसी स्त्री हि योग्य प्रसंगमें उत्तम संमति दे सकती है ॥ २० ॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माणं ऋतुथा विदुः।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥ १६ ॥
अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥ १७ ॥
प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥ १८ ॥

अर्थ-हे (सूर्ये) सूर्या! (ते द्वे चक्रे ब्रह्माणः ऋतुथा विदुः) तेरे दोनों चक्रों को ज्ञानी लोग ऋतुके अनुसार जानते हैं। (अथ यत् एकं चक्रं गुहा) और जो एक चक्र गुप्त है, (तत् अद्धातय इत् विदुः) उसको विशेष ज्ञानी हि जानते है ॥ १६ ॥

(सुबन्धुं पतिवेदनं) उत्तम बन्धुबांधवोंसे युक्त पतिका ज्ञान देने-वाले (अर्यमणं यजामहे) श्रेष्ठ मनवालेका हम सत्कार करते हैं। (उर्वा-रुकं बन्धनात् इव) खरबुजा जैसा वेलके बन्धनसे दूर होता है, उस प्रकार (इतः प्र मुञ्चामि) इस पितृकुलसे तुझे छुडाता हूं, (न अमुतः) परंतु पतिकुलसे नहीं अलग करता, अर्थात् पतिकुलसे जोडता हूं ॥ १७ ॥

(इतः प्रमुञ्चामि न अमुतः) यहां [पितृकुल] से तुझे मुक्त करता हूं, परंतु वहां (पतिकुल) से नहीं। (अमुतः सुबद्धां करं) वहांसे तो मैं उत्तम प्रकार बंधी हुई करता हूं। हे (मीढ्वः इन्द्र) दाता इन्द्र! (यथा इयं) जिससे यह वधू (सुपुत्रा सुभगा असति) उत्तम पुत्रवाली और उत्तम भाग्यसे युक्त होवे ॥ १८ ॥

भावार्थ- सूर्या नामक सविताकी पुत्री तीन चक्रोंवाले रथपर बैठकर अपने पतिके घर गई थी। इसी तरह वधू रथमें बैठकर पतिके घर जाये। रथके व्यक्त और गुप्त चक्रोंको ज्ञानी लोग जानें ॥ १६ ॥

श्रेष्ठ मनवाला बन्धुबांधवोंसे युक्त सज्जनहि वरका पता देवे। वरका पता किसी हीन मनुष्यसे कभी न लिया जाय। जैसा फल अपने बंधनसे मुक्त होता है, उस प्रकार वधू अपने पितृकुलसे अपना संबन्ध छोड देवे, परंतु पतिकुलसे वधूका संबंध कभी न छूटे ॥ १७ ॥

वधूका संबंध पितृकुलसे छूटे, परंतु पतिके कुलसे न छूटे। पतिकुलसे

नवोनवो भवसि जायमानोह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २४ ॥
परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥ २५ ॥

अर्थ- (जायमानः नवः नवः भवसि) प्रकट होता हुआ नया नया होता है। (अह्नां केतुः उषसां अग्रं एषि) दिनोंको बतानेवाला और उषाओंके अग्र भागमें होता है। (आयन् देवेभ्यः भागं विदधासि) आता हुआ देवोंके लिये विभाग समर्पण करता है। तथा हे चन्द्रमा ! (दीर्घं आयुः प्र तिरसे) तू दीर्घ आयु देता है ॥ २४ ॥

(शामुल्यं परा देहि) यह उत्तम वस्त्र दान कर। (ब्रह्मभ्यः वसु वि भज) ब्राह्मणोंको धन दे। जब (एषा पद्वती कृत्या जाया भूत्वा) यह पांववाली कृत्या अर्थात् विनाशक स्वभाववाली स्त्री बनकर (पतिं विशते) पतिके पास आती है ॥ २५ ॥

कूदते हुए बडे होकर समुद्रतक पुरुषार्थ करते हुए चलें। एकने सब जगत् को प्रकाशित किया, तो दूसरा ऋतुके अनुसार नवीन नवीन होकर उदयको प्राप्त हो। अर्थात गृहस्थियोंके पुत्र अपने पुरुषार्थसे जगत् को प्रकाशित करें ॥ २३ ॥

गृहस्थी लोग नये नये उत्साहसे पुरुषार्थ करते हुए उषाओंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यके समान सबके मार्गदर्शक बनें। यज्ञमें देवोंका भाग उन को समर्पण करें और यज्ञमय जीवन व्यतीत करते हुए संपूर्ण आयुका उपभोग लेवें ॥ २४ ॥

विवाहके समय उत्तम उत्तम वस्त्र विद्वान् ब्राह्मणोंको दान दिये जांय, और उनको धन भी बांटा जाये। (ये ब्राह्मण वधूको सुशिक्षा देवें। यदि वधूको उत्तम शिक्षा न मिली) तो यह वधू पतिके घर प्रवेश करके सब कुलका विनाश कर सकती है। (वधूके अधर्माचरणसे कुलका नाश होता है) ॥ २५ ॥

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं १ सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ २१ ॥
इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ २२ ॥
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ २३ ॥

अर्थ- (इह ते प्रजायै प्रियं समृध्यतां) यहां तेरे संतानके लिये प्रिय की वृद्धि हो. (अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि) इस घरमें गृहस्थधर्मके लिये जागती रह । (एना पत्या तन्वं संस्पृशस्व) इस पतिके साथ अपने शरीरका स्पर्श कर । (अथ जिर्विः) और तू वृद्ध होनेपर (विदथं आवदासि) उत्तम उपदेश कर ॥ २१ ॥

(इह एव स्तं) यहांही रहो (मा वि यौष्टं) कभी वियुक्त न हो । (पुत्रैः नप्तृभिः क्रीडन्तौ) पुत्रों और नातियोंसे खेलते हुए (मोदमानौ स्वस्तकौ) आनन्दित होकर अपने घरदारसे युक्त होते हुए (विश्वं आयुः व्यश्नुतं) पूर्ण आयुका भोग करो ॥ २२ ॥

(एतौ शिशू क्रीडन्तौ) ये दोनों बालक खेलते हुए (मायया पूर्वापरं चरतः) शक्तिसे आगे पीछे चलते हैं और (अर्णवं परि यातः) समुद्र तक भ्रमण करते हुए पहुंचते हैं । (अन्यः विश्वा भुवना विचष्टे) उनमेंसे एक सब भुवनोंको प्रकाशित करता है और (अन्यः ऋतून् विदधत् नवः जायते) दूसरा ऋतुओंको बनाता हुआ नया नया बनता है ॥ २३ ॥

भावार्थ- इस धर्मपत्नीके संतान उत्तम सुखमें रहें। यह धर्मपत्नीअपना गृहस्थाश्रम उत्तम रीतिसे चलावे। यह धर्मपत्नी अपने पतिके साथ सुखसे रहे।जब इस तरह धर्ममार्गसे गृहस्थाश्रम चलाती हुई यह स्त्री वृद्ध होगी, तब यह योग्य संमति देने योग्य होगी ॥ २१ ॥

स्त्रीपुरुष अपनेहि घरमें रहें, कभी विभक्त न हों। अपने बालबच्चोंके साथ खेलें, अपने घरमें आनंद मनावें और धर्मानुसार गृहस्थाश्रम चलाते हुए संपूर्ण आयुका उपभोग लें ॥ २२ ॥

इन गृहस्थियोंके बालक छोटी बडी आयुवाले अपनी शक्तिसे खेलते

तृष्टमेतत् कटुंकमपाष्ठवंद् विषवन्नैतदत्तंवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा वेद् स इद् वाधूंयमर्हति ॥ २९ ॥
स इत् तत् स्योनं हंरति ब्रह्मा वासंः सुमङ्गलंम् ।
प्रायंश्चित्तिं यो अध्येति येनं जाया न रिष्यंति ॥ ३० ॥ (३)

युवं भगं सं भंरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिंमस्यै रोंचय चारुं संभलो वंदतु वाचंमेताम् ॥ ३१ ॥

अर्थ-(एतत् तृष्टं) यह तृषा उत्पन्न करनेवाला है, (कटुकं) यह कडुवा है, (अपाष्टवत् विषवत्) यह घृणित और यह विषयुक्त अन्न है अतः (एतत् अत्तवे न) यह खानेके योग्य नहीं है। (यः ब्रह्मा सूर्यां वेद्) जो ब्राह्मण सूर्याको इस तरह सिखाता है, (सः इत् वाधूयं अर्हति) वह निःसंदेह वधुकी ओरसे वस्त्र लेने योग्य है ॥ २९ ॥

(सः इत्) वही निश्चयसे (तत् सुमंगलं स्योनं वासः हरति) उस मंगल और सुखकर वस्त्रको लेता है। (यः प्रायश्चित्तिं अध्येति) जो प्रायश्चित प्रकरण अर्थात् चित्त शुद्ध करनेका अध्ययन कराता है, (येन जाया न रिष्यति) जिससे पत्नी नष्ट नहीं होती ॥ ३० ॥

(युवं ऋत-उद्येषु ऋतं वदन्तौ) तुम दोनों सत्य व्यवहारोंमें रह कर सत्य बोलते हुए (समृद्धं भगं संभरतं) समृद्धियुक्त भाग्य प्राप्त करो। हे ब्रह्मणस्पते ! (पतिं अस्यै रोचय) पतिके विषयमें इस स्त्रीके मनमें रुचि उत्पन्न कर। (संभलः एतां वाचं चारु वदतु) पति इस वाणीको सुंदरतासे बोले ॥ ३१ ॥

भावार्थ- एक अन्न तृष्णाको वढानेवाला, दूसरा कडुवा, तीसरा सडा हुआ और चौथा विषयुक्त होता है। इस प्रकारके अन्न गृहस्थियोंको खाने योग्य नहीं हैं। इस तरह की शिक्षा देनेवाले ब्राह्मणको वधूकी ओरसे वस्त्र दिया जावे ॥ २९ ॥

जो ब्राह्मण चित्त शुद्ध करनेका ज्ञान जानता है, जिस ज्ञानके प्राप्त होनेसे स्त्री का विघाड नहीं होता, इस प्रकारकी सुशिक्षा देनेवाले अध्यापक ब्राह्मणको ही मंगल और सुंदर वस्त्र देना योग्य है और ऐसा ब्राह्मण ही वस्त्रका दान लेवे ॥ ३० ॥

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २६ ॥
अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद् वध्वो ३ वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥ २७ ॥
आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥ २८ ॥

अर्थ-(नीललोहितं भवति) नीला और लाल बनता है, क्रोधयुक्त होता है तब (कृत्यासक्तिः व्यज्यते) विनाशक इच्छा बढती है, (अस्या ज्ञातयः एधन्ते) इसके जातिके मनुष्य बढते हैं। और (पतिः बन्धेषु बध्यते) पति बन्धनमें बांधा जाता है ॥ २६ ॥

(यत् वध्वः वाससः) जब स्त्रीके वस्त्रसे (पतिः स्वं अंगं अभि ऊर्णुते) पति अपने शरीरको आच्छादित करता है, तब (अमुया पापया) इस पापी रीतिसे (रुशती तनूः) सुन्दर शरीर हुआ तो भी (अश्लीला भवति) शोभारहित होता है ॥ २७ ॥

(आशसनं विशसनं) धारीवाला वस्त्र, सिरका वस्त्र तथा (अथो अधि विकर्तनं) और सर्वांगपर रहनेवाला वस्त्र इनमें (सूर्यायाः रूपाणि पश्य) सूर्यके रूप देख। (उत तानि ब्रह्मा शुम्भति) इनको ब्राह्मण तेजस्वी करता है ॥ २८ ॥

भावार्थ- (पति कुलमें वधूका अधर्माचरण होने लगा, तो) खून खराब होता है, उस दुराचारी वधूकी विनाशक बुद्धि पढ जाती है, उसके पिताके संबंधी लोग जमा हो जाते हैं, और इस प्रकार विचारा पति बन्धनमें फंसता है। (इस लिये कन्याको सुशिक्षा देनी चाहिये।) ॥ २६ ॥

स्त्रीका वस्त्र पुरुष कभी न पहने। यदि किसीने पहना तो उससे पतिका तेजस्वी शरीरभी शोभारहितसा होजाता है ॥ २७ ॥

एक वस्त्र धारीवाला होता है, दूसरा दुशाला जैसा चमकदार होता है, तीसरा ओढनेका वस्त्र होता है। इन वस्त्रोंसे वधूके रूपको सुंदरता लायी जावे। इन वस्त्रोंके संबंधका योग्य ज्ञान ब्राह्मण गृहस्थियोंको देवे, जिससे वस्त्रोंके दोष दूर हो जांय ॥ २८ ॥

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम्।
यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥
येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३६ ॥
यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास इडते अध्वरेषु।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्यावान् ॥ ३७ ॥

अर्थ-हे अश्विनौ! अश्विदेवो! (यत् वर्चः अक्षेषु) जो तेज आंखोंमें होता है और (यत् सु-रायां आहितं) जो संपत्तिमें रखा होता है, (यत् च वर्चः गोषु) जो तेज गौवोंमें है, (तेन वर्चसा इमां अवतं) उस तेजसे इसकी रक्षा करो ॥ ३५ ॥

हे (अश्विनौ) अश्विदेवो! (येन महानघ्न्याः जघनं) जिससे बडी गौका जघन अर्थात् नीचला दुग्धाशयका भाग, (येन वा सुरा) जिससे संपत्ति, (येन अक्षाः अभ्यषिच्यन्त) जिससे आंख भरपूर रहते हैं(तेन वर्चसा इमां अवतं) उस तेजसे इस वधूकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥

(यः अप्सु अन्तः अनिध्मः दीदयत्) जो जलोंमें इन्धनोंके विना चमकता है, (यं विप्रासः अध्वरेषु ईडते) जिसकी ज्ञानी लोग यज्ञोंमें स्तुति करते हैं। हे (अपां नपात्! मधुमतीः अपः दाः) जलोंको न गिरानेवाले देव! वैसा मधुर जल हमें दो। (याभिः वीर्यावान् इन्द्रः वावृधे) जिनसे वीर्यवान् इन्द्र बढता है ॥ ३७ ॥

करे, कभी यज्ञका लोप न हो। सब देव इस गृहस्थी के घरमें गौवोंकी संख्या बढावें ॥ ३३ ॥

वरके तथा वधूके घर जानेके मार्ग कंटकरहित और सरल हों। परमेश्वर इन गृहस्थियोंको तेजस्वी करके समृद्ध करे ॥ ३४ ॥

जो तेज आंखोंमें, ऐश्वर्य में और गौवोंमें होता है, उस तेजसे यह वधू युक्त हो। यह स्त्री तेजस्विनी हो ॥ ३५ ॥

जिस तेजसे गौका दुग्धाशय तेजस्वी हुआ है, जो तेज ऐश्वर्यमें और आंखमें होता है, उस तेजसे यह स्त्री युक्त होवे और यह स्त्री धर्माचरणमें सुरक्षित रहे ॥ ३६ ॥

इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ।
शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥ ३२ ॥
इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम्।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥ ३३ ॥
अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥ ३४ ॥

अर्थ-हे (गावः) गौवो! (इह इत् असाथ) तुम यहां ही रहो। (न परः गमाथ) मत दूर जाओ। (इमं प्रजया वर्धयाथ) इसको उत्तम संततिके साथ बढाओ। हे (उस्रियाः) गौवो! आप (शुभं यतीः सोमवर्चसः) शुभ को प्राप्त करानेवाली और चन्द्रके समान तेजस्वितासे युक्त होवो। (विश्वे देवाः वः मनांसि इह क्रन्) सब देव तुम्हारे मनोंको यहां स्थिर करें ॥ ३२ ॥

हे (गावः) गौवों! (इमं प्रजया सं विशाथ) इसके घरमें अपनी संतानके साथ प्रवेश करो। (अयं देवानां भागं न मिनाति) यह देवोंके भागका लोप नहीं करता है। (पूषा सर्वे मरुतः) पूषा और सब मरुत (धाता सविता) विधाता और सविता (अस्मै अस्मै वः वः सुवाति) इसी मनुष्यके लिये तुमको उत्पन्न करता है ॥ ३३ ॥

(पन्थानः अनृक्षराः ऋजवः सन्तु) सब मार्ग कण्टकरहित और सरल हों, (येभिः नः सखायः वरेयं यन्ति) जिनसे हमारे सब मित्र कन्याके घरके प्रति पहुंचते हैं। (धाता भगेन अर्यम्णा वर्चसा सं सं सं सृजतु) विधाता, भग और अर्यमाके द्वारा तेजसे इसे संयुक्त करे ॥ ३४ ॥

भावार्थ- गृहस्थी स्त्रीपुरुष सीधे व्यवहार करें, सदा सत्य बोलें, और धनसंपत्ति कमावें। पत्नीके मनमें पतिके विषयमें बडा आदरभाव रहे और पति भी सुंदर और मधुर भाषण करे ॥ ३१ ॥

गृहस्थीके घरमें गौवें रहें, गौवें भाग न जावें। गौवें बछडे देती रहें। उनकी संख्या बढ जाय। गौवें सुस्वभाववाली और तेजयुक्त हों और गौवें भी घरवालोंपर प्रीति करें ॥ ३२ ॥

गौवें अपने बछडोंके साथ घरमें प्रवेश करें। गृहस्थ देवयज्ञ प्रतिदिन

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥
आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥ ४२ ॥
यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥ ४३ ॥

अर्थ- हे (शतक्रतो इन्द्र) सैंकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (रथस्य खे) रथके छिद्रमें, (अनसः खे) गाडेके छिद्रमें और (युगस्य खे) युगके छिद्रमें (अपालां त्रिः पूत्वा) अयोग्य रीतिसे पाली हुई युवतीको तीन वार पवित्र करके (सूर्यत्वचं अकृणोः) सूर्यके समान तेजस्वी त्वचावाली तूने किया ॥ ४१ ॥

(सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिं आशासाना) उत्तम मन, संतान, सौभाग्य और धन की आशा करनेवाली तू (पत्युः अनुव्रता भूत्वा) पतिके अनुकूल आचरण करनेवाली होकर (अमृताय कं सं नह्यस्व) अमरत्वके लिये सुखपूर्ण रीतिसे सिद्ध हो ॥ ४२ ॥

(यथा वृषा सिन्धुः) जैसा बलशाली समुद्र (नदीनां साम्राज्यं सुषुवे) नदियोंका साम्राज्य चलाता है, (एवा त्वं पत्युः अस्तं परेत्य) वैसी तू पतिके घर पहुंचकर (सम्राज्ञी एधि) सम्राज्ञी होकर वहां रह ॥ ४३ ॥

भीरुता का नाश करके बल बढानेवाला है। वधूवर श्रेष्ठ मन धारण करके अग्निकी प्रदक्षिणा करें। श्रेष्ठ गुणवाली वधूकी प्रतीक्षा पतिगृहमें ससुर और देवर करते रहते हैं ॥ ३९ ॥

सुवर्ण, जल, गौका बंधनस्तंभ, जुगके भाग आदि सब कुटुंबके कल्याण करनेवाले हों। जल तो सौ प्रकारसे पवित्रता करनेवाला है। गृहस्थके घरमें धर्मपत्नी पतिके साथ दिल जमाकर रहे ॥ ४० ॥

गृहस्थ तथा स्त्री अपनी तीन प्रकारकी शुद्धता प्रभुकी कृपासे करके सूर्यके समान तेजस्वी बनकर यहां विराजे ॥ ४१ ॥

गृहस्थके घरमें स्त्री उत्तम मन, संतान, सौभाग्य व धन की इच्छा करती हुई, पतिके अनुकूल कर्म करती हुई, अमरत्व प्राप्तिके श्रेष्ठ सुखदायी

इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि ।
यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥ ३८ ॥
आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥ ३९ ॥
शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं सं स्पृशस्व ॥४०॥ (४)

अर्थ-(इदं अहं तनूदूषिं रुशन्तं ग्राभं आपोहामि) यह मैं शरीरमें दोष उत्पन्न करनेवाले विनाशक रोगको दूर करता हूं। और (यः भद्रः रोचनः तं उदचामि) जो कल्याणमय तेजस्वी है, उसको पास करता हूं ॥ ३८ ॥

(ब्राह्मणाः अस्यै स्नपनीः आपः आहरन्तु) ब्राह्मण लोग इसके लिये स्नानका जल ले आवें। (अवीरघ्नीः आपः उदजन्तु) वीरका नाश न करनेवाला जल वे लावें। (अर्यम्णः अग्निं पर्येतु) वह अर्यमाकी अग्निकी प्रदक्षिणा करे। हे (पूषन्) पूषा ! (श्वशुरः देवरः च प्रतीक्षन्ते) ससुर और देवर प्रतीक्षा करें ॥ ३९ ॥

(ते हिरण्यं शं) तेरे लिये सुवर्ण कल्याणकारी होवे, (उ आपः शं सन्तु) और जल सुखकर होवे, (मेथिः शं भवतु) गौ बांधनेका स्तंभ सुखदायी हो। तथा (युगस्य तर्द्म शं) युगका छिद्र सुखकर हो, (ते शतपवित्राः आपः शं भवन्तु) तेरे लिये सौ प्रकारसे पवित्रता करनेवाला जल सुखदायी होवे। (पत्या तन्वं शं संस्पृशस्व) पतिके साथ अपने शरीरका स्पर्श सुखकारक रीतिसे कर ॥ ४० ॥

भावार्थ-जलोंमें इन्धनोंके विना चमकनेवाला तेज है, यज्ञोंमें द्विजोंका ज्ञानरूप तेज है,और जलोंमें मधुरता है और वीर्य भी है। इन तेज,ज्ञान, माधुर्य और वीर्यसे ये गृहस्थी युक्त हों। इन्द्र इन्हींके आधिक्यसे सबसे महान् हुआ है ॥ ३७ ॥

शरीरमें दोष उत्पन्न करनेवाले रोगबीजोंको दूर करना चाहिये और जिससे शरीर नीरोग और आनन्दप्रसन्न होता है, उनको पास करना चाहिये ॥ ३८ ॥

ब्राह्मण लोग बतावें की यह जल स्नान करने योग्य है, यह जल

स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ ४७ ॥
येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥ ४८ ॥

अर्थ- (देव्याः पृथिव्याः उपस्थे) पृथ्वी देवीके पास (ते प्रजायै स्योनं ध्रुवं अश्मानं धारयामि) तेरी संतानके लिये सुखदायी स्थिर पत्थर जैसा आधार करता हूं। (तं आतिष्ठ) उसपर खडा रह, (अनुमाद्याः) आनंदित हो, (सुवर्चाः) उत्तम तेजसे युक्त हो। और (सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु) सविता तेरी आयु लंबी बनावे ॥ ४७ ॥

(येन अग्निः) जिससे अग्निने (अस्याः भूम्याः दक्षिणं हस्तं जग्राह) इस भूमिका दायां हाथ ग्रहण किया, (तेन ते हस्तं गृह्णामि) उसी उद्देश्यसे तेरा हाथ मैं पकडता हूं, (मा व्यथिष्ठाः) दुःख मत कर, (मया सह प्रजया च धनेन च) मेरे साथ प्रजा और धनके साथ रह॥ ४८ ॥

भावार्थ— घरमें देवियां सूत कातें, कपडा बुनें, ताना तानें, कपडेके अन्तिम भाग ठीक करें। ऐसा उत्तम कपडा बुनें कि जो वृद्धावस्थातक काम देवे। स्त्री दीर्घायु बनकर इस कपडेको पहने ॥ ४५ ॥

विदाईपर मनुष्य रोया करते हैं। परंतु यह कन्या यद्यपि पितृकुलसे विदा होती है, तथापि पतिके घरमें गृहयज्ञ करनेके लिये जा रही है, अतः इस गृहस्थाश्रमके दीर्घ मार्गका लोग विचार करें और न रोयें। पितृघरके लोगोंको तो यह सुख का दिन है, क्यों कि यह वधूके यज्ञका प्रारंभ है। यह वधु पतिको सुख देती है और पति इसको आलिंगनसे सुख देता है। परस्पर सुखवृद्धि करनाही गृहस्थका यज्ञ है॥ ४६ ॥

इस भूमिपर तेरी संतान सुखपूर्वक दीर्घ काल रहे इसलिये यह पत्थरका आधार रखता हूं। इसपर चढ, आनंदित और तेजस्वी हो। इस तरह गृहस्थाश्रममें सुदृढ रहनेसे तेरी आयु दीर्घ होगी ॥ ४७ ॥

जैसा अग्नि और भूमिका संबंध है, वैसे संबंधके लिये मैं इस वधूका पाणिग्रहण करता हूं। वधूको कष्ट न हो। वह वधू मेरे साथ प्रजा, धन और ऐश्वर्यसे युक्त हो ॥ ४८ ॥

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्युत देवृषु ।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्युत श्वश्वाः ॥ ४४ ॥
आ अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्ताँ अभितोददन्त ।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥ ४५ ॥
जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥ ४६ ॥

अर्थ- (श्वशुरेषु सम्राज्ञी एधि) ससुरोंमें स्वामिनीके समान होकर रह। (उत देवृषु सम्राज्ञी) देवरोंमें भी महारानीके समान आदरसे रह। (ननान्दुः सम्राज्ञी एधि) ननदके साथ भी रानीके समान रह और (उत श्वश्वाः सम्राज्ञी) सासके साथ भी सम्राट्की स्त्रीके समान होकर रह ॥ ४४ ॥

(याः देवीः अकृन्तन) जिन देवियोंने स्वयं सूत कांता है, (याः च अवयन्) जिन्होंने बुना है, (याः च तत्निरे) जो ताना तानती हैं, (याः च अभितः अन्तान् ददन्त) और जो चारों ओर अन्तिम भागोंको ठीक रखतीं हैं, (ताः त्वा जरसे सं व्ययन्तु) वे तुझे वृद्धावस्थातक रहनेके लिये बुनें। तू (आयुष्मती इदं वासः परि धत्स्व) दीर्घ आयुवाली होकर इस वस्त्रको धारण कर ॥ ४५ ॥

(जीवं रुदन्ति) जीवित मनुष्यके बिदाई पर लोग रोते हैं, (अध्वरं विनयन्ति) यज्ञको साथ ले जाते हैं, (नरः दीर्घां प्रसितिं अनु दीध्युः) मनुष्य दीर्घ मार्गका विचार करते हैं। (ये पितृभ्यः इदं वामं समीरिरे) जो लोग अपने मातापिताके लिये यह सुन्दर कार्य करते हैं, वह (पतिभ्यः मयः जनये परिष्वजे) पतिके लिये सुखदायी है, जो स्त्रीको आलिङ्गन करना है ॥ ४६ ॥

मार्गका आक्रमण करे ॥ ४२ ॥

जैसा महासागर नदीयोंका सम्राट् है, इस प्रकार पतिके घर पहुंचकर यह वधू गृहस्थको सम्राट् और अपनेको उसकी सम्राज्ञी बनाकर व्यवहार करे ॥ ४३ ॥

ससुर, देवर, ननद और सास आदि सबके साथ रानीके समान बर्ताव करे और सबको सुख देवे ॥ ४४ ॥

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥ ५२ ॥
त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥ ५३ ॥
इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥

अर्थ- (इयं मम पोष्या अस्तु) यह स्त्री मेरी पोषण करने योग्य हो। (बृहस्पतिः त्वा मह्यं अदात) बृहस्पतिने तुझे मुझको दिया है। हे (प्रजावति) संतानवाली स्त्री ! (मया पत्या शरदः शतं संजीव) मुझ पतिके साथ तू सौ वर्षतक जीवित रह ॥ ५२ ॥

(त्वष्टा वासः) त्वष्टाने वस्त्र, (शुभे कं) कल्याण और सुख होनेके लिये (बृहस्पतेः कवीनां प्रशिषा) बृहस्पति और कवियोंके आशीर्वादके साथ (व्यदधात्) बनाया है। (तेन इमां नारीं) उससे इस स्त्रीको (सविता भगः सूर्यां इव) सविता और भग सूर्याको जैसा पहिनाता है, उस प्रकार (प्रजया परिधत्तां) संतानके साथ संयुक्त करे ॥ ५३ ॥

इन्द्र, अग्नि, (द्यावापृथिवी) द्युलोक, भूमि, (मातरिश्वा) वायु, मित्र, वरुण भग, (उभौ अश्विनौ) दोनों अश्विनीकुमार, बृहस्पति, मरुत, ब्रह्म, सोम ये सब (इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु) इस स्त्रीको संतानके साथ बढावें ॥ ५४ ॥

भावार्थ- यह धर्मपत्नी मुझे (पतिके) द्वारा पोषण होने योग्य है। परमेश्वरने यह मेरे हाथमें दी है। यहां यह सन्तानोंसे युक्त हो और मुझ पतिके साथ सौ वर्ष रहे ॥ ५२ ॥

इस कारीगरने इसके लिये बनाया यह वस्त्र है, ज्ञानी ब्राह्मणोंने इसको आशीर्वाद दिया है। यह धर्मपत्नी इसको पहने और ईश्वरकी कृपासे उत्तम संतानोंसे युक्त होवे ॥ ५३ ॥

सब दैवी शक्तियां इस नारी को उत्तम संतानों के साथ बढावें ॥ ५४ ॥

देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥ ४९ ॥
गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ ५० ॥ (५)
भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥

अर्थ- (सविता देवः ते हस्तं गृह्णातु) सविता देव तेरा पाणिग्रहण करे। (राजा सोमः सुप्रजसं कृणोतु) राजा सोम उत्तम सन्तानयुक्त करे। (जातवेदाः अग्निः पत्ये सुभगां पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु) जातवेद अग्नि पतिके लिये सौभाग्ययुक्त स्त्री वृद्धावस्थातक जीनेवाली करे ॥ ४९ ॥

(ते हस्तं सौभगत्वाय गृह्णामि) तेरा हाथ मैं सौभाग्यके लिये पकडता हूं। (यथा मया पत्या जरदष्टिः असः) जिससे तू मुझ पतिके साथ वृद्धावस्थातक जीनेवाली होकर रह। भग, अर्यमा, सविता, पुरंधि। और सब देवोंने (त्वा मह्यं गार्हपत्याय अदुः) तुझको मेरे हाथमें गृहस्थाश्रम चलानेके लिये दिया है ॥ ५० ॥

(भगः ते हस्तं अग्रहीत्) भगने तेरा हाथ पकडा है, (सविता हस्तं अग्रहीत्) सविताने हाथ पकडा है, (त्वं धर्मणा पत्नी असि) तू धर्मसे मेरी पत्नी है, (अहं तव गृहपतिः) मैं तेरा गृहपति हूं ॥ ५१ ॥

भावार्थ- सविता जैसा तेजस्वी बनकर पति स्त्रीका पाणिग्रहण करे, और सोम जैसा कलायुक्त होकर धर्मपत्नीमें संतान उत्पन्न करे। पतिपत्नी मिलकर दोनों इस गृहस्थाश्रममें वृद्धावस्थातक आनन्दसे रहें ॥ ४९ ॥

हे स्त्री ! मैं पति तेरा पाणिग्रहण सौभाग्यप्राप्तिके लिये करता हूं। मुझ पतिके साथ तू वृद्धावस्थातक रह। सब देवोंने तुझको गृहस्थाश्रम चलानेके लिये मेरे हाथमें सौंप दिया है ॥ ५० ॥

भग अर्थात् धनवान् होकर और सविता जैसा समर्थ और तेजस्वी होकर तेरा पाणिग्रहण मैं करता हूं। इससे तू धर्मके अनुसार मेरी धर्मपत्नी हो और मैं तेरा गृहपति हूं ॥ ५१ ॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥ ५८ ॥
उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥ ५९ ॥
भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ ६० ॥

अर्थ- हे (वधु) स्त्री! (त्वा वरुणस्य पाशात् प्रमुञ्चामि) तुझको वरुणके पाशसे मुक्त करता हूं। (येन सुशेवाः सविता त्वा अबध्नात्) जिससे सेवा करने योग्य सविताने तुझे बांध दिया था। (तुभ्यं सहपत्न्यै) तुझ सहधर्मचारिणीके लिये (अत्र उरुं लोकं सुगं पन्थां कृणोमि) यहां विस्तृत स्थान और उत्तम गमनयोग्य मार्ग करता हूं॥ ५८॥

(उद् यच्छध्वं) अपने शस्त्रोंको ऊपर उठाओ। (रक्षः अपः हनाथ) राक्षसोंको मारो। (इमां नारीं सुकृते दधात) इस स्त्रीको पुण्य कर्ममें रखो। (विपश्चित् धाता अस्यै पतिं विवेद) ज्ञानी विधाताने इसके लिये पति प्राप्त कराया है। (भगः राजा प्रजानन् पुरः एतु) राजा भग जानता हुआ आगे बढे॥ ५९॥

(भगः चतुरः पादान् ततक्ष) भगने चार पावोंको बनाया, उनपर (भगः चत्वारि उष्पलानि ततक्ष) भगने चार कमलोंको बनाया। (त्वष्टा मध्यतः वर्ध्रान् अनुपिपेश) त्वष्टाने मध्यमें कमरपट्टोंको बनाया। (साः

भोग करता हूं वह स्वकष्टसे कमाये धनका भोग करता हूं, चोरीके धनका भोग मैं नहीं करता। मैं वरुणके पाशोंको शिथिल करता हुआ मनके बलसे मुक्त होता हूं॥ ५७॥

सविताने तुझे इस समयतक जिन पाशोंसे बांध रखा था, उन वरुणके पाशोंको मैं खोलता हूं। तुझ जैसे सुयोग्य धर्मपत्नीके लिये यहां विस्तृत लोक प्राप्त हुआ है और उन्नतिका मार्ग सुगम हुआ है॥ ५८॥

इस धर्मपत्नीको कष्ट देनेवाले राक्षसोंका नाश करनेके लिये तुम लोगोंके हथियार सदा सुसज्जित रखो। सदा इस स्त्रीको पुण्यकर्ममें लगाओ, ज्ञानी विधाताकी संमति से इसको यह पति प्राप्त हुआ है, राजा भी यह जानता हुआ विवाहमें अग्रगामी हुआ था॥ ५९॥

बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥ ५५ ॥
इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥ ५६ ॥
अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥ ५७ ॥

अर्थ-(बृहस्पतिः प्रथमः) बृहस्पतिने सबसे प्रथम (सूर्यायाः शीर्षे केशान् अकल्पयत) सूर्याके सिरपर केशोंको बढाया। (तेन) उस तरह (अश्विनौ) अश्विनीकुमार (इमां नारीं पत्ये संशोभयामसि) इस स्त्रीको पतिके लिये सुशोभित करें ॥ ५५ ॥

(यत् योषा अवस्त, तत रूपं इदं) जो स्त्रीने वस्त्र धारण किया उसका रूप यह है । (मनसा चरन्तीं जायां जिज्ञासे) मनसे भ्रमण करनेवाली स्त्रीको मैं जानता हूं । (नवग्वैः सखिभिः तां अन्वर्तिष्ये) यज्ञों और ऋत्विजोंके साथ उनका मैं अनुसरण करता हूं । (कः विद्वान् इमान् पाशान् विचर्चत) कौन ज्ञानी इन पाशोंको काट सकता है ? ॥ ५६ ॥

(अहं विष्यामि) मैं खोलता हूं (अस्याः मयि रूपं) जो इसका रूप मुझमें है । (मनसः कुलायं पश्यन् इत् वेदत) मनका घोंसला देखकर ही ज्ञान होता है । (न स्तेयं अद्मि) मैं चोरी करके अन्न नहीं खाता हूं । मैं (स्वयं वरुणस्य पाशान् श्रथ्नानः) स्वयं वरुणके पाशोंको शिथिल करता हुआ (मनसा उत् अमुच्ये) मनसे मुक्त होता हूं ॥ ५७ ॥

भावार्थ-कन्याके सिरपर उत्तम बाल हों और वह नारी पति की प्राप्तिके लिये सुशोभित हो ॥ ५५ ॥

स्त्रीका उत्तम वस्त्र धारण करनेसे जो रूप बनता है, वही देखने योग्य है । मनका चालचलन कैसा है, यही स्त्रीके विषयमें देखना चाहिये । पति यज्ञकर्मोंमें धर्मपत्नीको अपने साथ सदा रखे । विषयोंके पाशोंको कौन विद्वान् काट सकता है ? ॥ ५६ ॥

मैं इन बन्धनोंको खोलता हूं । इस मेरी धर्मपत्नीका रूप केवल मेरे लिये है । इसके मन की परीक्षा करके हि मैंने यह जान लिया है । मैं जो

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥ ६४ ॥ (६)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[२]

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥

अर्थ-(अपरं पूर्वं अन्ततः मध्यतः सर्वतः ब्रह्म युज्यतां) आगे पीछे अन्तमें बीचमें अर्थात् सर्वत्र ब्रह्म अर्थात् ईशप्रार्थनाके मंत्रोंका प्रयोग किया करो। हे वधू ! तू (अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य) व्याधीरहित देवनगरीको प्राप्त होकर (पतिलोके शिवा स्योना विराज) अपने पतिके स्थानमें कल्याणकारिणी और सुख देनेवाली होकर प्रकाशित हो ॥ ६४ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

हे अग्ने ! (अग्ने तुभ्यं) आरंभमें तेरे लिये (वहतुना सह सूर्यां पर्यवहन्) दहेज के साथ सूर्याको ले जाते थे ।(सः) वह तू (नः पतिभ्यः) हम सब पतियोंको (प्रजया सह जायां दाः) संतानसहित पत्निको प्रदान कर ॥ १ ॥

को सुख देवे । पुत्रों को उत्पन्न करे । और सब का आनन्द बढानेवाली बने ॥ ६२ ॥

यह वधू देवोंके मार्गसे जा रही है, अतः इसको किसी तरह कष्ट न हो । इसके पतिके घरका मार्ग और इसके पतिके घरका द्वार इसके लिये सुखदायी होवे ॥ ६३ ॥

इस वधूके चारों ओर ज्ञान और ईशप्रार्थनाका वायुमंडल हो । जहां व्याधि नहीं है ऐसी पतिके घररूप देवनगरीको यह वधू प्राप्त हो । पतिके घरमें सुखयुक्त और कल्याणयुक्त बनकर यह विराजे ॥ ६४ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

दहेज पतिके घर भेजनेके पूर्व कन्या अग्निकी उपासना प्रथम करती है, जिससे उस कन्याको पतिके घर सुख और उत्तम संतान प्राप्त होता है ॥ १ ॥

सु॒कि॒ंशु॒कं व॑ह॒तुं वि॒श्वरू॑पं॒ हिर॑ण्यवर्णं सु॒वृतं॑ सुच॒क्रम् ।
आ रो॑ह सूर्ये अ॒मृत॑स्य लो॒कं स्यो॒नं पति॑भ्यो वह॒तुं कृ॑णु॒ त्वम् ॥ ६१ ॥
अभ्रा॑तृघ्नीं वरु॒णाप॑शुघ्नीं बृहस्पते ।
इन्द्राप॑तिघ्नीं पु॒त्रिणी॒मास्मभ्यं॑ सवित॒र्वह ॥ ६२ ॥
मा हिं॑सिष्टं कुमा॒र्यं॑ स्थूणे॑ दे॒वकृ॑ते प॒थि ।
शाला॑या दे॒व्या द्वारं॑ स्यो॒नं कृ॑ण्मो वधूप॒थम् ॥ ६३ ॥

नः सुमंगली अस्तु। वह हमारे लिये उत्तम मंगल करनेवाली होवे। ६०॥

हे (सूर्ये) सूर्ये ! (सुकिंशुकं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रं वहतुं आरोह) उत्तम पुष्पोंसे युक्त, अनेक रूपवाला, सोनेके रंगके समान चमकनेवाला, उत्तम वेष्टनोंसे युक्त, उत्तम चक्रोंसे युक्त इस रथपर चढ। (अमृतस्य लोकं आरोह) अमृतके लोकपर चढ। (त्वं वहतुं पतिभ्यः स्योनं कृणु) तू इस विवाह दहेज या रथको पतियोंके लिये सुखदायी कर ॥ ६१ ॥

हे (वरुण बृहस्पते इन्द्र सवितः) देवो ! (अभ्रातृघ्नीं) यह वधू भाइयोंका वध न करनेवाली, (अपशुघ्नीं, अपतिघ्नीं, पुत्रिणीं अस्मभ्यं वह) पशुका वध न करनेवाली, पतिका नाश न करनेवाली और पुत्र उत्पन्न करनेवाली हमारे लिये प्राप्त कर ॥ ६२ ॥

हे (स्थूणे) दोनों स्तंभो ! (देवकृते पथि) देवोंके बनाये मार्गपर (कुमार्यं मा हिंसिष्टं) इस कुमारी वधुकी हिंसा न कर। (देव्याः शालायाः द्वारं वधूपथं स्योनं कृण्मः) घर रूप देवताके द्वारमें वधू आनेके मार्गको हम सुखकर करते हैं ॥ ६३ ॥

भावार्थ-भगने पांवोंके चार आभूषण और शरीरपर धारण करनेके चार फूल बनाये और कमरमें धारण करनेयोग्य कमरपट्टा बनाया है। इनको धारण करके यह स्त्री उत्तम मंगलमयी बने ॥ ६० ॥

यह वधू उत्तम फूलोंसे युक्त, सुंदर, सोनेके नकशी कामसे सुशोभित उत्तम चक्रवाले रथपर चढकर अमर पदके मार्गका आक्रमण करे। यह धर्मपत्नीका विवाहमंगल पतिके घरवालोंके लिये सुखकारक होवे। ६१

यह स्त्री पतिके घरमें पतिके भाई, पशु आदिकोंको सुख देवे पति

अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥ ५ ॥
सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।
सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥ ६ ॥
या ओषधयो या नद्यो यानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥ ७ ॥

वसू अश्विनौ) बल और धनयुक्त अश्विनी देवो ! (कामाः हृत्सुनि अरंसत) हमारी शुभ इच्छाएं हृदयोंमें स्थिर हो गई हैं। हे (शुभस्पती) हे शुभके पालको ! (मिथुना गोपा अभूतं) तुम दोनों इन्द्रियोंके पालक बनो। (अर्यम्णः प्रियाः दुर्यान् अशीमहि) आर्य मनवाले श्रेष्ठ देवके प्रिय होकर हम उत्तम घरोंको प्राप्त हों ॥ ५ ॥

(सा मन्दसाना) वह आनन्दित रहनेवाली तू स्त्री (शिवेन मनसा) शुभ भावनायुक्त मनसे (सर्ववीरं वचस्यं रयिं धेहि) सर्व वीरोंसे युक्त प्रशंसनीय धन की धारणा कर। (हे शुभस्पती) शुभके पालको ! हमारे लिये (तीर्थं सुगं) तैरनेका स्थान सुगम हो, (सु प्रमाणं) उत्तम जल पीनेका स्थान हो, तथा (पथिष्ठां स्थाणुं) मार्गमें प्रतिबंध करनेवाले स्तंभ जैसी (दुर्मतिं) दुष्ट बुद्धिवाले शत्रुको (हतं) मार कर दूर करो ॥ ६ ॥

हे वधु ! (या ओषधयः) जो औषधियां, (या नद्यः) जो नदियाँ, (यानि क्षेत्राणि) जो क्षेत्र, और (या वना) जो वन हैं (ताः) वे सब पदार्थ (पत्ये प्रजावतीं त्वा) पतिके लिये संतानयुक्त तुझको (रक्षसः रक्षन्तु) राक्षसोंसे सुरक्षित रखें ॥ ७ ॥

भावार्थ- उक्त देवोंके आधिपत्यमें कन्याको उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है। पश्चात् उसके हृदयमें कामको स्थान मिलता है। उस समय अश्विनी देव इन वधुवरोंके रक्षक होते हैं। इस समय अपना मन श्रेष्ठ विचारोंसे युक्त करके अपने घरोंमें सबको वास करना उचित है ॥ ५ ॥

अपने पतिके घरमें आनन्दसे रहनेवाली धर्मपत्नी अपने मनमें शुभसंकल्प धारण करे और वीरभावयुक्त संतान और प्रशंसायोग्य धन की स्वामिनी बने। इस दंपतीके मार्ग सुगम हों, इनको पर्याप्त खान पान प्राप्त हो, और इनके उन्नतिके मार्ग निष्कण्टक हों और दुष्ट बुद्धि इनसे दूर हो ॥ ६ ॥

पुनः पत्नीम॒ग्निर॑दा॒दायु॑षा स॒ह वर्च॑सा ।
दी॒र्घायु॑रस्या॒ यः पति॒र्जीवा॑ति श॒रदः॑ श॒तम् ॥ २ ॥
सोम॑स्य जा॒या प्र॑थ॒मं ग॑न्ध॒र्वस्तेप॑रः॒ पतिः॑ ।
तृ॒तीयो॑ अ॒ग्निष्टे॒ पति॑स्तु॒रीय॑स्ते मनु॒ष्य॒जाः ॥ ३ ॥
सोमो॑ ददद् गन्ध॒र्वाय॑ गन्ध॒र्वो द॑दद॒ग्नये॑ ।
र॒यिं च॑ पु॒त्रांश्चा॑दाद॒ग्निर्म॒ह्यमथो॑ इ॒माम् ॥ ४ ॥
आ वा॑मगन्त्सुम॒तिर्वा॑जिनी वसू॒न्य॑श्विना हृ॒त्सु कामा॑ अरंसत ।

अर्थ-(आयुषा वर्चसा सह) दीर्घायुष्य और तेजके साथ (अग्निः पत्नीं पुनः अदात्) अग्निने पत्नीको पुनः प्रदान किया । (अस्याः यः पतिः) इसका जो पति है, वह (दीर्घायुः शरदः शतं जीवाति) दीर्घायु बनकर सौ वर्ष जीवित रहता है ॥ २ ॥

(प्रथमं सोमस्य जाया) सबसे प्रथम सोमकी स्त्री है, (ते अपरः पतिः गन्धर्वः) तेरा दूसरा पति गन्धर्व है । (ते तृतीयः पतिः अग्निः) तेरा तीसरा पति अग्नि है और (ते तुरीयः मनुष्यजाः) तेरा चतुर्थ पति मानव है ॥ ३ ॥

जिसको (सोमः गन्धर्वाय ददत्) सोमने गन्धर्वको दी, (गन्धर्वः अग्नये ददत्) गन्धर्वने अग्नि को दी (अथो इमां) और इसी कन्याको तथा (रयिं च पुत्रान् च अग्निः मह्यं अदात्) धन और पुत्रोंको अग्निने मुझे प्रदान किये ॥ ४ ॥

(वां सुमतिः आगन्) आपकी उत्तम मति प्राप्त हुई है । हे (वाजिनी

भावार्थ-अग्नि उपासना अर्थात् यजन अथवा हवन करनेसे दीर्घ आयुष्य, और शारीरिक कान्ति प्राप्त होती है । कन्याका पति भी इस हवनसे दीर्घजीवी अर्थात् शतायु हो सकता है ॥ २ ॥

सोम, गन्धर्व, अग्नि ये बचपनमें कन्याके तीन पति हैं । और पश्चात् उस कन्या का विवाह मनुष्य पतिके साथ होना है ॥ ३ ॥

सोम गन्धर्वको देता है, गन्धर्व अग्निके हाथमें समर्पण करता है और अग्नि पुत्रोत्पादनशक्तिके साथ मनुष्यके स्वाधीन इस कन्याको करता है ॥ ४ ॥

पुनस्तान यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥ १० ॥ (७)
मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दंपती।
सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥ ११ ॥
सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ॥ १२ ॥
शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश।

यज्ञियाः देवाः) उन रोगोंको यहां आये यज्ञके देव (पुनः यतः आगताः नयन्तु) फिर से जहांसे आये थे वहां ले जावें ॥ १० ॥

(ये परिपन्थिनः आसीदन्ति) जो लुटेरे समीप प्राप्त होंगे, वे (दम्पती मा विदन्) इस पतिपत्नीको न जानें। ये वधूवर (सुगेन दुर्गं अतीतां) सुगमतासे कठिन प्रसंगसे पार हों जांय। और इनके (अरातयः अपद्रान्तु) शत्रु दूर हों ॥ ११ ॥

(वहतुं) वधूके दहेजयुक्त रथको (गृहैः ब्रह्मणा अघोरेण मित्रियेण चक्षुषा) चारों ओरके घरवाले लोग ज्ञानपूर्वक शांत और मित्रदृष्टिके आंखसे देखें, ऐसा मैं (सं काशयामि) इनको प्रकाशित करता हूं। (यत् विश्वरूपं पर्यानद्धं अस्ति) जो विविध रूपवाला बन्धा हुआ है, उसको (सविता पतिभ्यः स्योनं कृणोतु) ईश्वर पतिके लिये सुखदायी बनावें ॥ १२ ॥

(इयं शिवा नारी अस्तं आगन्) यह कल्याणकारिणी स्त्री पतिके घर आगयी है। (धाता अस्यै इमं लोकं दिदेश) ईश्वरने इस पतिलोक का

मार्गमें भी जो रोग होना संभव है, वे सब रोग यज्ञसे दूर होंगे ॥ १० ॥

मार्गपर जो लुटेरे होंगे, उनसे इस दम्पतिको कष्ट न हों, ये पतिपत्नी सुगमतया कठिन प्रसंगोंके पार हो जांवे। और इनके सब शत्रु दूर हों ॥ ११ ॥

जब दहेजका रथ या पत्नीका पतिके घर जानेका रथ मार्गसे चला जावे, तब दोनों ओरके घरवाले उस कन्याको प्रेमकी मित्रदृष्टिसे देखें। जो भी कुछ विविध रंगरूपवाले पदार्थ हों, वे सब ईश्वरकी कृपासे इस पतिपत्नीके लिये सुखदायी बनें ॥ १२ ॥

एवं पन्थांमरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहंनम् ।
यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥ ८ ॥
इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दंपती वाममंश्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येधि तस्थुः ॥
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥ ९ ॥
ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु ।

अर्थ- (इमं पन्थां आरुक्षाम) इस मार्गसे चलें, यह (सुगं स्वस्तिवाहनं) सुगम और गाडीके लिये भी सुखकर है, (यस्मिन् वीरः न रिष्यति) जिसमें वीरका नाश नहीं होगा और (अन्येषां वसु विन्दते) दूसरों की अपेक्षा यहां धन अधिक मिलता है ॥ ८ ॥

हे (नरः) मनुष्यो ! (मे इदं सुशृणुत) मेरा यह भाषण सुनो। (यथा आशिषा) जिस आशीर्वादसे (दम्पती वामं अश्नुतः) ये वर और वधू सुखको प्राप्त होते हैं। (एषु वानस्पत्येषु) इस वनमें (ये गन्धर्वाः देवीः अप्सरसः अधि तस्थुः) जो गन्धर्व और अप्सराएं ठहरी हैं, (ते अस्यै वध्वै स्योना भवन्तु) वे इस वधूके लिये सुखदायी हों और (उह्यमानं वहतुं मा हिंसिषुः) दहेज ले जानेवाले इस रथका नाश न करें ॥ ९ ॥

(ये यक्ष्माः जनान् अनु) जो रोग मनुष्योंके संबन्धसे (वध्वः चन्द्रं वहतुं यन्ति) वधूके तेजस्वी दहेज रथके पास पहुंचते हैं, (तान् [illegible]

भावार्थ- औषधियां, नदियां, खेत, स्थान, वन [illegible] सब स्थानोंके संतानोंवाली और पतिके घर जानेवाली इस स्त्रीको सुख दें, [illegible] कोई राक्षस इसको दुःख न पहुंचावे ॥ ९ ॥

जो मार्ग सुगम और निर्भय हो उससे [illegible] चलो। और उस मार्गसे जाओ कि जिसमें उत्तम निवासके साधन मिलते हों ॥ ८ ॥

सब लोग इस भावनासे रहें, कि [illegible] इस संसार में सुखपूर्वक रहें। [illegible]

[illegible]

उद् वं ऊर्मिः शम्या हुन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसावुघ्न्यावशुंनमारंताम् ॥ १६ ॥
अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शुग्मा सुशेवां सुयमां गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥
अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥ १८ ॥

अर्थ-(वः ऊर्मिः शम्याः उत् हन्तु) आपकी लहर शान्तिका-स्थिरताका भंग करे। हे (आपः) जलो! (योक्त्राणि मुञ्चत) युगोंको छोड दो। (अदुष्कृतौ व्येनसौ अघ्न्यौ) दुष्ट कर्म न करनेवाले गाडीसे छोडे हुए दोनों बैल (अशुनं मा आरतां) अशुभको न प्राप्त हों॥ १६॥

(गृहेभ्यः) अपने घरोंके लिये (अघोरचक्षुः अपतिघ्नी स्योना) क्रूर दृष्टि न करनेवाली, पतिहत्या न करनेवाली, सुखकारिणी (शग्मा सुशेवा सुयमा) कल्याणकारिणी, सेवा करने योग्य, सुनियमोंसे चलनेवाली, (वीरसूः देवृकामा) वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली, देवरकी इच्छा पूर्ण करनेवाली, और (सुमनस्यमाना) उत्तम अन्तःकरणसे युक्त (त्वया एधिषीमहि) तुझसे हम संपन्न हों॥ १७॥

(अदेवृघ्नी अपतिघ्नी) देवरका नाश न करनेवाली, पतिका घात न करनेवाली, (पशुभ्यः शिवा) पशुओंका हित करनेवाली, (सुयमा सुवर्चाः) उत्तम नियमोंसे चलनेवाली और उत्तम तेजसे युक्त (प्रजावती वीरसूः) संतानयुक्त, वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली, (देवृकामा स्योना) देवर-

भावार्थ-प्रवासमें जब शान्तिका भंग होवे, अर्थात् मनको कष्ट प्रतीत हों, उस समय वाहनके बैल छोडे जांय और उनको उत्तम स्थानमें सुरक्षित रखा जाय॥ १६॥

यह स्त्री पतिके घरमें आकर आनन्दसे रहे, आंखें क्रोधयुक्त न करे, पतिकी हितकारिणी बने, धर्मनियमोंका पालन करे, सबको सुख देवे, अपने संतानोंको वीरताकी शिक्षा देवे, देवर आदिको संतुष्ट रखे, अन्तःकरणमें शुभ भाव रखे। ऐसी स्त्रीसे घर सुसंपन्न होता है॥ १७॥

स्त्री पतिगृहमें आकर देवर और पतिका हित करे, पशुओं की उत्तम

तमर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥ १३ ॥
आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥ १४ ॥
प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥

मार्ग दर्शाया है। (अर्यमा भगः उभा अश्विना प्रजापतिः) ये सब देव (तां प्रजया वर्धयन्तु) उसको प्रजाके साथ बढावें ॥ १३ ॥

(आत्मन्वती ऊर्वरा इयं नारी आगन्) आत्मिक बलसे युक्त तथा सुपुत्र उत्पन्न करनेवाली यह नारी पतिके घर आगई है। (नरः तस्यां अस्यां बीजं वपत) हे मनुष्यो! उस स्त्रीमें बीज बोओ, वीर्यका आधान करो। (सा वः) वह तुम्हारे लिये (ऋषभस्य दुग्धं रेतः बिभ्रती) वीर्यवान् पुरुषको वीर्य धारण करती हुई (वक्षणाभ्यः प्रजां जनयत्) अपने गर्भाशयसे संतान उत्पन्न करे ॥ १४ ॥

हे स्त्री! तू (प्रतितिष्ठ) यहां प्रतिष्ठित हो, तू (विराट् असि) विशेष तेजस्वी है। तुम्हारा पति (विष्णुः इव इह) विष्णुके समान यहां है। हे (सरस्वति, सिनीवालि) विद्यादेवी और अन्नवती देवी! इसे (प्रजायतां) संतान हो और यह (भगस्य सुमतौ असत्) भाग्यके देवकी सुमतिमें रहे ॥ १५ ॥

भावार्थ-यह सुस्वभाववाली स्त्री पतिके घर जाती है, क्यों कि विधाताने यही स्थान इसके लिये निर्दिष्ट किया था। सब देव इसको उत्तम संतान दें ॥ १३ ॥

यह स्त्री आत्मिक बलसे युक्त है और पुत्र उत्पन्न होनेकी शक्तिसे युक्त है अर्थात् यह वंध्या नहीं है। पति इस स्त्रीमें अपने वीर्यका आधान करता है और पश्चात् वह स्त्री उस वीर्यको धारण करती हुई अपने गर्भाशयसे संतानोत्पत्ति करती है ॥ १४ ॥

स्त्री अपने पतिगृहमें प्रतिष्ठाको प्राप्त हो, स्त्री घरकी सम्राज्ञी है, उसका पति देव है और यह उसकी देवी है। इस पतिपत्नीको उत्तम संतान प्राप्त हो और ये दोनों उत्तम बुद्धि धारण करें ॥ १५ ॥

यं ब॒ल्ब॒जं न्य॒स्यथ॒ चर्म॑ चोपस्तृणी॒थनं॑ ।
तदा रो॑हतु सुप्र॒जा या क॒न्या॑ वि॒न्दते॒ पति॑म् ॥ २२ ॥
उप॑ स्तृणीहि ब॒ल्ब॒जमधि॒ चर्म॑णि रोहि॑ते ।
तत्रो॑प॒विश्य॑ सुप्र॒जा इ॒मम॒ग्निं स॑पर्यतु ॥ २३ ॥
आ रो॑ह॒ चर्मोप॑ सीदा॒ग्निमे॒ष दे॒वो ह॑न्ति॒ रक्षां॑सि॒ सर्वा॑ ।
इ॒ह प्र॒जां ज॑नय॒ पत्ये॑ अ॒स्मै सु॑ज्यै॒ष्ठ्यो भ॑वत् पु॒त्रस्त॑ ए॒षः ॥ २४ ॥

अन्न देनेवाली देवी ! (प्र जायतां) यह स्त्री उत्तम रीतिसे संतति उत्पन्न करे और (भगस्य सुमतौ असत्) भगवान् की उत्तम मतिमें रहे ॥ २१ ॥

(यं बल्बजं न्यस्यथ) जो चटाई नीचे बिछाते हैं (च चर्म उपस्तृणीथन) और चर्म ऊपर बिछाते हैं । (या कन्या पतिं विन्दते) जो कन्या पतिको प्राप्त करती है, वह (सुप्रजा तत आरोहतु) उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली उसपर चढे ॥ २२ ॥

(बल्बजं उपस्तृणीहि) पहिले चटाई फैला दो, पश्चात् (अधि चर्मणि रोहिते) मृगचर्मके ऊपर (तत्र सुप्रजा उपविश्य) वहां सुप्रजा उत्पन्न करनेवाली यह स्त्री (इमं अग्निं सपर्यतु) इस अग्निकी उपासना करे ॥२३॥

(चर्म आरोह) इस चर्मपर चढ, (अग्निं उप आसीद) अग्निके समीप बैठ । (एषः देवः सर्वाः रक्षांसि हन्ति) यह देव सब राक्षसोंका नाश करता है । (इह अस्मै पत्ये प्रजां जनय) यहां इस पतिके लिये संतान उत्पन्न कर । (ते एषः पुत्रः सुज्यैष्ठ्यः भवत्) तेरा यह पुत्र उत्तम श्रेष्ठ बने ॥ २४ ॥

भावार्थ- पति अपनी स्त्रीके लिये हरएक प्रकारसे सुख देवे, और उसकी उत्तम रक्षा करे । यह स्त्री उत्तम अन्न सेवन करके उत्तम संतान उत्पन्न करे और ऐसा आचरण करे कि ईश्वर का आशीर्वाद इसे प्राप्त हो ॥२१॥

पहिले घासकी चटाई बिछाई जावे, उसपर कृष्णाजिन बिछाया जावे। जो स्त्री पतिको प्राप्त करती है, वह सुप्रजा उत्पन्न करनेवाली स्त्री इस बिछोनेपर चढे ॥ २२ ॥

पहिले चटाई फैलाओ, उसपर चर्म बिछा दो, वहां उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली स्त्री बैठकर अग्नि की उपासना करे ॥ २३ ॥

उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात्।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥ १९ ॥
यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम्।
अधा सरस्वत्यै नारी पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥ २० ॥ (८)
शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ २१ ॥

की कामना पूर्ण करनेवाली सुखदायिनी तू (इमं गार्हपत्यं अग्निं सपर्य) इस गार्हपत्य अग्निकी पूजा कर ॥ १८ ॥

हे (निर्ऋते) दरिद्रते! (उत् तिष्ठ) उठ, कहो कि (किं इच्छसि) तू क्या चाहती हुई (इदं आगाः) यहां आगई है। (अहं अभिभूः) मैं तेरा पराभव करनेवाला (स्वात् गृहात् त्वा ईडे) अपने घरसे तुझे हरा देता हूं। (या शून्य-एषि) जो तू घरको शून्य करना चाहती हुई तू (आजगन्थाः) यहां आगई है, हे (अ-राते) शत्रुभूत दरिद्रते! (उत्तिष्ठ) यहांसे उठ और (प्र पत) दूर भाग जा। (इह मा रंस्थाः) यहां मत रममाण हो ॥ १९ ॥

(यदा इयं वधूः) जब यह स्त्री (गार्हपत्यं अग्निं पूर्व असपर्यैत्) गार्हपत्य अग्निकी पहिले पूजा करे, (अधा) तत्पश्चात हे (नारि) स्त्री! तू (सरस्वत्यै पितृभ्यः च नमस्कुरु) सरस्वतिको और पितरोंको नमन कर ॥ २० ॥

(अस्यै नार्यै) इस स्त्रीके लिये (उपस्तरे एतत् शर्म वर्म) दिलानेके लिये यह सुख और संरक्षण (आहर) ले आ। हे (सिनी-वालि)

पालना करे, धर्मनियमोंके अनुसार चले, तेजस्विनी बने, अपने संतानोंको वीरताकी शिक्षा देवे और अग्निकी हवनद्वारा उपासना करे ॥ १८ ॥

गृहस्थीके घरमें दरिद्रता न रहे। गृहस्थ अपने प्रयत्नसे दारिद्र्य दूर करे। जो घर पुरुषार्थसे शून्य होता है, उसमें दारिद्र्य रहता है। अतः प्रयत्नद्वारा दरिद्रताको दूर करना योग्य है ॥ १९ ॥

स्त्री पतिघरमें प्रतिदिन सबसे पहिले गार्हपत्याग्निकी हवनद्वारा उपासना करे, पश्चात् विद्यादेवीकी और पश्चात् पितरोंकी पूजा करे ॥ २० ॥

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥ २८ ॥
या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्व१स्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥ २९ ॥
रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥ ३० ॥] ९]

अर्थ-(इयं सुमंगली वधूः) यह मङ्गलयुक्त वधू है। (सं ऐत, इमां पश्यत) इकट्ठे होओ और इसको देखो। (अस्यै सौभाग्यं दत्त्वा) इसको सौभाग्य का आशीर्वाद देकर (दौर्भाग्यैः वि परेतन) दुष्ट भाग्यको दूर करते हुए वापस जाओ ॥ २८ ॥

(याः दुर्हार्दः युवतयः) जो दुष्ट हृदयवाली स्त्रियां हैं और (याः च इह जरतीः अपि) जो यहां वृद्ध स्त्रियां हैं, वे (अस्यै नु वर्चः सं दत्त) इसको निश्चयपूर्वक तेज देवें, (अथ अस्तं विपरेतन) और अपने घरको वापस जावें ॥ २९ ॥

(रुक्मप्रस्तरणं) सोनेके बिछोनेसे युक्त (विश्वा रूपाणि बिभ्रतं) अनेक सुंदर सजावटोंको धारण करनेवाले, (कं वह्यं) सुखदायक रथपर (सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय आरोहत्) सूर्या सावित्री बडे सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये चढी है ॥ ३० ॥

भावार्थ- यह स्त्री श्वशुरोंका हित करे, पतिको सुख दे, सब घरवालोंका हित करे और सबको पुष्ट रखे ॥ २७ ॥

सब भाईबंधु इकट्ठे होकर यहां आवें और इस वधूका दर्शन करें। यह वधू बहुत कल्याण करनेवाली है। अतः वे इस वधूको शुभाशीर्वाद देकर, इसके जो दुष्ट भाग्य हैं, उनको दूर करके वापस अपने घर जावें ॥ २८ ॥

जो दुष्ट हृदयवाली और बूढी स्त्रियां हैं, वे भी सब स्त्रियां इस वधूको अपना तेज अर्पण करें और अपने घरको वापस चली जावें ॥ २९ ॥

जिसपर सोनेके जरतारीका काम किया है ऐसे गद्दे जिसमें लगे हैं और विविध हुनरोंसे जिसकी शोभा बढाई है, ऐसे सुन्दर रथपर यह वधू चढे और पतिके घर प्राप्त होकर बडा सौभाग्य प्राप्त करे ॥ ३० ॥

वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः ।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ॥ २५ ॥
सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥ २६ ॥
स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥ २७ ॥

अर्थ-(अस्याः मातुः उपस्थात) इस माताके पास (जायमानाः नाना रूपाः पशवः वि तिष्ठन्तां। उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके पशु ठहरें। (सुमंगली संपत्नी इमं अग्निं उपसीद) उत्तम मंगल कामनावाली और उत्तम पतिके साथ यह स्त्री इस अग्निकी उपासना करे। और (इह देवान् प्रतिभूष) यहां देवोंकी सेवा करे, शोभा बढावे ॥ २५ ॥

(सुमंगली) उत्तम मंगल आभूषण धारण करनेवाली (गृहाणां प्रतरणी) घरोंको दुःखसे दूर करनेवाली (पत्ये सुशेवा) पतिकी उत्तम सेवा करनेवाली (श्वशुराय शंभूः) श्वशुरको सुख देनेवाली, (श्वश्र्वै स्योना) सासको आनंद देनेवाली तू (इमान गृहान् प्रविश) इन घरोंमें प्रविष्ट हो ॥ २६ ॥

(श्वशुरेभ्यः स्योना भव) श्वशुरोंके लिये सुख देनेवाली हो, (पत्ये गृहेभ्यः स्योना) पति और घरके लिये हितकारिणी हो, (अस्यै सर्वस्यै विशे स्योना) इस सब प्रजासमूहको सुखदायिनी, (स्योना एषां पुष्टाय भव) सुखदायक होकर इन सबकी पुष्टिके लिये हो ॥ २७ ॥

भावार्थ- उस चर्मपर चढ, अग्निकी पूजा कर। यह अग्निदेव सब दुष्ट राक्षसोंका नाश करता है। इस संसारमें अपने पतिके लिये संतान उत्पन्न कर। यह तेरा पहिला पुत्र उत्तम श्रेष्ठ बने ॥ २४ ॥

जब यह स्त्री माता होगी, तब उसके साथ विविध रंगरूपवाले गौ आदि पशु रहेंगे। यह स्त्री उत्तम मंगल कामना धारण करके अग्निकी उपासना करे और देवोंको सुभूषित करे ॥ २५ ॥

उत्तम मंगल कामनावाली, गृहवालोंको दुःखसे छुडानेवाली, पतिकी सेवा करनेवाली, श्वशुरको सुख देनेवाली, सासका हित करनेवाली स्त्री अपने घरमें प्रविष्ट हो ॥ २६ ॥

जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥ ३३ ॥
अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥ ३४ ॥
नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः ।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोभि जाया अप्सरसः परेहि ॥ ३५ ॥

न्यक्तां जामिं इच्छ) पिताके घरमें रहनेवाली सुशोभित वधूको तू प्राप्त करनेकी इच्छा कर । (सः ते भागः) वह तेरा भाग है । (तस्य जनुषा विद्धि) उसका जन्मसे ज्ञान प्राप्त कर ॥ ३३ ॥

(हविर्धानं अन्तरा सूर्यं च) हविर्धान और सूर्यके मध्यमें (अप्सरसः सधमादं मदन्ति) अप्सराएं साथ साथ मिलकर आनन्दित होनेवाले कर्ममें आनन्दित होती हैं । (ताः ते जनित्रं) वह तेरा जन्मस्थान है। (ताः अभि परेहि) उनके पास जा । (गन्धर्व-ऋतुना ते नमः कृणोमि) गन्धर्वके ऋतुओंके साथ तुझे मैं नमन करता हूं ॥ ३४ ॥

(गंधर्वस्य नमसे नमः) गंधर्वके नमस्कारको हम नमस्कार करते हैं। उसके (भामाय चक्षुषे च नमः कृण्मः) तेजस्वी आंखके लिये हम नमन करते हैं । हे (विश्वावसो) सब धनसे युक्त ! (ते ब्रह्मणा नमः) तुझे हम ज्ञानके साथ नमन करते हैं । (अप्सरसः जायाः अभि परेहि) अप्सरा जैसी स्त्रियोंके साथ परे जा ॥ ३५ ॥

करनेकी इच्छा करते हैं, तो यह आपका भाग हो सकता है । इस आपके भाग के— इस स्त्रीके-जन्मसे सब वृत्तान्त आप चाहे तो जान सकते हैं ॥ ३३ ॥

इस यज्ञस्थानभूमि और सूर्य इनके बीच अन्तरिक्षमें अप्सराएं (सूर्य प्रभाएं) एक घरमें आनन्दसे रहकर बहुत आनन्द प्राप्त करती हैं। इस प्रकार गृहस्थ अपने घरमें आनन्दसे रहे । स्त्रियां ही सबकी उत्पत्तिका स्थान है, अतः इनके साथ पुरुष रहे । और ऋतुके अनुसार आदरपूर्वक ऋतुगामी होवे ॥ ३४ ॥

दूसरेके नमस्कार करनेपर उसको नमन करना उचित है, उसके तेजस्वी आंखके साथ अपनी आंख मिलाकर नमन करना उचित है। इस

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥ ३१ ॥
देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः ।
सूर्येव नारी विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥ ३२ ॥
उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।

अर्थ-(सुमनस्यमाना तल्पं आरोह) उत्तम मनके भाव धारण करती हुई स्त्री बिस्तरेपर चढे । (इह अस्यै पत्ये प्रजां जनय) यहां इस पतिके लिये संतान उत्पन्न कर। (इन्द्राणी इव सुबुधा) इन्द्राणीके समान उत्तम ज्ञान-वाली होकर (ज्योतिः अग्रा उषसः बुध्यमाना) जिसके बाद सूर्यकी ज्योति आनेवाली है ऐसी उषाओंके पूर्व जागकर (प्रति जागरासि) निद्रा छोडकर उठ ॥ ३१ ॥

(अग्रे देवाः पत्नीः नि अपद्यन्त) पूर्व समयमें देव लोग अपनी स्त्रियों के साथ सोते थे। (तन्वः तनूभिः सं अस्पृशन्त) अपने शरीरोंसे स्त्रियोंके शरीरको स्पर्श करते थे। इस प्रकार हे (नारि) स्त्री! तू (इह) इस संसारमें (सूर्या इव) सूर्यप्रभाके समान (महित्वा विश्वरूपा) महत्त्वसे अनेक रूपवाली होकर (प्रजावती पत्या संभव) प्रजायुक्त होकर पतिके साथ संतान उत्पन्न कर ॥ ३२ ॥

हे (विश्वावसो) सब धनसे युक्त वर! (इतः उत्तिष्ठ) यहांसे उठ, हम (त्वा नमसा ईडामहे) तेरी नमस्कारोंसे पूजा करते हैं। (पितृषदं

भावार्थ- यह स्त्री मनके उत्तम भाव धारण करती हुई बिस्तरेपर चढे, और पतिके लिये उत्तम संतान निर्माण करे। उत्तम ज्ञान संपादन करके उषःकालके पूर्व जागकर निद्रासे निवृत्त होकर उठे ॥ ३१ ॥

पूर्व समयमें देवभी अपनी धर्मपत्नियोंके संग सोते रहे, अपने शरीर से स्त्रीके शरीरको आलिंगन देते रहे। उसी प्रकार यह स्त्री भी अनेक प्रकार अपने रूपकी सजावट करती हुई, उत्तम प्रजा निर्माण करनेकी इच्छासे पतिके साथ मिलकर रहे ॥ ३२ ॥

हे धनवाले पुरुष! वहांसे उठकर यहां आ, हम आपका स्वागत करते हैं। यह वधू इस समयतक पिताके घर रहती थी, आप इस वधूको प्राप्त

जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥ ३३ ॥
अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥ ३४ ॥
नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः ।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोभि जाया अप्सरसः परेहि ॥ ३५ ॥

न्यक्तां जामिं इच्छ) पिताके घरमें रहनेवाली सुशोभित वधूको तू प्राप्त करनेकी इच्छा कर । (सः ते भागः) वह तेरा भाग है । (तस्य जनुषा विद्धि) उसका जन्मसे ज्ञान प्राप्त कर ॥ ३३ ॥

(हविर्धानं अन्तरा सूर्यं च) हविर्धान और सूर्यके मध्यमें (अप्सरसः सधमादं मदन्ति) अप्सराएं साथ साथ मिलकर आनन्दित होनेवाले कर्ममें आनन्दित होती हैं । (ताः ते जनित्रं) वह तेरा जन्मस्थान है । (ताः अभि परेहि) उनके पास जा । (गन्धर्व-ऋतुना ते नमः कृणोमि) गन्धर्वके ऋतुओंके साथ तुझे मैं नमन करता हूं ॥ ३४ ॥

(गंधर्वस्य नमसे नमः) गंधर्वके नमस्कारको हम नमस्कार करते हैं । उसके (भामाय चक्षुषे च नमः कृण्मः) तेजस्वी आंखके लिये हम नमन करते हैं । हे (विश्वावसो) सब धनसे युक्त ! (ते ब्रह्मणा नमः) तुझे हम ज्ञानके साथ नमन करते हैं । (अप्सरसः जायाः अभि परेहि) अप्सरा जैसी स्त्रियोंके साथ परे जा ॥ ३५ ॥

करनेकी इच्छा करते हैं, तो यह आपका भाग हो सकता है । इस आपके के— इस स्त्रीके-जन्मसे सब वृत्तान्त आप चाहे तो जान सकते ॥ ३३ ॥

इस यज्ञस्थानभूमि और सूर्य इनके बीच अन्तरिक्षमें अप्सराएं (सूर्य) एक घरमें आनन्दसे रहकर बहुत आनन्द प्राप्त करती हैं । इस गृहस्थ अपने घरमें आनन्दसे रहे । स्त्रियां ही सबकी उत्पत्तिका है, अतः उनके साथ पुरुष रहे । और ऋतुके अनुसार आदरपूर्वक होवे ॥ ३४ ॥

नमस्कार करनेपर उसको नमन करना उचित है, उसके तेज- साथ अपनी आंख मिलाकर नमन करना उचित है । इस

राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम् ।
अगन्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ ३६ ॥
सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः ।
मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ ३७ ॥
तां पूषं छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥ ३८ ॥

अर्थ- (वयं राया सुमनसः स्याम) हम धनके साथ उत्तम मनवाले हों। (इतः गंधर्व उत् आवीवृतां) यहांसे गंधर्वको घेरें, स्वीकार करें, प्राप्त करें। (सः देवः परमं सधस्थं अगन्) वह देव परम श्रेष्ठ स्थानको प्राप्त हुआ है। (यत्र आयुः प्रतिरन्तः अगन्म) जहां आयुको दीर्घ बनाते हुए हम पहुंचते हैं॥ ३६ ॥

हे (पितरौ) मातापिताओ! (ऋत्विये संसृजेथां) ऋतुकालमें संयुक्त होवो! (रेतसः माता च पिता च भवाथः) वीर्यके योगसेहि तुम माता और पिता बनोगे। (मर्यः इव एनां योषां अधिरोहय) मर्दके समान इस स्त्रीके साथ बिस्तरेपर चढ। (इह प्रजां कृण्वाथां) यहां संतान उत्पन्न करो और (रयिं पुष्यतं) धनको पुष्ट करो अर्थात् बढाओ॥ ३७ ॥

हे (पूषन्) पूषा! (तां शिवतमां एयरस्व) उस कल्याणमयी स्त्रीको प्राप्त कर। (यस्यां मनुष्याः बीजं वपन्ति) जिसमें मनुष्य बीज बोते हैं।

तरह परस्परको जानकर नमस्कार किया जावे। और युवती स्त्रीके साथ पुरुष दूर जाकर एकान्त करे॥ ३५ ॥

मनुष्यको जैसा जैसा धन मिले वैसा वैसा वह मनके शुभ संस्कारोंसे युक्त बने। और वे ईश्वरको माननेवाले हों। वह ईश्वर परम उच्च स्थानपर विराजमान है, जहां हम आयुको दीर्घ करते हुए पहुंच सकते हैं॥ ३६ ॥

हे स्त्री पुरुषो! तुम अपने रजवीर्यके बलसेहि मातापिता बन सकते हैं, अर्थात् सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। अतः ऋतुकालमें संयुक्त होवो। मर्दके समान स्त्रीसे युक्त होवो, सन्तान उत्पन्न करो और धन भी प्राप्त करो और बढाओ॥ ३७ ॥

शुभ संस्कारोंसे युक्त वधूको पुरुष प्राप्त करे। मनुष्य उत्तम स्त्रीमें हि

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥ ३९ ॥
आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४०॥ [१०]

(या उशती नः ऊरू विश्रयाति) जो इच्छा करती हुई हमारे लिये अपना शरीर देती है। (यस्यां उशन्तः शेपः प्रहरेम) जिसकी कामना करनेवाले हम विषय सेवन करें ॥ ३८ ॥

(ऊरुं आरोह) ऊपरपर चढ, (हस्तं उपधत्स्व) हाथ लगा दो। (सुमनस्यमानः जायां परिष्वजस्व) उत्तम मनसे युक्त होकर स्त्रीको आलिङ्गन कर। (इह मोदमानौ प्रजां कृण्वाथां) यहां आनंद भोगते हुए प्रजाकी उत्पत्ति करो। (सविता वां दीर्घं आयुः कृणोतु) सविता आप दोनोंकी दीर्घ आयु करे ॥ ३९ ॥

(प्रजापतिः वां प्रजां जनयतु) प्रजापति ईश्वर तुम दोनोंकी संतान उत्पन्न करे। (अर्यमा अहोरात्राभ्यां समनक्तु) अर्यमा तुम दोनोंको दिनरात संयुक्त करे। (अ-दुर्मंगली इमं पतिलोकं आविश) अशुभभाव [illegible] धारण करनेवाली तू स्त्री इस पतिस्थानको प्राप्त कर। (नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव) हमारे द्विपाद और चतुष्पादके लिये सुखकारी हो ॥ ४० ॥

[illegible] होते हैं। पुरुषकी इच्छासे स्त्री अपना शरीर पुरुषको समर्पण करती है, जिससे पुरुष वीर्याधान करे ॥ ३८ ॥

पुरुष स्त्रीके साथ प्रेमसे मिले, उसे आदरके साथ आलिंगन देवे, दोनों [illegible] आनन्दके [illegible] होवें और सन्तान उत्पन्न करें। इन स्त्रीपुरुषोंकी [illegible] दीर्घ बनावे ॥ ३९ ॥

[illegible] ईश्वर इन स्त्रीपुरुषोंसे संतान उत्पन्न करे। यहां दिन रात [illegible] रहें। इनमें कोई दुष्ट दुर्गुण न हों और उत्तम [illegible] प्राप्त करे। इस घरमें [illegible] द्विपाद [illegible] ॥ ४० ॥

राया व॒यं सु॒मन॑सः स्या॒मोदि॒तो ग॑न्ध॒र्वमावी॑वृताम् ।
अग॑न्त्स दे॒वः प॑र॒मं स॒धस्थ॒मग॑न्म॒ यत्र॑ प्रति॒रन्त॒ आयुः॑ ॥ ३६ ॥
सं पि॑तरा॒वृत्वि॑ये सृ॒जेथां॑ मा॒ता पि॒ता च॒ रेत॑सो भवाथः ।
मर्य॑ इव॒ योषा॒मधि॑रोह॑यैनां प्र॒जां कृ॑ण्वाथामि॒ह पु॑ष्यतं र॒यिम् ॥ ३७ ॥
तां पू॑षञ्छि॒वत॑मा॒मेर॑यस्व॒ यस्यां॒ बीजं॑ मनु॒ष्या॒ वप॑न्ति ।
या न॑ ऊ॒रू उ॑श॒ती वि॒श्रया॑ति॒ यस्या॑मु॒शन्तः॑ प्र॒हरा॑म॒ शेपः॑ ॥ ३८ ॥

अर्थ- (वयं राया सुमनसः स्याम) हम धनके साथ उत्तम मनवाले हों। (इतः गंधर्व उत् आवीवृतां) यहांसे गंधर्वको घेरें, स्वीकार करें, प्राप्त करें। (सः देवः परमं सधस्थं अगन्) वह देव परम श्रेष्ठ स्थानको प्राप्त हुआ है। (यत्र आयुः प्रतिरन्तः अगन्म) जहां आयुको दीर्घ बनाते हुए हम पहुंचते हैं ॥ ३६ ॥

हे (पितरौ) मातापिताओ ! (ऋत्विये संसृजेथां) ऋतुकालमें संयुक्त होवो ! (रेतसः माता च पिता च भवाथः) वीर्यके योगसेहि तुम माता और पिता बनोगे। (मर्यः इव एनां योषां अधिरोहय) मर्दके समान इस स्त्रीके साथ बिस्तरेपर चढ। (इह प्रजां कृण्वाथां) यहां संतान उत्पन्न करो और (रयिं पुष्यतं) धनको पुष्ट करो अर्थात् बढाओ ॥ ३७ ॥

हे (पूषन्) पूषा ! (तां शिवतमां एयरस्व) उस कल्याणमयी स्त्रीको प्राप्त कर। (यस्यां मनुष्याः बीजं वपन्ति) जिसमें मनुष्य बीज बोते हैं।

तरह परस्परको जानकर नमस्कार किया जावे। और युवती स्त्रीके साथ पुरुष दूर जाकर एकान्त करे ॥ ३५ ॥

मनुष्यको जैसा जैसा धन मिले वैसा वैसा वह मनके शुभ संस्कारोंसे युक्त बने। और वे ईश्वरको माननेवाले हों। वह ईश्वर परम उच्च स्थानपर विराजमान है, जहां हम आयुको दीर्घ करते हुए पहुंच सकते हैं ॥ ३६ ॥

हे स्त्री पुरुषो ! तुम अपने रजवीर्यके बलसेहि मातापिता बन सकते हैं, अर्थात् सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। अतः ऋतुकालमें संयुक्त होवो। मर्दके समान स्त्रीसे युक्त होवो. सन्तान उत्पन्न करो और धन भी प्राप्त करो और बढाओ ॥ ३७ ॥

शुभ संस्कारोंसे युक्त वधूको पुरुष प्राप्त करे। मनुष्य उत्तम स्त्रीमें हि

नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।
आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ॥ ४४ ॥
शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४५ ॥
सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥ ४६ ॥

उषःकालवाले दीर्घ आयुष्यके दिनोंको सुखके साथ तैर जाओ ॥ ४३ ॥

मैं (नवं वसानः सुरभिः सुवासाः जीवः) नवीन वस्त्र पहनता हुआ सुगंध धारण करके उत्तम वस्त्र पहननेवाला जीवधारी मनुष्य (विभातीः उषसः उदागां) तेजस्वी उषःकालोंमें उठता हूं। (अण्डात् पतत्री इव) अण्डेसे निकलनेवाले पक्षीके समान मैं (विश्वस्मात् एनसः परि अमुक्षि) सब पापसे मैं मुक्त होऊं ॥ ४४ ॥

(द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते शुम्भनी) द्यौ और पृथिवी ये दोनों लोक समीपसे सुख देनेवाले, बडे नियम पालन करनेवाले, और शोभावाले हैं। (देवीः सप्त आपः सुस्रुवुः) दिव्य सातों जलप्रवाह चल पडे हैं। (ताः अंहसः नः मुञ्चन्तु) वे जलप्रवाह पापसे हम सबका बचाव करें ॥ ४५ ॥ (अथर्व ७।११२।१)

(सूर्यायै देवेभ्यः मित्राय वरुणाय च) उषा, अग्नि आदि देव, सूर्य वरुण तथा (ये भूतस्य प्रचेतसः) जो भूतोंके ज्ञानदाता देव हैं (तेभ्यः इदं नमः अकरं) उनके लिये यह नमस्कार मैं करता हूं ॥४६॥ (ऋ.१०।८५।१७)

पुत्रोंसे युक्त, उत्तम घरवाले होकर, दीर्घ आयुके सब दिन आनंदपूर्वक व्यतीत करें ॥ ४३ ॥

मैं उत्तम वस्त्र पहनकर, सुगंध धारण करता हुआ, शरीरको सुशोभित करके, ऐसा सदाचारसे रहूंगा कि जिससे सब प्रकारके पाप दूर हो जांयगे ॥ ४४ ॥

द्युलोक और पृथ्वी लोक ये सबको सुख देनेवाले हैं, वे अपने नियमसे चलते हैं। इनके मध्यमें सात प्रवाह बह रहे हैं। ये हम सबको पापसे बचावें ॥ ४५ ॥

दे॒वैर्द॒त्तं मनु॑ना सा॒कमे॒तद् वाधू॑यं॒ वासो॑ व॒ध्वश्च॒ वस्त्र॑म् ।
यो ब्र॒ह्मणे॑ चिकि॒तुषे॒ ददा॑ति॒ स इद् रक्षां॑सि॒ तल्पा॑नि हन्ति ॥ ४१ ॥
यं मे॑ द॒त्तो ब्र॑ह्मभा॒गं व॑धू॒योर्वाधू॑यं॒ वासो॑ व॒ध्वश्च॒ वस्त्र॑म् ।
यु॒वं ब्र॒ह्मणे॑ऽनुमन्य॑मानौ॒ बृह॑स्पते सा॒कमिन्द्र॑श्च द॒त्तम् ॥ ४२ ॥
स्यो॒नाद्योने॒रधि॒ बुध्य॑मानौ हसा॒मुदौ॒ मह॑सा॒ मोद॑मानौ ।
सु॒गू सु॑पु॒त्रौ सु॑गृ॒हौ त॑राथो जी॒वावु॒षसो॑ विभा॒तीः ॥ ४३ ॥

(देवैः दत्तं) देवोंद्वारा दिया हुआ (मनुना साकं) मनुके साथ प्राप्त हुआ (एतत् वाधूयं वासः) यह विवाहके समयका वस्त्र (वध्वः च वस्त्रं) और जो वधूका वस्त्र है, वह (यः चिकितुषे ब्रह्मणे ददाति) जो ज्ञानी ब्राह्मणको दान करता है (स इत् तल्पानि रक्षांसि हन्ति) वह निश्चयसे बिस्तरेपर रहनेवाले राक्षसोंका नाश करता है ॥ ४१ ॥

हे (बृहस्पते) बृहस्पति ! और (साकं इन्द्रः च) साथ रहनेवाले इन्द्र ! तुम दोनों (वधूयोः वाधूयं वासः) वधूका विवाहके समयका वस्त्र और (वध्वः च वस्त्रं) जो वधूका वस्त्र है। (यं ब्रह्मभागं मे दत्तः) उस ब्राह्मण के भागको तुम दोनों मुझको देते हो। (युवं ब्रह्मणे अनुमन्यमानौ ब्रह्म णे दत्तं) तुम दोनों ब्राह्मणको प्रदान करनेकी संमति देनेवाले [illegible] उक्त वस्त्र प्रदान करते हो ॥ ४२ ॥

(हसामुदौ महसा मोदमानौ) हास्यविनोद करनेवाले, [illegible] विचारसे आनंदित होनेवाले (स्योनात् योनेः अधि बुध्यमानौ) [illegible] पक शयनमंदिरसे जागकर उठनेवाले, (सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ) उत्तम इंद्रियों और गौओंसे युक्त, उत्तम बालबच्चोंवाले, उत्तम [illegible] [illegible] दो जीव अर्थात् स्त्री और पुरुष (विभातीः उषसः तराथः) [illegible]

भावार्थ— वधूके पहननेके लिये लाया [illegible] [illegible] देनेसे शयनस्थानमें उत्पन्न होनेवाले [illegible]

वधूके पहननेके लिये लाया वस्त्र [illegible], [illegible] ब्राह्मणको दिया जावे ॥ ४२ ॥

स्त्रीपुरुष हास्यविनोद करते हुए, आनंद [illegible] हुए, [illegible] मंदिरमें सोकर योग्य समयमें [illegible] हुए, [illegible]

या मे॑ प्रि॒यत॑मा त॒नूः सा मे॑ बिभाय॒ वास॑सः ।
तस्या॒ग्रे त्वं व॑नस्पते नी॒विं कृ॑णुष्व॒ मा व॒यं रि॑षाम ॥ ५० ॥ [११]
ये अन्ता॒ याव॑ती॒ः सिचो॒ य ओत॑वो॒ ये च॒ तन्त॑वः ।
वासो॒ यत् पत्नी॑भिरु॒तं तन्नः॑ स्यो॒नमुप॑ स्पृशात् ॥ ५१ ॥
उ॒श॒तीः क॒न्यला॑ इ॒माः पि॑तृलो॒कात् पतिं॑ य॒तीः ।
अव॑ दी॒क्षाम॑सृक्षत॒ स्वाहा॑ ॥ ५२ ॥
बृह॒स्पति॒नाव॑सृष्टां॒ विश्वे॑ दे॒वा अ॑धारयन् ।

अर्थ- (या मे प्रियतमा तनूः) जो मेरा अत्यंत प्रिय शरीर है, (सा मे वाससः बिभाय) वह मेरे वस्त्रसे डरता है। इसलिये हे (वनस्पते) वृक्ष ! (अग्रे त्वं तस्य नीविं कृणुष्व) पहिले तू उसकी ग्रंथी बना, जिससे (वयं मा रिषाम) हम दुखी न हों ॥ ५० ॥ (११)

(ये अन्ताः यावतीः सिचः) जो झालरें हैं और किनारियां हैं, (ये ओतवः ये च तन्तवः) जो बाने हैं और जो धागे हैं, (यत वासः पत्नीभिः उतं) जो वस्त्र स्त्रियोंने बुना है, (तत् वः स्योनं उपस्पृशात्) वह हमारे शरीरको सुखस्पर्श करनेवाला बने ॥ ५१ ॥

(उशतीः इमाः कन्यलाः) पतिकी इच्छा करनेवाली ये कन्याएं (पितृलोकात् पतिं यतीः) पिताके स्थानसे पतिके घर जाती हुई (दीक्षां अव सृक्षत, सु-आहा) दीक्षाव्रतको धारण करे, यह उत्तम उपदेश है ॥ ५२ ॥

(बृहस्पतिना अवसृष्टां) बृहस्पतिने रची हुई इस दीक्षाको (विश्वे

भावार्थ- मेरा शरीर सुडौल और हृष्टपुष्ट है। वस्त्रधारणसे उसकी शोभा घटती है। तथापि जोडकर हम वस्त्र धारण करते हैं, जिससे हमें कोई कष्ट न हों ॥ ५० ॥

जो हमारे स्त्रीजनोंने उत्तम वस्त्र बुना है, जिसको सुंदर किनारियां और झालरें लगी हैं, वह वस्त्र हमें सुख देनेवाला हो ॥ ५१ ॥

ये कन्यायें उपवर होनेके कारण पतिकी कामना करती हैं और पतिके पास पहुंचती हैं। अर्थात गृहस्थधर्मकी दीक्षाएं स्वीकारती हैं ॥ ५२ ॥

यह गृहस्थाश्रमकी दीक्षा बृहस्पतिने शुरू की है। जो बल, तेज,

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरुवसुर्निष्कर्ता विहुतं पुनः ॥ ४७ ॥

अपास्मत् तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्य१स्मिन् तां स्थाणावध्या सजामि ॥ ४८ ॥
यावतीः कृत्याः उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ॥ ४९ ॥

अर्थ-(यः ऋते अभिश्रिषः) जो चिपकनेके विना तथा (चित् जत्रुभ्यः आतृदः) गर्दनकी हड्डीमें सुराख करनेके विना (संधिं संधाता) जोड-को जोडनेवाला और (विहुतं पुनः निष्कर्ता) फटे हुएको पुनः ठीक करने-वाला ऐसा (पुरुवसुः मघवा) उत्तम पर्याप्त धन देनेवाला धनवान् ईश्वर है ॥ ४७ ॥ (ऋ० ८।१।१२)

(यत् नीलं पिशंगं उत लोहितं तमः) जो नीला, पीला अथवा लाल रंगका मलीनपन है, वह (अस्मत् अप उच्छतु) हम सबसे दूर होवे। (या निर्दहनी पृषातकी अस्मिन्) जो जलानेवाली दोषस्थिति इसमें है, (तां स्थाणौ अधि आ सजामि) उसको इस स्तंभमें लगा देता हूं ॥ ४८ ॥

(यावतीः कृत्याः उपवासने) जो हिंसाकृत्य उपवस्त्रमें हैं, (यावन्तः राज्ञः वरुणस्य पाशाः) जितने राजा वरुणके पाश हैं, (याः व्यृद्धयः याः असमृद्धयः) जो दरिद्रताएं और दुरवस्थाएं हैं, (ताः अस्मिन् स्थाणौ अधिसादयामि) उन सबको मैं इस स्तभमें स्थापन करता हूं ॥ ४९ ॥

भावार्थ- सूर्य, अन्य देव, मित्र वरुण आदि सबको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ४६ ॥ जो ईश्वर मानवी शरीरमें दो हड्डीयोंको विना चिपकाये और विना सुराख किये जोडता है, वही सबको जोडनेवाला है। वह सब टूटे हुएकी मरम्मत करता है ॥ ४७ ॥

जो सब प्रकारका हमारा अज्ञान है वह हम सबसे पूर्णतासे दूर हो जावे। जो हृदयको जलानेवाली दोषस्थिति है,वह हम सबसे दूर हो ॥ ४८ ॥

जो कुछ हिंसा और घातपातके कृत्य हैं, जो दरिद्रताएं और दुष्ट स्थितिएं हैं, वे सबके सब हमसे दूर हों ॥ ४९ ॥

यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६१॥
यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६२ ॥
इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥
इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ६४ ॥

रो रोकर पाप करती रहीं० ॥ (यत् जामयः यत् युवतयः) जो बहिनें और स्त्रियें तेरे घरमें रोती रहीं और रोकर पाप करती रहीं० ॥ (यत् ते प्रजायां पशुषु यत् वा गृहेषु निष्ठितं) जो तेरी प्रजामें, पशुओंमें और जो तेरे घरमें (अघवद्भिः अघं कृतं) पापियोंने पाप किया है, (अग्निः सविता च) अग्नि और सविता (तस्मात् एनसः त्वा प्रमुञ्चतां) उस पापसे तुझे बचावें ॥ ५९-६२ ॥

(इयं नारी पूल्यानि आवपन्तिका) यह स्त्री पूले हुए धान्यकी आहुती देती हुई (उपब्रूते) कहती है कि (मे पतिः दीर्घायुः अस्तु) मेरा पति दीर्घायु होवे, वह (शरदः शतं जीवाति) सौ वर्ष जीवित रहे ॥ ६३ ॥

हे इन्द्र ! (चक्रवाका इव) चक्रवाक पक्षीके जोडेके समान (इमौ दम्पती इह सं नुद) यह पतिपत्नी इस संसारमें प्रेरित कर । (एनौ सु-अस्तकौ प्रजया) ये दोनों उत्तम घरवाले होकर संतानके साथ (विश्वं आयुः व्यश्नुतां) सब आयुका उपभोग लें ॥ ६४ ॥

जो बालोंवाले लोग, जो कुमारिकाएं, जो स्त्रियां रोते पीटते पाप करतीं हैं, जो बाल खोलकर चिल्लाती हैं, इस प्रकारका जो पाप घरों, संतानों और पशुओंके संबंधमें हो रहा है, वह सब पाप दूर होवे ॥ ५९-६२ ॥

यह नारी धानका हवन करती हुई ईश्वरकी प्रार्थना करती है कि अपना पति दीर्घायु बनकर सौ वर्ष जीवित रहे ॥ ६३ ॥

हे प्रभो ! पतिपत्नी मिलकर सदा एक विचारसे रहें । चक्रवाकपक्षीके

वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५४ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५५ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५६ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५७ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥
यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषु रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥
यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६० ॥ [१२]

देवाः अधारयन्) सब देवोंने धारण किया है। (यत् वर्चः गोषु प्रविष्टं) जो बल गौवोंमें प्रविष्ट हुआ है, (तेन इमां संसृजामसि) उससे इसको संयुक्त करते हैं ॥ ५३ ॥

बृहस्पतिने रची हुई इस दीक्षाको सब देवोंने धारण किया है। जो (तेज .... भगः ... यशः .... पयः रसः) तेज, भाग्य, यश, दूध और रस गौवोंमें प्रविष्ट हैं, उनसे इसको संयुक्त करते हैं ॥ ५४-५८ ॥

(यदि इमे केशिनो जनाः) यदि ये बड़े बालवाले लोग (ते गृहे सम-नर्तिषुः) तेरे घरमें नाचते रहे और (रोदेन अघं कृण्वन्तः) रोनेसे पाप करते रहे० ॥ (यदि इयं दुहिता) यदि यह दुही [illegible] ([illegible]) बालोंको खोलकर [illegible] और [illegible]

भाग्य, यश, दूध और रस गौओंमें हैं, [illegible] वालोंको प्राप्त हों ॥ ५३—५[illegible]

कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्या केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥ ६८ ॥
अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्व१न्तरिक्षम् ॥
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितॄंश्च सर्वान् ॥ ६९ ॥
सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥७०॥ [१३]

अर्थ-(यः एषः शतदन् कृत्रिमः कंटकः)जो यह सैंकडों दांतवाला कृत्रिम कंगवा है वह (अस्याः शीर्षण्यं मलं अप अप लिखात्) इसके मस्तकके मलको दूर करे ॥ ६८ ॥

(वयं अस्याः अंगात् अंगात् यक्ष्मं) हम इसके प्रत्येक अंगसे रोगको (अप निदध्मसि) दूर करते हैं। (तत पृथिवीं मा प्रापत्) वह रोग पृ-थ्वीको न प्राप्त हो, (उत देवान् मा) और देवोंको न प्राप्त हो, (दिवं उरु अन्तरिक्षं मा प्रापत) द्युलोक और अन्तरिक्ष लोकको भी न प्राप्त हो। हे अग्ने ! (एतत् मलं अपः मा प्रापत्) यह मल जलको प्राप्त न हो, (यमं सर्वान् पितॄन् च मा प्रापत्) यमको और सब पितरोंको न प्राप्त हो ॥६९॥

(त्वा पृथिव्याः पयसा संनह्यामि) तुझे पृथ्वीके पोषक पदार्थसे मैं युक्त करता हूं। (त्वा ओषधीनां पयसा संनह्यामि) तुझे औषधियोंके पौष्टिक सत्त्वसे युक्त करता हूं। (त्वा प्रजया धनेन संनह्यामि) तुझे प्रजा और धनसे युक्त करता हूं। (सा संनद्धा इमं वाजं सनुहि) वह तू स्त्री उक्त गुणोंसे युक्त होकर इस बलको प्राप्त कर ॥ ७० ॥ (१३)

भावार्थ-कंगवा लेकर स्त्रीके मस्तकका मल दूर किया जावे और वहांकी स्वच्छता की जावे ॥ ६८ ॥

इसी प्रकार स्त्रीके शरीरका प्रत्येक भाग स्वच्छ किया जावे, परंतु यह मल पृथ्वी, अंतरिक्ष, आकाश, जल, वनस्पति आदिके पास न जावे कहां ऐसे स्थानपर मल गाड दिया जावे कि जो फिर किसीको कष्ट न दे सके ॥ ६९ ॥

स्त्रीको पृथ्वी और औषधीयोंके पौष्टिक रससे पुष्ट किया जावे। उसको

यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥ ६५ ॥
यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।
तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥ ६६ ॥
संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६७ ॥

अर्थ-(यत् आसंद्यां) जो बैठकपर, खुर्सीपर, (यत् उपधाने) जो बिस्तरेपर, सिरोनेपर, (यत् वा उपवासने कृतं) जो उपवस्त्रपर किया था, तथा (विवाहे यां कृत्यां चक्रुः) विवाहमें जिस हिंसक प्रयोगको किया था, (तां आस्नाने नि दध्मसि) उसको हम स्नानसे धो डालते हैं ॥ ६५ ॥

(यत् विवाहे यत् च वहतौ) जो विवाहमें और जो वरातके रथमें (दुष्कृतं यत् शमलं) जो दुष्ट कृत्य और मलीन कर्म किया (तत् दुरितं संभलस्य कम्बले मृज्महे) वह पाप हम संभल के कंबल में धो देते हैं ॥ ६६ ॥

(संभले मलं सादयित्वा) संभल में मल डालकर, और (दुरितं कंबले) पापको कंबलमें रखकर, (वयं यज्ञियाः शुद्धाः अभूम) हम यज्ञ करनेयोग्य शुद्ध हों । वह (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारी आयुओंको दीर्घ बनावे ॥ ६७ ॥

जोडेके समान आनंदसे रहे। उत्तम घरदार कर और उत्तम संतान निर्माण करके संपूर्ण आयु आनंदसे व्यतीत करे ॥ ६४ ॥

बैठक, सिरोना, बिस्तरा, वस्त्र, तथा विवाहके दिवसमें जो कुछ पाप या घातक दोष होते हैं, वे सबके सब स्नानशुद्धिसे दूर किये जावें ॥ ६५ ॥

विवाहमें और वरात में जो कुछ पाप या दोष होता है, वह [illegible] विचारके साथ दूर किया जावे ॥ ६६ ॥

अपने मल और दोष दूर कर हम सब शुद्ध पवित्र और [illegible] तथा दीर्घायु बनें ॥ ६७ ॥

येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥ ७४ ॥
प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ ७५ ॥[१४]

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

॥ चतुर्दशं काण्डं समाप्तम् ॥

अर्थ-(या रशनायमाना पूर्वा इदं आअगन्) जो रशनाके समान सुसंबंध युक्त पहिली स्त्री इस स्थानपर प्राप्त हुई, वह (अस्यै प्रजां द्रविणं च इह दत्त्वा) इसके लिये संतान और धन यहां देकर (तां अगतस्य पंथां अनु वहन्तु) उसको भविष्यकालके मार्गसे सुरक्षित ले जावें। (इयं विराट् सुप्रजा अति अजैषीत्) यह वधु तेजस्विनी और उत्तम प्रजावाली होकर विजयी होवे ॥ ७४ ॥

(सुबुधा बुध्यमाना) उत्तम ज्ञानयुक्त जागती रहकर (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय प्रबुध्यस्व) सौ वर्षके दीर्घजीवनके लिये जागती रह। (गृहान् गच्छ) अपने पतिके घरको जा, (यथा गृहपत्नी असः) गृहस्वामिनी जैसी बनकर रह। (सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु) सविता तेरी आयु दीर्घ बनावे ॥ ७५ ॥

भावार्थ-जैसी डोरीमें अनेक धागे मिलकर रहते हैं,वैसेहि गृहस्थाश्रम मिलकर रहनेका आश्रम है। गृहस्थाश्रममें इकट्ठे हुए सब लोग स्त्रीको धन और सुसंतान प्राप्त होनेका शुभाशीर्वाद देकर, उसको शुभ मार्गसे चलावें;इस तरह यह स्त्री तेजस्विनी यशस्विनी तथा सुसंतान युक्त होकर विजयी होवे ॥ ७४ ॥

स्त्री विदुषी होवे, सवेरे प्रातःकाल उठे, सौ वर्षकी दीर्घ आयुके लिये ज्ञानप्राप्तिपूर्वक प्रयत्न करे। अपने पतिके घरमें रहे। अपने घरकी स्वामिनी बनकर विराजे। परमात्मा इसको दीर्घायु करे ॥ ७५ ॥

द्वितीय अनुवाक समाप्त।

चतुर्दश काण्ड समाप्त।

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥ ७१ ॥
जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।
अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ ७२ ॥
ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् ।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥ ७३ ॥

अर्थ-(अहं अमः अस्मि) मैं प्राण हूं और (सा त्वं) शक्ति तू है। (साम अहं ऋक् त्वं) साम मैं हूं और ऋचा तू है, (द्यौः अहं पृथिवी त्वं) द्युलोक मैं हूं और पृथ्वी तू है। (तौ इह संभवाव) वे हम दोनों इकट्ठे हों और (प्रजां आ जनयावहै) संतान उत्पन्न करें ॥ ७१ ॥

(अग्रवः नौ जीवयन्ति) अविवाहित लोग हम जैसेहि विवाहकी इच्छा करते हैं। (सुदानवः पुत्रियन्ति) दाता लोग पुत्रकी कामना करते हैं। (अरिष्टासू बृहते वाजसातये सचेवहि) प्राण रहनेतक हम दोनों बडे बलप्राप्तिके लिये साथ साथ मिलकर रहें ॥ ७२ ॥ (ऋ. ७।९६।१४)

(ये वधूदर्शाः पितरः) जो वधूको देखनेकी इच्छा करनेवाले बडे लोग (इमं वहतुं आगमन्) इस वरातको देखने आगये हैं, (ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै) वे इस वधू अर्थात् उत्तम पत्नीके लिये (प्रजावत् शर्म यच्छन्तु) प्रजायुक्त सुख प्रदान करें ॥ ७३ ॥

धन दिया जावे और उत्तम संतान उत्पन्न हो। स्त्री बलशालिनी होकर घरमें विराजे ॥ ७० ॥

पुरुष प्राण है और स्त्री रयी है, पुरुष सामगान है और स्त्री मंत्र है। पुरुष सूर्य है और स्त्री पृथ्वी है। ये दोनों मिलकर इस संसारमें रहें और उत्तम संतान उत्पन्न करें ॥ ७१ ॥

अविवाहित स्त्री पुरुष अपने सहधर्माचरणके लिये योग्य पुरुष और योग्य स्त्री की अपेक्षा करते हैं। जो उदार दाता होते हैं उनको ही उत्तम संतान होते हैं। ये मनुष्य धन कर उत्तम धनकी प्राप्तिका यत्न करें ७२॥

नव वधुको देखनेके लिये वरातके समय अनेक स्त्री पुरुष जमा होते हैं। वे सब नववधुको सुसंतान होनेका शुभ आशीर्वाद देवें ॥ ७३ ॥

सब धर्मनियमोंका यही सार है। ऋत और सत्यको छोडकर कोई धर्म स्थानपर रह नहीं सकता।

सोम

द्वितीय मंत्रमें 'सोम' का महात्म्य वर्णन किया है। यह सोम स्वर्गमें है, पृथ्वीपर है और नक्षत्रोंमें भी है। पाठक जान सकते हैं कि जो नक्षत्रोंमें सोम है वह चन्द्र ही है। यह सब नक्षत्रोंकी शोभा बढाता है, रात्रीके समय इसकी अवर्णनीय शोभा है। यह शान्तिका आदर्श है। मनुष्य इस शान्तिके आदर्शको सदा मनमें धारण करें और शान्त रहें। क्रोध अशांति आदि दुर्गुणोंको दूर रखें। यह आदर्श सोम द्वारा पतिके-लिये इस मंत्रमें दिया है।

पृथ्वीपर भी 'सोम' है, यहां सोमका अर्थ 'वनस्पति तथा अन्न' है। आकाशके सोमका यह पृथ्वीपर रहनेवाला प्रतिनिधि है। यह पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्यों और पशुपक्षियोंकी तृप्ति करता है। पाठक यहां पृथ्वीपरके सोमको और आकाशके सोमको यथावत् जानें। दोनोंका नाम सोम है, परंतु ये दोनों एक नहीं हैं। सोमके अनेक अर्थ हैं और सोम शब्द द्वारा अनेक पदार्थोंका बोध वेदमें होता है। अतः सर्वत्र सोम शब्दसे एक ही पदार्थका बोध मानना अयोग्य है।

आगे तृतीय मंत्रके पूर्वार्धमें सोमरसका पान करनेका वर्णन है। यह सोमपान यज्ञमें होता है इसको सब जानतेहि हैं। परंतु इसी मंत्रमें आगे उत्तरार्धमें विशेष अर्थसे सोम पानका उल्लेख है। वहां कहा है कि " जो सोमपान ब्रह्मज्ञानी पीते हैं, वह सोमपान कोई अन्य मनुष्य कर नहीं सकता।" यहांका सोमपान ब्रह्मानंदका पान है। जो ब्रह्मज्ञानीहि कर सकता है। यह भी सोम है। यही परमात्माका अखंड आनंदका रस है। परमात्माको एकरस कहतेही हैं। यही अन्तिम और अतिश्रेष्ठ सोमपान है। धर्म मनुष्यको इसी सोमपानके लिये योग्य बनाता है। साधारण मनुष्य इस सोमपानको कर नहीं सकता, क्योंकि विशेष उच्च अवस्था प्राप्त होनेपर ही यह सोमपान होना संभव है।

पाठक यहां देखें कि परमात्माके अखंडानन्दरस रूप सोमके विचारके साथ साथ वनस्पतिके सोम तकको अनेक सोमविषयक कल्पनाऐं वेदने यहां बतायीं हैं। इनके बीच सब प्रकारके सोम आचुके हैं। इस प्रकार यह सोमपानका महात्म्य है। इसका वर्णन यहां करनेका उद्देश यह है कि गृहस्थी लोग अपने घरमें सोमपान करें। सर्व-

विवाह की वैदिक कल्पना।

प्रथमसूक्त।

अथर्ववेदके इन चतुर्दश काण्डमें विवाहकी वैदिक कल्पना और वैदिक विवाह पद्धति दर्शायी है। जो पाठक अपनी विवाह पद्धतिका विचार करना चाहते हैं वे इन दो सूक्तोंका विशेष मनन करें। प्रथम सूक्तके प्रारंभमें पांच मंत्र केवल सामान्य उपदेश देनेवाले हैं। इनमें सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथ्वी, और सोम आदिका वर्णन है, परंतु इन मंत्रोंमें इन देवताओंका वर्णन करते हुए विवाहका तथा पतिपत्नीका आदर्श बताया है, देखिये—

द्यौः और भूमि।

प्रथममंत्रमें भूमि पत्नीके स्थानपर और सूर्य अथवा द्युलोक पतिके स्थानपर वर्णन किये गये हैं। मानो सबकी माता पृथ्वी है और सबका पिता सूर्य है। यह सब संसार मानो पृथ्वी और सूर्य इन मातापिताओंका संतानरूप है। एकही परिवारके हम सब हैं। जितने भी संसारके मनुष्य या पशुपक्षी हैं, ये सब एकही परिवारके हैं। संपूर्ण मनुष्योंमे तो भाईभाईका नाता है। पतिका आदर्श सूर्य है या द्युलोक है। द्युलोक वह है जो खगोल है, सदा प्रकाशित है। वह सबको प्रकाश देता है। इसी प्रकार पति अपने परिवारको उत्तम ज्ञानका प्रकाश देवे और सब संतानोंको ज्ञानवान करे। इसी तरह भूमि सबको आधार देती है, फल और अन्न देकर सबकी तृप्ती करती है। इसी तरह माता सब संतानको अपने प्रेमका आधार देवे और सबको खानपान द्वारा योग्य रीतिसे पुष्ट रखे। इस तरह विचार करनेपर तथा द्यावाभूमिके आदर्शका मनन करनेसे स्त्री पुरुषके अथवा पतिपत्नीके आदर्श उपदेश इस मंत्रमें स्पष्ट रीतिसे ज्ञात हो सकते हैं।

गृहस्थधर्म का आधार सत्य है, यह बात इस सूक्तका प्रारंभही 'सत्य' शब्द द्वारा करके बतायी है। स्त्रीपुरुषका व्यवहार सत्यकी मर्यादासेही होवे, उसमें असत्य, कपट, छल आदि कभी न आवें। इसीसे आदर्श गृहस्थधर्म हो सकता है। दूसरा बल 'ऋत' है। ऋतका अर्थ सरलता है। सत्य और ऋत ये दोही उन्नतिके नियम हैं।

था। न कोई विरोध करनेवाला था। सब आनन्द प्रसन्न थे और सभी वधूवरका हित एकचित्तसे चाहते थे।

(भद्रं वासः) इस समय सूर्याका वस्त्र उत्तम था, बहुत ही सुंदर वस्त्र था। ऐसे सुंदर वस्त्रोंसे युक्त होकर सब स्त्रियें वधूके साथ रहीं थीं।

इस वरातमें आगे उत्तम गायक थे, वे सुंदर छंदोंमें और मधुर स्वरमें मंगल पद्य गाते हुए आगे चल रहे थे। सबसे आगे दो वैद्य चल रहे थे, उनके साथ अग्नि मार्ग दर्शक था। इसके प्रकाशमें यह वरात चल रही थी।

जिस रथमें यह वधू बैठी थी, उस रथपर सुंदर छत था, मंदीर जैसा उसका शिखर था, अंदरसे सुंदर आकाशके समान दिखाई देता (द्यौः छदिः। मं० १०) था। दो श्वेत बैल (शुक्रौ अनड्वाहौ) इस रथको जोते थे। यह वरात सोमके घर चल रही थीं। क्यों कि सोमही इस सूर्याका पति था। सोमनेहि इस सूर्याकी मंगनी की थी और सोमके साथ इस सूर्याका विवाह हुआ था।

जब सोमने मंगनी की थी, उस समय वहां दोनों अश्विनीकुमार देवोंके वैद्य थे। अर्थात् वैद्योंके सामने यह मंगनी हुई थी। इस मंगनीका स्वीकार सूर्याके पिताने किया था।

सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादात्॥ मं० ९

“ सविताने मनसे पतिके विषयमें पूज्यभाव रखनेवाली अपनी सूर्याका दान पतिके हाथमें किया था।” इसमें सविता अपनी पुत्रीको पतिके हाथमें दान करता है ऐसा वर्णन है। यह ब्राह्म विवाहका आदर्श वेदने वैदिक धर्मियोंके सन्मुख रखा है। इसमें वधुका पिता अपनी कन्याका दान करता है और इस दानविधिसे कन्या वरको प्राप्त होती है। यहां गांधर्व विवाहका आदर्श वेदने वैदिकधर्मियोंके सामने रखा नहीं है। वर अपने लिये वधुकी मांगनी करता है, वधुका पिता उस मंगनीका स्वीकार करता है, और सुमुहूर्तपर अपनी पुत्रीका दान करता है। इससे स्पष्ट है कि कन्यापर अधिकार पहिले पिताका होता है और इस कन्यादान विधिसे कन्यादानके पश्चात् पतिका अधिकार होता है। वैदिक धर्मकी दृष्टीसे स्त्री स्वतंत्र अर्थात् स्वेच्छाचारी न रहे। या तो वह पिताके अधिकारमें रहे अथवा पतिके आधीन रहे। इन दोनोंकी अनुपस्थितीमें वह ज्येष्ठ पुत्र, भाई या अन्य श्रेष्ठ पुरुषकी आज्ञामें रहे। परंतु स्वतंत्र न रहे। (अदात्) दान जो होता है वह स्वतंत्रका नहीं हुआ करता, जो स्वतंत्र नहीं होता उसीका दान होना संभव है। पुरुषका दान कभी नहीं होता, क्यों कि वह स्वतंत्र है। कन्याकाही

साधारणतया सोमपानका अर्थ है औषधिरसका सेवन करना। यह सब गृहस्थी करें। गृहस्थियोंका यह अन्न है। वनस्पति, धान्य, फल, साक आदिका सेवन गृहस्थियोंके परिवारोंमें होता रहे। मांस, रक्त, अण्डे आदिका सेवन निषिद्ध है। पृथ्वी माता जिस सोमरससे सबकी पुष्टी कर रही है, वह यही वानस्पत्य सोम है। यहां गृहस्थ-धर्ममें रहनेवालोंका सर्व धारण वानस्पत्यान्न होना चाहिये यह बात कही है।

इसके पश्चात् ऋषि मुनि साधु संत आदि अपनी अध्यात्मिक उन्नति करते हुए परमात्माके आनंदका रसपान करते हैं। यह भी सोमपान ही है। इसकी योग्यता सर्वसाधारण गृहस्थियोंके पास नहीं होती। गृहस्थाश्रमका धर्म इस योग्यताको मनुष्यमें उत्पन्न करता है। अर्थात् गृहस्थाश्रमके धर्मका योग्य रीतिसे पालन करनेपर वानप्रस्थाश्रमधर्मके पालनपूर्वक संन्यासाश्रममें मनुष्यके अन्दर यह योग्यता प्राप्त हो सकती है। गृहस्थाश्रमसे आगे चलकर साध्य होनेवाली यह बात है। यह सूचित करनेके लिये और गृहस्थियोंपर की जिम्मेवारी बतानेके उद्देश्यसे ये सब प्रकारके सोमपान यहां इन मंत्रोंमें बताये हैं।

वरातका रथ।

आगे मंत्र ६ से १२ तक वरातके रथका वर्णन है। यह सब आलंकारिक वर्णन है। यह तो मनकाही काल्पनिक (अनो मनस्मयं। मं० १२: तथा 'मनो अस्या अन आसीत्। मं० १०) रथ है। तथापि यह काल्पनिक रथका वर्णन इसलिये दिया है कि मनुष्य विवाहके समय ऐसे उत्तम रथ बनावें और वरात निकालें और वधुको पतिके घर बडे थाटसे ले आवें। इस वरातका रथ कैसा हो इस विषयमें इन मंत्रोंका वर्णन देखने योग्य है।

वरातके रथका नमूना पाठक यहां देखें। जब (सूर्या पतिं अयात्) सूर्यकी पुत्री अपने पतिके घर चली, तब इस प्रकारके सुंदर रथपर वह बैठकर चली थी। यही नमूना सब पुत्रियोंके वरातके समय रखा जावे। इस समय (उपवर्हणं। मं० ६) उत्तम तकिया रथमें था. स्त्रियोंने अपने आंखोंमें (आञ्जनं) कज्जल लगाया था. पर्याप्त (कोशः) धन साथ लिया था। वह आभूषण हो या सुवर्णरूपमें धन हो। परंतु वह इस रथमें चाहिये। जब रथ चलने लगा तब सब लोगोंने (अनुदेयी। मं० ७) अनुकूल आशीर्वाद दिये. सब लोगोंने वधूकी प्रशंसा (नाराशंसी) की। इस तरह सब वायुमंडल अनुकूल बन गया था। इन मंत्रोंमें एक भी मनुष्य इसके प्रतिकूल न

होवे और तत्पश्चात् वधू अपने पतिके घर चली जावे । चन्द्रमा मघा नक्षत्रमें होनेके समय दहेज भेज दिया, तो चन्द्रमा फल्गुनी नक्षत्रमें जानेके समय विवाह हो। प्रायः यह कमसे कम पंद्रह दिनका समय है, अधिकसे अधिक पंद्रहके बातमें जितना आ-सकता है उतना मान सकते हैं । दामादके घर गौवें पहुंचनेके पश्चात् उन गौवोंको वहांका प्रेम लगनेके पश्चात् विवाह हो, यह तात्पर्य है । जब यह वधू अपने पतिके घर चली जायगी, तब उसको अपनीहि परिचित गौवें मिलेंगी । और गौवोंकोभी अपने परिचयकी स्वामिनी मिलनेगे, परस्परका प्रेम परस्पर होनेके लिये सुभीता होगा । इस तरह यह कन्यादानके पूर्व गौओंका दान वैदिक विवाहमें एक मुख्य बात है ।

मंत्र १४ और १५ में कहा है कि वधूपक्षके दो मनुष्य (अश्विनौ) घोडोंपर सवार होकर वरपक्षके पास पहुंचते हैं । वरके पास उस दहेजको समर्पण करते हैं । इस तरह इस परस्पर-संमेलनको सब पारिवारिक लोग संमति और अनुमति देते हैं । ऐसे ढंगसे यह विवाह होता है और सब जातिकी संमति उसको रहती है । मंगनीके समय, विवाहके समय और बरात के समय सब पारिवारिक जन, सब जातिके सज्जन उपस्थित होते हैं । यह बात 'देवाः' पदसे सिद्ध होती है । सूर्यदेव और सोमदेवके पारिवारिक जन तथा जातिके सज्जन (देवाः) देव हैं । इसी तरह मनुष्योंमें विवाह होनेके समय वधू और वर पक्षके पारिवारिक तथा जातिके लोग संमिलित होने चाहिये, यह बात उसी वर्णनसे स्वयं सिद्ध होती है । क्यों कि वैदिक विवाह सूर्यने जैसा अपनी पुत्री सूर्याका सोमके साथ किया, वैसाहि मानवोंने अपनी पुत्रियोंका करना है । वस्तुतः सूर्यने जो अपनी पुत्री सूर्याका विवाह किया वह एक आलंकारिक बात है । वह वर्णन इसलिये वेदमें किया है कि इसको देखकर लोग अपने विवाह इस विधिके अनुसार करें । वेदका यह रूपक सूर्यका किरण चन्द्रमाको प्रकाशित करता है, इस मूल बात-को लेकर रचा गया है । और विवाहके आवश्यक सिद्धांत इस आलंकारिक वर्णनमें उत्तम रीतिसे संग्रहित किये गये हैं ।

पुराना और नया संबंध ।

मंत्र १७ और १८ में वधूका संबंध पितृकुलसे कैसा छूटता है और पतिकुलसे कैसा बनता है, इसका उत्तम वर्णन है-

इतः बंधनात् प्रमुंचामि, न अमुतः । (मं० १७)

दान यहां लिखा है।

> सूर्या सविता पत्ये अदात्। (अथर्व १४।१।९)
>
> मह्यं त्वाऽदुर्गार्हपत्याय देवाः। ऋ० १०।८५।३६; अथर्व०१४।१।५०

इन दोनो स्थानोपर अर्थात् ऋग्वेदमे और अथर्ववेदमें (अदात्, अदुः) कन्यादान हि लिखा है। अतः जो लोग समझते है कि वैदिक कालमे स्त्रियां स्वतंत्र थीं, यह उनकी भूल है।

न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।

यह स्मृतियोंका कथन वेदके संमत ही है, ऐसा यहां प्रतीत होता है। जो लोग इस स्मृतिवचन का उपहास करते है, वे इस वेदवचनका अधिक मनन करें। स्त्रियां स्वतंत्र न रहें, बालपनमे मातापिताकी शिक्षामें रहे, विवाहित होनेपर पतिसे शिक्षा प्राप्त करें। वर कन्याकी मंगनी वधुके पिताके पास करे और पिता (मनसा अदात्) अपने मनसे ,संमति दे। तब विवाह हो। कन्या स्वयं पिताकी अनुमतिके विना अपना स्वयंवर न करे, स्वयंवर करना भी हो, तो उसके लिये भी पिताकी संमति हो। वेदमें स्वयंवरके मंत्र किसी स्थानपर अबतक देखनेमें नहीं आये है। इससे प्रतीत होता है कि स्वयंवर की प्रथा पीछेसे चल पडी है। अस्तु।

इस तरह कन्यादानपूर्वक विवाह होनेके पश्चात् वधू अपने पतिके घर चली जाती है। उस समय सुंदर रथ सिद्ध किया जावे। उसमें गादियां और तकिये हों, रथ सुंदर सजाया जावे। उत्तम बैल उसको जोते जांय। कोई घोडे जोतें, उसके लिये प्रतिबंध नहीं है। रथके चक्र भी (शुची) सुंदर, स्वच्छ और सजावटसे युक्त हों। इस तरह सब प्रकारसे सुंदर और सजावटसे मनोरम बनाये सुखकारी रथपर आरूढ होकर वधू आपने पतिके घर चली जावे।

दहेज।

विवाह होनेके पूर्व वधूका पिता अपने दामादके लिये अपने सामर्थ्यके अनुसार (वहतुः) दहेज भेज देवे। मंत्र १३ में (गावः) गौवें दहेजके रूपमें भेजनेका उल्लेख है। गौवें हि बडा धन है। अन्य धन इनसे कम योग्यताका है। गौओंसे दूधसे घरके सब आबालवृद्धोंकी पुष्टि होती है, इसी लिये वधूका पिता अपनी कन्याके लिये उत्तम उत्तम गौवें देवे और वे गौवें विवाहके पूर्व पतिके घर पहुंचें। पश्चात् विवाह

यह कन्या बाल्यमें पितृकुलसे पाशोंके साथ बांधी थी, वरुण देवके पाशोंसे बांधी थी, और वरुणके पाश ऐसे होते हैं कि वे तोडनेका सामर्थ्य किसीके अन्दर नहीं होता है। ये वरुणके पाश विवाहविधिसे टूट जाते हैं, परंतु वही वधू पतिकुलसे ऐसी बांधी जाती है कि वहांसे आमरण वह अपना संबंध छोड नहीं सकती। इस पतिकुलमें रहती हुई यह—

ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ॥ (मं० १९)

"सत्यके घरमें और पुण्यवानोंके स्थानमें जो सुख प्राप्त हो सकता है, वह इसको पतिके घर प्राप्त हो।" अर्थात् यह पतिके घरमें रहती हुई सत्य मार्गसे चले और पुण्य कर्म करती हुई सुखको प्राप्त हो। यह स्त्रीका धर्म है। पति रहनेतक या पतिके मरनेके पश्चात् भी स्त्रीका यही धर्म है, इस धर्मसे वह पतित न हो, और इस धर्मका आचरण करती हुई सुखको प्राप्त करे। स्त्रीका स्वतंत्राचार या स्वेच्छाचार सर्वदा गर्हित है। न स्त्री पितृघरमें स्वतंत्र है, न पतिके घरमें स्वतंत्र है और न पतिके मरनेके पश्चात् वह स्वतंत्र हो सकती है।

इस प्रकार बालकपनमें तो सविता देवने वरुणके पाशसे उसे पितृकुलसे बांध रखा था (मं० १९), विवाह होनेके समय ये पाश तो टूट गये, परंतु भगदेवताने उसका [illegible] रथतक चलाया, पश्चात् जब वह पतिके घर जानेके लिये रथमें बैठी तब अश्विनी देव उसके रक्षक बने (मं० २०), जब तक यह वधू पतिके घर नहीं पहुंचती तब तक अश्विनी देवोंकी रक्षामें वह रहती है। पश्चात्—

गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं ॥ (मं० २०)

पतिके घर जब वह वधू पहुंचती है और वहां वशिनी होकर रहती है। स्वयं अपने इंद्रिय [illegible] रखती है, घरके परिवारको वशमें रखती है और स्वयं बडे लोगोंकी [illegible] रहती है। इस तरह वह पतिके घर पहुंचनेके पश्चात् वर्ताव करती है। तत्पश्चात् [illegible] पाशोंसे बंधी रहती है। स्वतंत्र नहीं होती। इसके ऊपर या तो [illegible] निगरानी करते हैं देवताओंकी निग्रहणी रहती है, और पश्चात् पतिकी [illegible] है। कुछ भी हो, तो स्त्रीको वैसी स्वतंत्रता नहीं रही है, जैसी कि [illegible] और [illegible] इस समय स्त्रियोंको स्वतंत्रता प्राप्त [illegible] जितनी स्वतंत्रता हो सकती है, उतनी तो प्राप्त है। [illegible] विकास के लिये जितनी आवश्यक है, उतनी [illegible]

इतः प्रमुंचामि न अमुतः, अमुतः सुबद्धां करम् । (मं०१८)

इन मंत्रोंमें स्पष्ट कहा है कि "इस पुत्रीको हम पितृकुलसे छुडाते हैं, और पतिकुलके साथ ऐसा सुसंबद्ध करते हैं कि यह पतिकुलसे कभी न छूट जावे।" कन्याका पितृकुलसे छूटना तो आवश्यक ही है, परंतु प्रश्न यहां यह उत्पन्न होता है कि यह कन्या पतिकुलसे किसी न किसी प्रकार छूट सकती है, या नहीं ? इस प्रश्नके उत्तरमें वेदका यह कथन है कि कन्या पतिकुलसे अपना संबंध नहीं छोड सकती। किसीभी अवस्थामें उसका संबंध पतिकुलसे छूटना वैदिक धर्मकी दृष्टिसे असंभव है। उक्त मंत्रोंमें सुस्पष्ट रीतिसे कहा है कि (न अमुतः, अमुतः सुबद्धां करं) नहीं, पतिकुलसे तो उसको उत्तम पक्की रीतिसे बांधता हूं। इस सुबद्ध करनेका तात्पर्य यह है कि वह पतिकुलसे कभी विमुक्त न होवे। नियोग की रीतिमें नियुक्त पुरुषके साथ संबंध होनेसे भी पतिकुलका संबंध सुदृढ रहता है और संतान तो पूर्व पतिकीहि होती है। परंतु पुनर्विवाह तो सर्वथा असंभव है, क्यों कि पुनर्विवाहसे तो पतिकुलका संबंध छूट जाता है। इस कारण वैदिक धर्ममें स्त्रीका पुनर्विवाह संभव नहीं है। वैदिकधर्मी द्विजातियोंमें तो सर्वथा पुनर्विवाह असंभव है।

आजकलका पतित्याग (डायव्होर्स) या पत्नीत्याग तो नितांत अवैदिक है। आजकल युरोप अमरिका का अनुकरण करनेवाले कई थोडे भारतीय लोग विवाहित संबंध अदालतसे तोडनेके पक्षपाती दीखते है। परंतु यह रीति वैदिक धर्मके अनुकूल नहीं है। स्वयंवर की प्रथामें भी पतिपरित्याग या पत्नीपरित्याग संमत नहीं है, फिर ब्राह्म विवाहके अनुसार तो कैसे संभव हो सकता है ? पूर्वोक्त मंत्रमें उपमा दी है कि जैसा कोई फल (उर्वारुकं बंधनात्) अपने वृक्षसे या बेलसे परिपक्व होनेपर बंधनसे छूटता है, वैसी यह कन्या पितृकुलके संबंधसे विवाहके समय मुक्त हो गयी है। इसका संबंध पतिकुलसे हुआ है और वह संबंध सुबद्ध अर्थात् दृढतर हो चुका है, वहांसे मुक्तता नहीं हो सकती। यहां पाठक वैदिक विवाह की कल्पना ठीक प्रकार मनमें धारण करें। यह स्थिर संबंध है, युरोप अमरिका के समान क्षणभंगुर नहीं है।

आगे १९ वे मंत्रमें कहा है कि यह कन्या वरुणके पाशसे पितृकुलसे सुसंबद्ध हुई थी। विवाहके समय वह पाश तोड दिये गये है। वरुणके पाश किसी अन्य कारणसे टूट नहीं सकते। पितृकुलसे संबंध तोडकर पतिके कुलसे नया संबंध जोड दिया है। यह संबंध जो पतिके कुलसे हो गया है वह (सह-सं-भलायै) साथ साथ संभाल होनेके लिये है। पतिके कुलके परिवारके साथ इस स्त्रीका संभाल होता रहे। अर्थात्

" इस ढंगसे गृहस्थाश्रममें रहते हुए जब तारुण्य चला जाय, और वृद्ध अवस्था प्राप्त हो, अर्थात् बहुत अनुभव आजाय, तब तू अपने अनुभवके सिद्धान्त उपदेश-द्वारा दूसरोंको कहो। " इससे पूर्व नहीं। इसके पूर्वका समय ज्ञानग्रहण करनेका है, उपदेश देनेका नहीं। उपदेश देना अनुभवी वृद्धोंकाही कर्म होगा। इस संसारमें पर्याप्त अनुभव आनेपर हि मनुष्य उपदेश करे। इसके पूर्व जो उपदेश करते हैं, उससे लाभकी अपेक्षा हानि की अधिक संभावना हो सकती है। अनुभव जैसा जिसको अधिक होता है, वैसा उसका अधिकार उपदेश करनेमें अधिक होता है।

[५] इहैव स्तं, मा वियौष्टं, विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। [मं० २२]

" पतिपत्नी इस गृहस्थाश्रममें रहें, उनमें वियोग न हो, पूर्ण आयुकी समाप्तितक वे दोनों एक विचारसे रहें। " यह है विवाहित कुटुंबका आदर्श। नहीं तो विवाह होतेहि वैवाहिक संबंधका परित्याग करनेकी कुप्रथा जो अनार्य देशोंमें चली है, वह तो वैदिक विवाहमें सर्वथा नहीं है। वेद चाहता है कि जो विवाह एक समय हुआ वह जीवनके अन्ततक स्थिर रहे, उनमें किसी तरह विरोध न खडा हो, झगडे होकर उनका वैवाहिक संबंध न टूटे।

(६) स्वस्तकौ मोदमानौ पुत्रैः नप्तृभिः क्रीडन्तौ। (मं० २२)

" पतिपत्नी उत्तम घरवाले हों, आनंदप्रसन्न हों और पुत्रोंके साथ तथा नातियोंके साथ खेलते हुए सुखसे गृहस्थाश्रमका कर्तव्य करते रहें। " गृहस्थाश्रममें रहनेवाले दुःखी कष्टी, चिडचिडे न हों, मन आनन्दप्रसन्न रखकर सुखके साथ अपने कर्तव्य गृहस्थी लोग करते रहें।

(७) सूर्यचन्द्रके समान तेजस्वी पुत्र हों। (मं. २३)

" जैसे सूर्य और चन्द्र सब जगत्को प्रकाश देनेवाले है, वैसेहि गृहस्थीके घरमें उत्तम तेजस्वी संतान हों, वे विविध खेलोंमें (क्रीडन्तौ) प्रवीण हों, (मायया चरतः) कौशल्यके साथ जगत्में भ्रमण करें, अर्थात् कुशलताके कर्म करें, कलावान् हों और विश्वका भ्रमण करें। अपनी कलाका खूब विकास करें। उक्त उपमामें चंद्रमा कलायुक्त होता है, उसको कलानिधि कहते हैं, वैसा ही यह कलाओंका निधि बने। और कलाकुशलतासे अपनी तथा अपने राष्ट्रकी उन्नति सिद्ध करे। अपने संतानोंको कला-कारीगरीकी शिक्षा देनी चाहिये, यह बात यहां स्पष्ट हो जाती है।

सीखती हैं वैसी शिक्षापद्धति भी वैदिक समयमें नहीं थी । उस समय प्रत्येक कुमारी अपने मातापिता से आवश्यक शिक्षा पाती थी और पश्चात् पतिसे । स्वतंत्र रीतिसे कालेजोंमें रहना और कुमारोंमें मिलकर शिक्षा पाना. यह उस वैदिक समयमें प्रायः असंभवसा प्रतीत होता है ।

गृहस्थाश्रमका आदर्श।

आगे मंत्र २१–२३ तक गृहस्थाश्रमका सुंदर वर्णन है। प्रत्येक गृहस्थी इस सुखका अधिकारी है । जो धर्मानुकूल रहे और गृहस्थीका धर्म पालन करे । वह इस सुखको प्राप्त कर सकता है ।

(१) अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि । (मं० २१)

"इस पतिके घरमें अपने गृहस्थ-धर्मका जागते हुए पालन कर " अपने गृहस्थ धर्ममें अशुद्धि न कर. दक्षतासे अपने पतिके घरमें रह और अपना कर्तव्य कर ।

(२) इह ते प्रजायै प्रियं समृध्यताम् । (मं० २१)

" इस गृहस्थाश्रममें रहते हुए अपने संतानका प्रिय.शुभ और कल्याण करना तेरा मुख्य कर्तव्य है । " सुसंतान निर्माण करना गृहस्थका धर्म है । गृहस्थधर्मका यह पुष्प और फल है । यह सुयोग्य बननेके लिये जो यत्न किया जाय वह थोडा है । मातापिताके सब संस्कार अंशरूपसे संतानमें आते हैं. अतः मातापितापर यह जिम्मेवारी है कि वे अपनेपर कोई अशुभ संस्कार न होने दें । शरीरके रोग. बुरी आदतें और अन्य कुसंस्कार संतानों में अंशरूपसे उतरते हैं. अतः मातापिताओंको उचित है कि वे स्वयं परिशुद्ध रहें और शुभ संतान निर्माण करनेका यत्न करें । इस तरह प्रयत्न करते करते संतानोंके लिये शुभ संस्कारहि मिलते जायंगे. और क्रमशः संतान सुधरते और सुसंस्कारसंपन्न होते जायंगे ।

(३) एना पत्या तन्वं संस्पृशस्व । (मं० २१)

" इस पतिके साथ आनंदप्रसन्न होकर रह । " इस प्रकार धर्मानुकूल उपभोग प्राप्त कर । सदा प्रसन्नतासे दिनचर्या व्यतीत कर । दुःखी वृत्ती रहनेसे वैसा चिड-चिडापन संतानमें आ जायगा. इसलिये प्राप्त [illegible] [illegible] प्रसन्नता रख और इसी तरह अन्यान्य प्रसंगोंमें [illegible] रहना योग्य है । इस संसारमें रहनेका यही मुख्य नियम है ।

(४) जिर्विः विदथमा वदासि । [मं० २१]

सुंदर हो परंतु स्त्रीका वस्त्र पहननेसे वह अश्लील बनता है, शोभारहित होता है।

यह निषेध स्त्रीका पहना वस्त्र पुरुषके पुनः पहननेके लिये है, या नाट्योंमें जो पुरुष स्त्रीवेष धारण करते हैं उस कार्यका यह निषेध है, यह एक विचारणीय प्रश्न है ! पाठक इसका अधिक विचार करें परिवारमें पति कभी स्त्रीका वस्त्र न पहरे, यह बोध यहां निःसन्देह है। इस प्रकारका निषेध पुरुषका वस्त्र स्त्रीके पहननेके विषयमें नहीं है, यह बात विशेष मनन करने योग्य है। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियोंके पहने वस्त्र आरोग्यकी दृष्टिसे पहननेके अयोग्य होते हैं। यहां स्त्रीका वस्त्र दूसरी स्त्री पहने या न पहने, इस विषयमें भी निषेध नहीं है। स्त्रीका वस्त्र पुरुष न पहने यह बात यहां स्पष्ट और असंदिग्ध है। पाठक इस बातका अधिक विचार करें और निश्चय करें।

विविध वस्त्र पहननेसे स्त्रीके रूप विशेष शोभायुक्त होते है, यह बात मंत्र २८ में कही है। (आशसनं) धारीवाला वस्त्र, (विशसनं) सिरपर ओढने योग्य ओढनी, और (अधिविकर्तनं) यह सर्वांगपर ओढनेका वस्त्र है। स्त्रियोंके पहननेके ये तीन वस्त्र हैं। इनके विविध रंगरूपोंके कारण स्त्रियोंके स्वरूपकी सुंदरता बढती है।

कन्या का गुरु।

कन्या की शिक्षा कैसी होनी चाहिये, यह एक बडा विकट प्रश्न है। आजकल तो कन्या और पुत्र एकही पाठशालामें पढते हैं और उनकी पाठविधि समान होती है। वस्तुतः देखा जाय तो पुरुषों और स्त्रियोंके कार्य इस संसारमें विभिन्न होते हैं, अतः एकही पाठविधि दोनोंके लिये लाभदायिनी नहीं हो सकती। आजकल स्त्रियोंका पुरुषीकरण हो रहा है और पुरुषोंका स्त्रीकरण किया जाता है। मिश्रपाठविधिका और सहशिक्षाका यह दोष है। वेदके उपदेशानुसार स्त्रीपुरुषोंकी पाठविधि भिन्न होनी चाहिये। स्त्रियोंको विशेपतः सूपशास्त्र अर्थात् अन्नका पाक करनेकी विधिका उत्तम ज्ञान होना चाहिये। [एतत् तृष्टं] यह पदार्थ तृषा उत्पन्न करनेवाला अर्थात् पित्तकारक है, [एतत् कटुकं] यह कटु हैं, [एतत् अपाष्ठवत् विषवत्] यह पदार्थ स्वास्थ्यका विगाड करनेवाला है, ये पदार्थ विषके समान मृत्यु लानेवाले हैं, [एतत् अत्तवे न] ये पदार्थ खाने योग्य नही हैं, इसी तरह निषिद्ध पदार्थोंका ज्ञान कन्याओंकी पाठविधिमें देना चाहिये। तथा खाने योग्य पौष्टिक और सात्विक पदार्थोंका भी योग्य ज्ञान स्त्रियोंको पढाया जावे। स्त्रियोंके ऊपर बालबच्चोंके लालन पालनका भार रहता

ब्राह्मणोंको धन और वस्त्रदान।

मंत्र २५ में (ब्राह्मणेभ्यो वसु विभज, शामुल्यं च देहि। मं. २५) ब्राह्मणों-को धन दान दो और वस्त्रका दान करो। यह ब्राह्मणोंको दान करनेकी आज्ञा यहां की है। विवाहके समय सुयोग्य विद्वान् ब्राह्मणोंको धन और वस्त्र देना चाहिये। गौ, भूमि आदिका भी दान दिया जावे। यह दान वधुके समक्ष दिया जावे, और इसका सात्त्विक परिणाम वधूके ऊपर होवे। दान देना चाहिये, यह बात इस प्रकार नववधूके मनपर प्रतिबिंबित हो। यदि दान देनेका गुण वधूमें न रहा, और केवल भोगमेंहि उस वधूका मन अत्यधिक रमने लगा तो वह एक कुटुंबका नाश करनेवाली राक्षसी सिद्ध होगी। ऐसी भोगी स्त्री—

एषा पद्वती कृत्या जाया पतिं विशते ॥ (मं. २५)

" यह एक दो पांववाली विनाशक राक्षसी भार्यारूपसे पतिके घर प्रवेश करती है।" जिस स्त्रीके मनपर दान देनेका भाव प्रतिबिंबित नहीं हुआ, वह भोगी स्त्री ऐसीहि घातक राक्षसी माननी चाहिये। गृहस्थीका भूषण उदार स्त्री है। उदारता की शिक्षा उस वधूको अपने पिताके घरमें मिलनी चाहिये और पतिके घरमें भी मिलनी चाहिये। इसलिये दान देनेका महत्त्व उस स्त्रीके मनपर स्थिर करना चाहिये। गृहशिक्षाका यह एक विशेष महत्त्वका भाग है।

जिसमे दानभाव स्थिर नहीं हुआ उसके मनमें (कृत्या सक्तिः) विनाश या घात-पात करनेकी बुद्धि प्रकट होती है। किसी स्त्रीमें ऐसी क्रूर बुद्धि न हो इसलिये दानकी बुद्धि वधूमें बढानी चाहिये। यदि ऐसा न हुआ और स्त्री स्वैराचार [illegible] हुई तो अन्तमें पतिकुलकाही नाश होता है—

एधन्ते अस्या ज्ञातयः, पतिर्बन्धेषु बध्यते। (मं०२६)

" इसकी जातियोंमें कलह प्रबल होता है, और अन्तमें [illegible] बंधनमें बांधा जाता है।" इसलिये कन्या और वधूमें प्रारंभसे हि [illegible] परोपकार करनेकी बुद्धि स्थिर होनी चाहिये। अपने सुखका [illegible] सेवा करनेकी सुबुद्धि स्थिर होनी चाहिये। धर्मसेवा, [illegible] सबमें बढे और इस सेवासे हि सब द्वेषभाव दूर होगा, [illegible]

पुरुष स्त्रीका वस्त्र न पहने

मंत्र २७ मे कहा है कि पुरुष कभी स्त्रीका वस्त्र न पहने [illegible]

श्यकता है उतना धन कमाओ। धर्मानुकूल व्यवहार करनेसे निःसंदेह यश प्राप्त होगा और समृद्धि भी होगी।

पतिपत्नी अपने घरमें प्रेमके साथ रहें। पति (मंभलः चारु वाचं वदतु) अपनी धर्मपत्नीके साथ मीठा भाषण बोले, मंगल भाषण करे, सुंदर वचन कहे तथा (अस्यै पतिं रोचय) इस स्त्रीको पतिके विषयमें बडी रुचि हो, बडा प्रेम हो। इस तरह दोनों प्रेमके साथ रहें, व्यवहार करें और उन्नति करते रहें।

गौरक्षा।

मंत्र ३२ और ३३ मे गृहस्थी लोग गौरक्षा करें, इस विषय का बडा उपयोगी उपदेश है। गौवें घरकी शोभा हैं, बालकोंकी उन्नति इसीसे होती है। सब प्रकारका उत्कर्ष गौवोंसे होता है, इसलिये गौपालन गृहस्थीका धर्म है।

सरल मार्ग।

सबके चलनेके मार्ग सरल और निष्कंटक हों, इस विषयमें ३४ वे मंत्रका आदेश ध्यानमें धरने योग्य है-

पन्थानः अनृक्षरा ऋजवः सन्तु ॥ (मं० ३४)

" मार्ग कंटकरहित और सरल हों। " घरको पहुंचनेके मार्ग, घरके पास के मार्ग, राष्ट्रमें जाने आनेके सब मार्ग निष्कंटक और सीधे हों। उनमें जहांतक हो वहांतक टेढापन न हो। मनुष्यके सब व्यवहारके मार्ग भी सीधे ही हों। यहां जानेके और आनेके मार्ग सीधे हों,यह बात कहनेका हेतु नहीं है, क्यों कि ये मार्ग तो जैसी भूमि होगी वैसे हो सकेंगे। परंतु मनुष्योंके व्यवहारके मार्ग सीधे हों, यह बात विशेषतया यहां कही है। बीचमे कांटे न बिछाये जावें। आजकलके राष्ट्रके और समाजके व्यवहार देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, मनुष्य स्वयंहि अपनी मतिहीनतासे आपने मार्गपर कांटे बिछाते हैं और सीधा व्यवहार होनेकी संभावना होनेपरभी टेढेपनसे व्यवहार करते हैं और इस कारण सुखप्राप्तिके प्रयत्नसे सदा दुःख ही प्राप्त करते हैं। इस तरह ये गृहस्थी अपनी उन्नतिके मार्गमें कांटे न डालें यह उपदेश वेद यहां गृहस्थाश्रमके प्रारंभमें दे रहा है। सब गृहस्थी इसको अवश्य स्मरण रखें। इस प्रकारके सीधे मार्ग से चलनेपर (धाता भगेन वर्चसा सं सृजतु) परमेश्वर धन और तेज देवे। वह परमात्मा तो सरल व्यवहार करनेवालोंको यह फल अवश्य ही देगा। इसमें किसीको संदेह करनेकी आवश्यकता नहीं है। परमेश्वरकी सहायता प्राप्त करनेका मार्ग भी सीधा और निष्कंटक है। यही धर्ममार्ग है। इससे चलकर

है. इसलिये उनको भक्ष्य भोज्य लेह्य पेय आदि खाद्य पदार्थोंका उत्तम ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकारकी पाठविधि स्त्रियोंके लिये होनी चाहिये और उनपर जो कार्यका भार आनेवाला है, वह पूर्ण करने की योग्यता उनमें उत्पन्न करनी चाहिये।

जो गुरु इस तरह की शिक्षा कन्याओंको देता है उसको उस कन्याके विवाहके समय उत्तम वस्त्र दान करना योग्य है। इसी तरह मंत्र ३० मे कहा है कि, जो गुरु (प्रायश्चित्तिं अध्येति) चित्तशुध्द करनेका उपदेश देता है, चित्त बुरे मार्गसे जाने लगा तो उसको धर्ममार्गपर लानेका विवेक जिस सद्गुरुकी कृपासे मनमें उत्पन्न होता है, उस शिक्षक का सन्मान करना चाहिये। उस कन्याके विवाह के समय (सुमंगलं स्योनं वासः) उत्तम मंगल और शुभ वस्त्र उस ब्राह्मणको अवश्य दिया जावे, जिसने उस कन्याको पूर्वोक्त ज्ञान दिया है, पढाया है, उत्तम शिक्षा दी है। क्यों कि इसी ज्ञानसे (येन जाया न रिष्याति) उस स्त्रीकी गिरावट नहीं होती। वह सुशिक्षित स्त्री अपने धर्मपथमें रहती हुई सबको आनन्द देती है। यह शिक्षाका प्रभाव है, ऐसी शिक्षा स्त्रीको देनी चाहिये।

स्त्रीको योग्य शिक्षा न दी, तो वह कैसी पतिकुलका नाश करती है, इसका वर्णन मं० २५-२६ मे पूर्व स्थानपर किया है। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियोंको सुशिक्षा देना अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा न होनेसे बडे भयानक परिणाम होते है।

सद्व्यवहारसे धन कमाओ।

गृहस्थाश्रममें धनकी आवश्यकता सदा रहती है। प्रत्येक कर्म धनके विना हो नहीं सकता। अतः गृहस्थीको धन कमानेकी अत्यंत आवश्यकता है। यह धन कैसा कमाया जावे,यह एक बडी भारी समस्या गृहस्थियोंके सन्मुख सदा रहती है। इसका उत्तर ३० वें मंत्रने दिया है।

(ऋत-उद्येषु ऋतं वदन्तौ) सरल व्यवहारों में सरल भाषण करो। उसमें छल-कपट न हो। सबसे प्रथम टेढे व्यवहारोंमें न जाओ। जो व्यवहार करना हो, वह सरल व्यवहार हो और उसके करनेके समय भी सरल भाषण करो। और इस प्रकारके धर्मानुकूल सरल व्यवहार करके—

(समृद्धं भगं संभरतं) बहुत धन प्राप्त करो। अपने लिये जितने धनकी आव-

उतना मनोनिग्रह, उतना निश्चय, उतना उत्साह, उतना प्रयत्न गृहस्थी अपने धर्मपालनमें दर्शावें, यह उपदेश यहां है।

मद्यपी भी इसी तरह मद्यपानका समय आया तो मद्यपानके स्थानपर जाता है और मद्य पीता ही है, समय टालता नहीं, अपने साथ इष्ट मित्रोंको भी पिलाता है, यह उदारता भी मद्यपीमें होती है। इस मद्यपीमें समयपर वह कार्य करनेकी जो आतुरता होती है और अपने साथियोंको पिलानेकी जो उदारता होती है,वह आतुरता और उदारता गृहस्थियोंमें अवश्य रहे। गृहस्थी अपने कर्तव्य कर्म बडी आतुरता से करें और उदारतासे दान देते रहें। यह उपदेश गृहस्थी लोग ले सकते हैं।

यही सुरा और पासोंका दृष्टांत मंत्र ३६ में पुनः अन्य रीतिसे आगया है। उसका भी भाव यही है। इसमें जो उपदेश लेना है वही लेना चाहिये। बडे महात्मा लोग कुत्तेसे और चुंटीयोंसे भी उपदेश लेते रहते हैं। जाग्रत निद्रा और स्वामिनिष्ठाका उपदेश कुत्तेसे और प्रयत्नशीलताका उपदेश चुंटीयोंसे लिया जाता है। इसके अन्य दुर्गुणोंकी ओर महात्मा लोग देखते नहीं है, केवल उनके गुणोंको अपनाते हैं। इसी तरह मद्यपी और जुआडी भी गृहस्थियोंको पूर्वोक्त उपदेश देते हैं। ये उपदेश इनसे गृहस्थी प्राप्त करें और अपने गृहस्थधर्मका पालन उत्तम रीतिसे करके कृतकृत्य बनें।

पाठक पूछेंगे कि ये उपदेश यहां क्यों दिये हैं? क्या उत्तम उदाहरण जगत् में नहीं मिलेंगे? उत्तर में निवेदन है कि मनुष्य की तन्मयता जो व्यसनोंमें होती है वैसी सदाचारमें नहीं होती। प्रायः यही नियम सर्वत्र है। संसारमें रहते हुए मनुष्य परमार्थसाधन कैसा करें? इसके उत्तरमें व्यभिचारिणी स्त्री के समान करे ऐसा उत्तर शास्त्रकार देते है। जैसी व्यभिचारिणी स्त्री अपने विवाहित पतिका सब कार्य करती हुई अपने मनमें परपुरुष का ध्यान सदा करती है और समय मिलते ही उसके पास उपस्थित होती है,उसी प्रकार संसारी जीव संसारके कार्य करते हुए अपना सब ध्यान परमात्मामें रखें और जो समय मिल जावे उस समय परपुरुष परमात्माकी उपासना करें, वही पर पुरुष किंवा परम पुरुष और उपास्य सबके लिये है। यह उपमा यद्यपि हीन है तथापि पूर्ण है। ऐसी ही द्यूती और मद्यपी की उपमाभी पूर्ण है। मनुष्योंको चाहिये कि वे उनकी कार्यतत्परता अपनेमें लावें और उससे सुयोग्य कार्य करके कृतकृत्य बनें।

मंत्र ३५ और ३६ में गौओंके स्तनोंमें तेजस्विता दुग्धरूपसे रखी है, इस तेजस्वि-

सब मनुष्य सुखधाम को पहुंच सकते है । इस प्रकार इस मंत्रका उपदेश बडा मनन करने योग्य है और प्रत्येक गृहस्थीको सदा ध्यान रखनेयोग्य है, क्यों कि सबकी उन्नति सरल और निष्कंटक मार्गसेहि होना संभव है । उन्नतिका दूसरा कोई मार्ग नहीं है ।

तेजस्वी बनो ।

गृहस्थी तेजस्वी बनें, उत्साही बनें, कदापि निरुत्साही न हों । गृहस्थीका धर्म उत्साहका है,यह तेजस्वी मनुष्योंका धर्म है इस लिये वेद उपदेश देता है कि गृहस्थी तेजस्वी बने । यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि गृहस्थी तेजस्वी कैसा बने ? उत्तरमें वेद कहता है कि–

यत् वर्चः अक्षेषु सुरायाम् ॥ (मं० ३७)

"जो तेज आंखोंमें अथवा द्यूतके फासोंमें होता है और जो मद्यमें होता है" वह तेज इन गृहस्थियोंमें आवे । यह पढकर पाठक कहेंगे कि यह क्या अनर्थ है ? वेद ऐसा उपदेश क्यों देता है ? क्या वेद इस उपदेशसे गृहस्थियोंको जुआरी और मद्यपी बनाना चाहता है ? कदापि नहीं । वेद तो इन दुर्व्यसनोंसे गृहस्थियोंको बचाना चाहता है, परंतु यहां तेजस्वी उत्साहका वर्णन है । किन लोगोंमें तेजस्वी उत्साह अत्यधिक होता है? उत्तरमें जुआरी और मद्यपीमें होता है, ऐसाही कहना पडेगा । देखिये, जुआ खेलनेके कार्यमें सरकारी प्रतिबंध है, जुआरीको राजपुरुष पकडते है और कारागृहमें डालते है, न्यायालयोंमें इनको दण्ड दिया जाता है, घरवाले इस जुआरीके विरोधी होते है, इष्ट मित्र तथा परिवारके लोग चाहते है कि यह जुआ न खेले, इस तरह सब लोग इसका विरोध करते रहते है, तथापि जूवेबाज मनुष्य रातके समय, अंधेरेमें, कष्ट सहन करते हुए, छिपते और छिपाते हुए जुवेके घरमें पहुंचता है, न उसको किसीका भय होता है और न भूख प्यास होती है, एक मात्र निश्चय होता है कि मै जुआ खेलूंगा । सब जगत् विरुद्ध होनेपर भी वह अपने निश्चय पर अटूट रीतिसे स्थिर रहता है: यह इसका निश्चय, प्रयत्न, उत्साह और एकाग्र मन देखने योग्य है । यदि येहि तेजस्वी गुण जो इसके पासोंके खेलमें लगे वेहि यदि श्रेष्ठ पुरुषार्थके कर्ममें लग जांय,तो उसका बेडापार होनेमें क्या संदेह है ? अतः वेद कहता है कि जो तेज और उत्साह तथा निश्चय जुआडी लोग अपने खेलमें बताते है वही तेज और उत्साह गृहस्थी मनुष्य अपने गृहस्थधर्मपालनमें बतावें.

मंत्रपवित्र जलके स्नानसे इस वधूके भीरुता आदि सब दोष दूर हों और वह पवित्र मंगल और धैर्यवाली बने। ऐसी सुयोग्य गृहस्वामिनी बने कि जो अपने संतानोंको सुयोग्य उपदेश द्वारा उत्तम आर्य बनावे।

पतिके घरके सुवर्ण रत्न आदि आभूषण इस नववधूको कल्याणकारी हों, गिरानेवाले न हों। नहीं तो धन मनुष्यको गिराता है। धनसे उत्पन्न हुई घमंड मनुष्यकी अधोगति करती है। इसलिये सावधानताकी सूचना देने के लिये यहां कहा है कि सुवर्ण आदि धन वधूकी गिरावट न करे। दूसरे घरकी स्त्रियोंके उत्तमोत्तम आभूषण देखकर अपने लिये वैसे आभूषण चाहिये ऐसा हठ स्त्रियां करती हैं और पतिको बडे क्लेश देती हैं, ऐसा कोई स्त्री न करे और प्राप्त सुवर्णमें हि वह संतुष्ट रहे। सुवर्ण, आभूषण, गाडी, घोडे आदि सुखसाधन सबके सब भोगवर्गमें आते हैं। भोगेच्छाके कारण घरमें विविध झगडे होते हैं, अतः कहा है कि इन भोगसाधनोंसे कोई झगडे न हों, परंतु (शं भवतु) पतिके घरमें शान्ति रहे, झगडे होकर अशांति न बने। और पत्नी (पत्या तन्वं शं स्पृशस्व) अपने पतिके साथ सुखसे आनन्दप्रसन्न रहे। पतिपत्नी ऐसे एक विचारसे रहें कि यहां किसी भी कारण विवाद न हो, घरमें अशांति न बढे और दोनोंको कौटुंबिक-सुख यथायोग्य प्राप्त हो।

स्त्री की इच्छा।

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ॥ (मं० ४२)

पतिके घर आयी हुई नववधू अर्थात् गृहिणी किस बातकी आशा करती है, अर्थात् क्या चाहती है, यह प्रश्न कोई पूछे तो उसके उत्तर में निवेदन है कि वह स्त्री (सौ-मनसं) अपने घरके सब लोग आनन्दप्रसन्न रहें, झगडाफिसाद न हो, परस्परका व्यवहार प्रेमपूर्वक हो, घरमें उत्तम शान्ति, आनंद और प्रसन्नता का राज्य रहे, यही इच्छा कुल स्त्री की हो। दूसरी इच्छा यह होनी चाहिये कि, (प्रजां) उत्तम संतान उत्पन्न होवे, अपने संतान सुयोग्य बने, अपनी सुसंततिसे कुल का वृक्ष हराभरा रहे। तीसरी इच्छा यह होवे की (सौभाग्यं) उत्तम भाग्य प्राप्त हो, अपने पतिके घरमें उत्तम भाग्य वृद्धिंगत होता रहे। सौभाग्यमें उस भाग्य का विशेष कर समावेश होता है कि जो पतिसे पत्नीको, और पत्नीके कारण पतिको सुख होता है और जिस सुखके लिये विवाह होते रहते हैं। यह सौभाग्य अपने घरमें बढे

तासे सब गृहस्थी युक्त हों. ऐसा कहा है। " (गोषु वर्चः। महानघ्न्या जघनं) " इन शब्दोंद्वारा गौका दुग्धस्थान दर्शाया है। सचमुच गौका दूध अत्यंत तेजस्वी है। म्हैस का दूध सुस्ती लानेवाला है, गौका दूध स्तुती हटानेवाला है। अतः सब गृहस्थी और उसके घरके बालबच्चे गौका ही दूध पीकर तेजस्वी, वर्चस्वी, ओजस्वी, आयुष्मान् और पुरुषार्थी बने।

मंत्र ३७ मे कहा है कि जलोंमे एक प्रकारका तेज है जिससे तेजस्विता, माधुर्य, वीर्य और सामर्थ्य बढता है। गृहस्थियोंको इस जलसे ये गुण प्राप्त हों। वेदमें अन्यत्र जलको जीवनका एक मात्र साधन बताया है, रोगनाशक कहा है, आरोग्य वर्धक माना है, वही सब आशय इस मंत्रमे सारांशरूपसे कहा है। गृहस्थी इस मंत्रका उत्तम मनन करें।

मंत्र ३८ तो सब लोकोंको मनन करने योग्य मंत्र है। इसको सभी कण्ठमें रखें।

(१) रुशन्तं तनूदूषिं ग्रासं अपोहामि ॥

(२) भद्रः रोचनः तं उद्चामि ॥ (मं० ३८)

" (१) जो शरीरको क्षीण करनेवाला, शरीरमे विष उत्पन्न करनेवाला और शरीरमें आकर स्थिर रहनेवाला रोगबीज या दोष होगा, उसको मैं हटाता हूं, और (२) जो शरीरका तेज बढानेवाला और अपना सर्वथा कल्याण करनेवाला है, उस को मैं अपने पास करता हूं। " यह नियम तो सब मनुष्यों को सदा सर्वदा ध्यानमें धारण करना चाहिये और इसी प्रकार आचरण करना चाहिये। हरएक स्थानमें दोषोंको दूर करना और गुणोंको अपनेमें बढाना योग्य है। उन्नतिका यही एकमात्र उपाय है। वधूवर तो अपने घरमें यही नियम पालन करें।

मंत्र ३९ में कहा है कि (श्वशुरः देवरः च प्रतीक्षन्ते) पतिके घरमे श्वशुर और देवर वधूके आनेकी मार्गप्रतीक्षा करते हैं। वधूका स्वागत करनेके लिये सब लोग उत्सुक हो गये हैं। यह मंगल वधू अपने पतिके घर प्रविष्ट हो, वहां पहुंचते हि अग्निको प्रदक्षिणा करे, अग्निको नमन करे और पश्चात् श्वशुर आदिका दर्शन करे। वहां ब्राह्मण मंत्रपूत जलसे इस वधुको अभिषेक करे। यह जल वधूके अंदर जो भीरुता (अवीरघ्नीः आपः) होगी, उसको दूर करेगा। यह अत्यंत महत्त्वकी बात है। आर्योंमें भीरुता रहनी नहीं चाहिये। आर्य तो सदा निडर और धैर्यके मेरु होने चाहिये। इसलिये वधू गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होकर पतिके घर जो प्रथम स्नान करती है, वह स्नान ब्राह्मणों द्वारा वेदमंत्रोंसे पवित्र और निर्दोष हुए जलसे करे। जिन

यही इच्छा धर्मपत्नीकी हो। इसके पश्चात् चतुर्थ इच्छा यह है कि (रयिं) धन प्राप्त हो, अपने पतिके घर किसी प्रकार दरिद्रता न रहे। ऐश्वर्य धन सुवर्ण आभूषण आदि सब विपुल रहे और इस अर्थ से सबको सुख प्राप्त होता रहे। धर्मपत्नी की पति के घरमें यही चार प्रकारकी इच्छा हो। यहां पाठक ध्यानमें रखें कि सबसे प्रथम उत्तम मनकी इच्छा की है, उसके नंतर पतिपत्नीके उत्तम सुखकी इच्छा है, और अन्त में धन की इच्छा है। क्यों कि धन सुखका साधन तो है, परंतु वह धन सु-मन न होनेपर, घरमें सुसंतान न होनेकी अवस्थामें, पतिपत्नीसंबंधकी विपरीततामें कोई सुख नहीं देता, परंतु इन अवस्थाओंमें दुःखदायी होता है। इसलिये कौनसी आशा प्रथम करनी चाहिये और कौनसी अन्तमें करनी चाहिये, इसका विचार गृहस्थी लोग इस मंत्रके मननसे जानें।

स्त्री कैसी हो ?

(पत्युः अनुव्रता) पतिके अनुकूल रहकर नियमपालन करनेवाली स्त्री हो। स्त्री कभी पतिके प्रतिकूल आचरण न करे। इस नियमके अंदर यद्यपि स्त्रीके लिये पतिके अनुकूल होनेकी आज्ञा कही है तथापि इसीसे पति भी स्त्रीके अनुकूल रहे यह भी भाव निकलता है। पति जैसा चाहे वैसा आचरण करे और केवल पत्नी हि पतिके आधीन रहे, यह भाव इस मंत्रका नहीं है। धर्मोपदेश समान हुआ करता है और वह एकके निर्देश से दूसरेको लेना योग्य है। तात्पर्य यह है कि जैसी धर्म-पत्नी पतिके अनुकूल रहे उसी प्रकार पतिभी पत्नीके अनुकूल रहे। दोनों परस्पर अनुकूल रहकर एक दूसरेका सुख बढावें और गृहको स्वर्गधाम बनावें। (अमृताय कं संनह्यस्व) अमृत की प्राप्ति होनेके लिये सुखपूर्वक सिद्ध हो। धर्मपत्नी और पति ये दोनों अपना साध्य अमृतत्त्व है अर्थात् मोक्ष है, ऐसा नित्य प्रति ध्यानमें रखे। उस अमृतमय मोक्षधामको पहुंचनेका जो मार्ग है वह मार्ग सुखसे चलनेके लिये इस गृहस्थाश्रमका योग है यह कोई गृहस्थी न भूले। इस कामके लिये सब गृहस्थी सिद्ध हों। सब व्यवहार वे इसी उद्देश्यकी सिद्धि के लिये करें। अर्थात् धर्मानुकूल व्यवहार करते हुए मोक्ष की सिद्धि प्राप्त करें। प्रत्येक गृहस्थीका यह कर्तव्य है। प्रत्येक गृहस्थी प्रत्येक व्यवहार करनेके समय स्मरण रखे की मेरा यह कर्म मोक्षका साधक हो, और कभी बाधक न हो। प्रत्येक कर्म योग्य रीतिसे करने पर मोक्षके लिये साधक हो सकता है। यदि प्रत्येक कर्म कल्याणपूर्वक किया

कपडा बुने।

मंत्र ४६ में कहा है कि स्त्री पुरुष अपने दीर्घ जीवनके मार्गको (दीर्घां प्रसितिं अनु[illegible]) ध्यानमें रखकर, अपने (पितृभ्यः वामं) मातापिता के लिये सुख देवें और स्त्री पुरुष परस्परको सुख देते हुए आनन्दसे अपना कर्तव्य करें। गृहस्थाश्रमका मार्ग अतिदीर्घ है, कमसे कम सौ वर्ष इस मार्गका आक्रमण करना पडता है। सौ वर्ष चलनेपर भी यह धर्ममार्ग समाप्त नहीं होता। इतना लंबा मार्ग यह गृहस्थियोंके सामने है। इतने लंबे मार्गपर सुखके साथ प्रवास करना चाहिये। इस कारण अपने मातापिता को सुख देना चाहिये। मातापिताका सत्कार करना यह एक आवश्यक कर्तव्य है। यदि एक गृहस्थी अपने मातापिताका संभाल न करेगा तो उसके लडके भी उसका संभाल नहीं करेंगे। [illegible] अपने मातापिता का संभाल करनेसे अपने संतानोंको सुयोग्य शिक्षा मिलती है, जिससे वे भी अपने मातापिताका आदर-[illegible] करनेमें प्रवृत्त होते हैं। सब गृहस्थाश्रम सुखमय करना हो तो वृद्धों और [illegible] पालना उसमें उत्तम रीतिसे होनी चाहिये। गृहस्थाश्रममें सुखवृद्धि करनेका [illegible] है।

[illegible] ऊपर सुप्रजा निर्माणका बडा भारी भार है। प्रत्येक गृहस्थीको [illegible] (प्रजायै [illegible] धत्त) अपनी संतान के लिये सुख और [illegible] प्राप्त [illegible]। अपने सब संतान सुखी हों, और स्थिर हों, सुदृढ हों तथा [illegible] दीर्घ आयु किस रीतिसे हो सकती है? इसके उत्तरमें वेद [illegible] (सविता आयुः दीर्घं कृणोति। मं० ४७) सूर्य ही मनुष्यकी आयु [illegible], सूर्यप्रकाशसे मनुष्यकी दीर्घायु हो सकती है। मनुष्य सूर्यकिरणोंमें [illegible] करें, सूर्यकी उपासना करें और अपनी आयु दीर्घ बनावें।

पाणिग्रहण।

[illegible] पाणिग्रहण करता है। यह पाणिग्रहण होनेहि स्त्री पुरुषका पत्नी और [illegible] शुरू होता है। उस समय पति अपनी पत्नीसे प्रेमके साथ बातचीत करे और [illegible] कहे—

[illegible] (ते) [illegible]

[illegible] ॥ (मं० ४८)

[illegible] हूं, [illegible]

तया स्वतंत्र नहीं होती। साम्राज्यके नियमोंसे बंधी होती है। वह साधारण स्त्रीके समान इधर उधर जा नहीं सकती। उसके साथ सदा शरीररक्षक रहते हैं। इस प्रकार सम्राज्ञी परतंत्र होती हुई भी विशेष संमानित होती है। यही बात गृहस्थोंनी की है। धर्मनियमोंसे बंधी हुई धर्मपत्नी परतंत्र होती हुई भी पूर्ण रीतिसे सम्राज्ञी है। धार्मिक उन्नति करने के लिये स्वतंत्र है. पाठक इस तरह विचार करनेपर जान सकते हैं कि वैदिक धर्मकी परतंत्रता भी अन्य स्थानकी स्वतंत्रता की अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय है। मनुष्य को अपना मुक्तिधामका मार्ग आक्रमण करना है. यही उनका ध्येय है। इस ध्येय की सिद्धिके लिये जितनी स्वतंत्रता चाहिये उतनी यहां है। इससे जो अधिक स्वातंत्र्य है वह गिरनेका हेतु है।

स्त्रियोंका सूत कातना।

वैदिक धर्मानुसार सर्वसाधारणतया स्त्रीपुरुषोंका और विशेषकर स्त्रियोंका घरेलू व्यवसाय सूत कातना और उसका कपडा बुनना है। प्रत्येक गृहस्थीके घरकी सब स्त्रियां इस सूत्रनिर्माणके कर्मको अवश्य करें। (देखो: अ [illegible] । [illegible]) [illegible] की देवियां सूत कातें. जो सूत्र कातती हैं वेही देवियां हैं। [illegible] हम देवियां कह सकते हैं। वेही देवियां ([illegible]) ताना तानती हैं. [illegible] करके योग्य रीतिसे ताना तानती हैं तथा ([illegible]) [illegible] गोंके अन्तिम भागोंको ठीक करती हैं. [illegible] झालरे कपडा बुननेके पूर्व ठीक करनी चाहिये। [illegible] कपडा खराब होगा। [illegible] संव्ययन्तु) उक्त देवियां कपडा बुनें. [illegible] कपडा विशेष श्रमके साथ बुनें. [illegible] होना संभवनीय नहीं है. [illegible] दीर्घ आयु प्राप्त करती हुई [illegible] परिधान करें। [illegible] इस तरह [illegible] अयोग्य है। [illegible] लोग [illegible] तो कितना [illegible] वैदिक धर्म [illegible]

बहुवचन का और कौनसा रहस्य है, इस बातका विचार पाठक करें। पति ही स्त्रीका पाणिग्रहण करनेवाला है, इस कथनसे भी पतिका ही मुख्य होना सिद्ध है। स्त्रीका दान पतिको किया जाता है, इस विषयके मंत्र भी हमने पूर्वस्थानपर देखे हैं। इन सब बातोंसे निःसन्देह वैदिक धर्म के द्वारा गृहस्थाश्रममें पुरुषका मुख्य स्थान है, यह दर्शाया है।

आगेके तीनों मंत्रोंमें पाणिग्रहण का ही विषय है और उन मंत्रोंमें स्त्रीका हाथ पुरुष पकडता है ऐसाही भाव है। तथा आगे विशेष स्पष्ट करके कहा है कि–

त्वं धर्मणा पत्नी असि, अहं तव गृहपतिः॥ (मं० ५१)

इयं मम पोष्या, मह्यं त्वा प्रजापतिः अदात्॥ (मं० ५२)

"पुरुषकी स्त्री धर्मसे पत्नी है, और पति स्त्रीका गृहपालक है। यह स्त्री पतिके द्वारा पोषण होने योग्य है, क्योंकि इस पतिके अधिकारमें प्रजापतिने इस स्त्रीको सौंप दिया है।"

स्त्रीके पोषणका भार पतिके ऊपर है, यह बात इस मंत्रसे स्पष्ट है। पति पत्नीका पालन पोषण करे। पालन–पोषणका विचार पत्नी न करे। पोषण की सामग्री घरमें आनेके पश्चात् पत्नी उस सामग्रीका योग्य विनियोग करके सबको यथायोग्य अन्न-भाग पहुंचावे।

सुपुत्र निर्माण करने में देवताओंकी सहायता प्राप्त होनी चाहिये। वह सहायता इस स्त्रीको प्राप्त हो, इस प्रकारका आशीर्वाद मंत्र ५३ और ५४ में है। इन्द्र अग्नि आदि सब देवताएं इस स्त्रीको अपना तेज अर्पण करें और इस स्त्रीके अन्दर उत्तम संतान उत्पन्न करें और ऐसे सुसन्तानोंके साथ यह स्त्री उन्नत होती रहे।

केशोंकी सुंदरता।

सिरपर (शीर्षे केशान् अकल्पयत्) परमेश्वरने बडे बडे केश निर्माण किये हैं। विशेषतः स्त्रीके सिरकी शोभा केशोंकी सुव्यवस्थासे बढती है। (तेन इमां नारीं पत्ये संशोभयामसि) अतः पतिके लिये सुंदर दीखने योग्य स्त्रीके सिरकी सजावट की जाती है और स्त्रीके सिरकी शोभा बढाई जाती है। स्त्रीके सिरपर के बालोंकी सुव्यवस्था रखना और शोभाके लिये सजावट करना योग्य है।

(मनसा चरन्तीं जायां जिज्ञासे) मनमें चालचलन स्त्रीका कैसा है यह जानना चाहिये। केवल बाह्य चालचलन द्वारा किसीकी परीक्षा करना योग्य नहीं

और धनोंके साथ सुखसे निवास कर। " इस तरह प्रेमपूर्वक पति अपनी धर्मपत्नीके साथ भाषण करे। नववधू दूसरेके कुलसे आती है, उसका कोई परिचित यहां नहीं होता है, इसलिये पतिके घरके लोग उस नववधूके साथ प्रेमका वर्ताव करें। पति नववधूसे कहे कि "हे पत्नी! मैंने तेरा हाथ पकडा है, इससे तू समझ कि तुझे मैंने सब अवस्थाओंमें आधार दिया है। हाथ पकडनेका अर्थ आधार देना है, अतः जबतक मैं हूं तबतक तुझे डरनेका कोई कारण नहीं। तू यहां सब तरह सुरक्षित है। मेरा जो धन है, वह भी तेराही धन है। उससे जैसा मुझे वैसा तुझेभी सुख प्राप्त हो सकता है। हम दोनोंको जो संतान उत्पन्न होंगे, उनका यथायोग्य पालन करना हम दोनोका कार्य है। यदि हम वह कार्य करें तो वे सब हमारे संतानभी हमारे सुखके हेतु हो सकते है। इस तरह हे पत्नी! मेरे साथ रहकर तू इस संसारमें सुखसे रह और हम दोनों गृहस्थधर्मका पालन करते हुए मोक्षके मार्गका आक्रमण करें। " इस ढंगसे पति और पतिके घरके लोग नववधूके साथ मधुर, प्रिय और सुखकारक भाषण करें और उसके मनमें पतिके घरके विषयमें प्रेम उत्पन्न करें।

जहां जहां वेदमें पाणिग्रहणका विषय आगया है, वहां वहां पति पत्नीका पाणिग्रहण करता है ऐसेहि शब्द प्रयोग है।

(१) ते हस्तं गृह्णामि। अथर्व. १४। १। ४८; ५०
(२) ते हस्तं गृह्णातु। अथर्व. १४। १। ४९.
(३) ते हस्तं गृभ्णामि। ऋग्वेद १०। ८५। ३६
(४) ते हस्तं अग्रहीत्। अथर्व. १४।१।५१

इन स्थानोंमें हाथ पकडनेवाला पुरुष है और जिसका हाथ पकडा जाता है, वह स्त्री है। इससे भी गृहस्थाश्रममें पुरुषकी विशिष्टता है, यह बात स्पष्ट होती है। वेदमें किसीभी स्थानपर स्त्री पुरुषका हाथ नहीं पकडती है, परन्तु सर्वत्र पुरुष ही स्त्रीका हाथ पकडता है। पाणिग्रहण करनेका अधिकार पुरुषका है, यह इन मंत्रोंसे निश्चित होता है। इसी लिये मंत्र ४३ मे (सिन्धुः नदीनां साम्राज्यं सुषुवे [illegible]) कहा है। एक समुद्र अनेक नदियोंका सम्राट होता है, अर्थात् एक पति अनेक स्त्रियोंका पाणि-ग्रहण करता हुआ गृहस्थाश्रमरूपी घरमें साम्राज्यका सम्राट होता है। इस उपमा से अनेक पत्नियोंका होना सूचित किया है। उपमाने यह भाव निःसन्देह है कि जिस प्रकार एक समुद्रको अनेक नदियां जा मिलती हैं, उसी प्रकार एक पुरुषको अनेक स्त्रियां प्राप्त होती हैं। यदि इसीतरह उपमाके यह भाव नहीं है तो इस उपमाके

सहायतासे मुक्त हो जांय।

प्रत्येक मनुष्य कहे कि (अहं विष्यामि) मैं ये सब बंधन तोडता हूं, मैं बंधनसे मुक्त होनेका यत्न करता हूं। क्योंकि मनुष्य-जन्मकी सार्थकता बंधमुक्त होने में है। मनुष्यका जन्म ही इस कार्य के लिये है। ये सब बंधन मनके कारण होते हैं अतः कहा है कि (मनसः कुलायं पश्यन् वेद) मनका यह घोसला है यह बात मनुष्य देखे और मनद्वारा उत्पन्न हुए ये सब बंधन हैं, ऐसा जानें यदि मनुष्यको इस बातका ज्ञान होगा कि (मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः) मनही मनुष्योंके बंधनके लिये अथवा मोक्ष के लिये कारण है, तो उस मनुष्यका बेडा पार होगा। साधारण मनुष्योंको ऐसा प्रतीत होता है कि अपने बंधन बाह्य कारणोंसे हुए हैं, परंतु वस्तुतः यह असत्य है। बाह्य कारण मनुष्यको बंधनमें फंसानेके लिये असमर्थ है। मनुष्यका मनही अपने बंधन तैयार करता है और उसमें स्वयं फंसता है और मनुष्यको फंसाता है। इस लिये बंधसे मुक्त होनेवाले मनुष्य को उचित है कि वह अपने मनको ज्ञानसे शुद्ध करे और उस शुद्ध मनसे वह अपने सब पाश काट देवे। निश्चय यह है कि (मनसा उत् अमुच्ये) अपने मनसे हि मनुष्य उन्नत होता हुआ मुक्त होता है। मनुष्य अपने मनसे बंधनों में बांधा जाता है और अपने मनसे हि बंधनोंसे मुक्त होता है। पाठक यहां देखें कि कितनी शक्ति मनुष्यके मनमें रखी है। इतनी शक्ति प्रत्येक मनुष्यके मनमें होती हुई भी मनुष्य अपने आपको असमर्थ मानता है और सहायताकी याचना करता रहता है। परंतु यदि यह स्वयं अपनी शक्तिसे बंधनमें पडा है तो वह अपनीहि शक्तिसे बंधनोंको तोडकर मुक्त हो सकता है। अर्थात् मुक्त होनेकी शक्ति इसीके अन्दर है। अतः कहा है कि (स्वयं श्रथ्नानः) स्वयं मैं अपने पाशोंको शिथिल करता हूं। तुम्हारे पाशोंको दूसरा कोई शिथिलकर नहीं सकता। यदि तुम अपने बंधनोंको तोडना चाहते हो तो तुमही तोड सकते हो, यदि बंधनमें हि पडना चाहते हो तो वैसाभी हो सकता है। जो तुम्हारे मनमें होगा वही यहां हो सकता है। तुमही अपना उद्धारक और तुमही अपना घातक हो। दूसरा तुम्हें कष्ट देता है यही बडाभारी भ्रम है। यह बात जैसी वैयक्तिक मुक्तिमें सत्य है वैसी हि सामाजिक और राष्ट्रीय मुक्तिमें भी सत्य है। अतः सब स्त्री पुरुषोंको उचित है कि वे अपने बंधन शिथिल करनेका स्वयं यत्न करें और प्रयत्न करके स्वयं मुक्त हों। यदि प्रयत्न किया जाय तो यह सिद्ध हो सकता है।

है। मन कैसा है, विचार कैसे है, मनमें किस बातका विचार करती है, मनने किसका मनन करती है, यह देखना चाहिये। जो मनमें शुद्ध है, वही शुद्ध समझना चाहिये। अतः मन शुद्ध रहनेके लिये जो शिक्षा देनी योग्य है वही देनी चाहिये। स्त्री हो या पुरुष, उनके मन शुद्ध रखनेयोग्य पाठविधि बनाना चाहिये। प्रचलित पाठविधि इस दृष्टिसे कैसी है इस बातका विचार पाठक करें और आर्य संतानोंको सुसन्तान बनानेके लिये क्या करना योग्य है, वह किया जावे।

(योषा यत् अवस्त, तत् रूपं) स्त्री जो वस्त्र परिधान करती है, उससे उसका रूप शोभिवंत होता है। अर्थात् स्त्री को इस प्रकारके वस्त्र परिधान करनेके लिये देने चाहिये कि जिससे उनकी सुंदरता बढे। यहां सूर्यासावित्रीका उदाहरण पाठक देखें। संध्यासमयमें कितने विविध रंगके वस्त्र यह सूर्यपुत्री संध्या पहनती है और अपने रूपकी शोभा बढाती है। प्रतिदिन सूर्यपुत्रीकी यह सजावट कैसी की जाती है यह पाठक देखें और अपनी शक्तिके अनुसार स्त्रियोंको उत्तम वस्त्र पहनावें। यह कोई आवश्यक नहीं है कि स्त्री प्रतिदिन नये नये वस्त्र पहने,परंतु जो वस्त्र पहने है वे ऐसे सुव्यवस्थित हों कि उनसे उस स्त्रीकी शोभा बढे। घरकी देवी स्त्री है और घरघरमें इस गृहस्वामिनीकी मंगल वस्त्र भूषणोंसे पूजा होती रहे और वह पूजा घरके स्वामीके आर्थिक अनुकूलताके अनुसार होती रहे।

(नवग्वैः सखिभिः तां अन्वर्तिष्ये) जिनमें नौ गौवों अर्थात् सब इंद्रियोंका समर्पण किया जाता है, उन यज्ञोंके साथ और जो हमारे मित्र जन उन यज्ञोंमें भाग लेते हैं उनके साथ यज्ञमय जीवन बनाकर उस स्त्रीके साथ मैं सब व्यवहार करता हूं। अर्थात् मैं स्वयं और अपनी धर्मपत्नी मिलकर हमारा सब जीवन हम यज्ञरूप बनाते है। जो जो कर्म हम करते है वह यज्ञरूप करते है। इससे हम दोनो यज्ञरूप बनेंगे और अन्तमें हमारे यज्ञसे यज्ञस्वरूप परमेश्वर प्रसन्न होगा और हम कृतकृत्य बनेंगे।

(विद्वान् पाशान विचृतत) स्त्री पुरुष विद्वान् होकर अपने पाशोंको काटें और बंधसे मुक्त हो। सब प्रयत्न बंधनसे मुक्त होनेके लिये होने चाहिये। मनुष्य अनेक प्रकारके प्रलोभनोंमें फंसता है, और स्वयं अपने लिये बंधन निर्माण करता है और उन बंधनोंसे बंधा जाता है। ये सब बंधन काटने चाहिये और मुक्त होना चाहिये। यह मुक्त होने का ज्ञान जिसको होता है उसी को ज्ञानी अथवा विद्वान् कहते है। मनुष्य—स्त्री या पुरुष—इस मुक्तिकी विद्याको प्राप्त करें और उसकी

यह कितनी भारी जिम्मेवारी रखी है । पुरुषको अपनी मुक्ति सिद्ध करनी चाहिये और अपनी स्त्रीको भी मुक्तिके पथपर रखना चाहिये । स्त्रीके योग्य अथवा अयोग्य आचरण का उत्तरदातृत्व पुरुषपर है । स्त्रीशिक्षाका सब भार पुरुषपर है । यदि स्त्री विद्याहीन है तो उसका दोष पुरुषपर है । पाठक विचार करें और अपना इस विषयका कर्तव्य जान करके उसको पूर्ण करें । यही अगले ५९ मंत्रमें कहा है–

(इमां नारीं सुकृते दधात । मं० ५९) इस स्त्रीको पुण्यमार्ग में रखो, इस से पुण्यकर्म होंगे ऐसी व्यवस्था करो । यदि स्त्री बुरा व्यवहार करती है, तो पुरुषने उसको सुशिक्षा नहीं दी है यह बात सिद्ध होगी । पुरुषका यह कर्तव्य है कि वह स्त्रीको अपने कर्तव्यका आवश्यक ज्ञान करा देवे । और स्त्रीको धर्मशील बना देवे । (धाता अस्यै पतिं विवेद) परमेश्वरने इस स्त्रीके लिये पति प्राप्त करा दिया है, इसके पश्चात् इस स्त्रीकी शिक्षाका उत्तरदातृत्व पतिपर है । वह पति (रक्षः अप हनाथ) राक्षसी भावोंका नाश करे । इस स्त्रीमें जो आसुरी वृत्तियां हैं उनका नाश करना पतिका कर्तव्य है । पति स्त्रीको ऐसी सुशिक्षा देवे कि जिससे स्त्रीके अन्दर की सब आसुरी वृत्तियां दूर हों और उसमें दैवी वृत्तियां स्थिर होजांय और वह सचमुच " देवी " बने । इस स्त्रीको (उत् यच्छध्वं) उच्च बनाने के लिये अपने आपको सज्य रखो, तैयार रखो, अपने शस्त्रास्त्र ऊपर उठाओ, उसका उत्तम रक्षण करो, उसको उत्तम धर्मनियम में रखो । जिन प्रयत्नोंसे स्त्रीकी सच्ची उन्नति हो सकती है वे सब प्रयत्न करो । स्त्रीकी उन्नतिका भार छोटेपनमें पितृकुलपर और विवाह होनेके पश्चात् पतिकुलपर है । इसकी उन्नति करनेके लिये हि (धाता पतिं विवेद) ईश्वरने इसको पति प्रदान किया है, अतः पतिका कर्तव्य है कि वह अपनी धर्मपत्नीकी सर्वांगीण उन्नतिके लिये यत्न करे ।

(स्वा सुमंगली अस्तु । मं० ६०) वह स्त्री उत्तम मंगल करनेवाली बने, मंगल की मूर्ति बने, उस स्त्रीके कारण घरका और कुलका मंगल हो, इस स्त्री की मंगलमूर्ति देखकर सब लोग आनंदित हों । इसकी उन्नति के लिये सब देवताएं (भग, धाता, त्वष्टा आदि) सहायता दें ।

बरातका रथ ।

बरातके रथका वर्णन पुनः मंत्र ६१ में है । यह रथ उत्तम (सु किंशुकं) फूलोंसे सुशोभित किया जावे, तथा उत्तम सुंदर लाल पुष्पोंसे सजाया जावे । (विश्वरूपं)

चोरीका अन्न न खाओ।

इस योग्यता को प्राप्त करनेकी इच्छा है तो यह नियम करना चाहिये कि (न स्तेयं अद्मि) मैं चोरीका अन्न नहीं खाता हूं। सब पाठको को विचार करना चाहिये कि हम जो अन्न खाते हैं वह अन्न चोरीका है या नहीं। यहां पाठक विचार करेंगे तो उनको पता चलेगा कि प्रायः लोग जो अन्न खाते है वह स्वकष्टार्जित नहीं होता है। वह चोरीका होता है जिसपर दूसरे का अधिकार होता है। यदि हम उसको भक्षण करेंगे तो वह चोरी है। यह चोरी घरमे भी होगी और समाजमें भी होगी। यदि कोई पदार्थ घरमें लाता है और वह सब मनुष्योंको न बांटते हुए अकेला ही उसको खाता है तो वह चोरीका अन्न खाता है। अपने ग्राममें जो अन्न उत्पन्न होता है वह ग्रामके सब लोगोंके लिये होता है। यदि ग्रामके कई लोगोने अपने पास अन्नसंग्रह अधिक किया और इस कारण ग्रामके कई लोग भूखे मरने लगे, तो निःसन्देह अधिक संग्रह करनेवाले चोरीका अन्न खाते है। इस तरह विचार करनेपर स्तेयकी व्याप्ति कितनी है इसका विचार पाठकोंको हो सकता है। यह सब विचार करके कुटुंबियोंको निश्चय करना चाहिये कि हम चोरीका अन्न खाते है वा यज्ञका अन्न खाते है। मनुष्य को उचित है कि वह यज्ञशेष अन्न खावे और पवित्र बने। जो मनुष्य यज्ञ न करके स्वयं अपने लियेहि पकाता है वह चोर है। मनुष्य मात्रको जो शिक्षा मिलनी चाहिये, वह यह है।

येन त्वा अवध्नात्. पाशात् त्वा प्रमुञ्चामि॥ (मं० ७८)

" जिस बंधनसे तुझे बांध रखा था, उस बंधनसे तुझे मैं मुक्त करता हूं। " यह वचन पति अपनी धर्मपत्नीसे कहता है, और उसको विश्वास देता है कि मेरी सहायतासे तू अब (उरुं लोकं) विस्तृत लोक को प्राप्त हुई है. तेरे लिये विस्तृत कर्मभूमि यहां प्राप्त हुई है और (अत्र तुभ्यं सुगं पंथां कृणोमि) यहां तेरे लिये सुगम मार्ग मैं बना देता हूं। इस मार्ग से तू जायगी तो तेरा कल्याण होगा। यह गृहस्थाश्रम एक बडाभारी अतिविस्तृत कार्यक्षेत्र है. पुरुषार्थी मनुष्य यहां पुरुषार्थ करके अपना भाग बढा सकता है। यहां अनेक मार्ग है परंतु यहां सरल मार्ग ही मनुष्यको आक्रमण करना योग्य है। अस्तु। पतिको उचित है कि वह अपनी स्त्रीको सुशिक्षा देवे, उनको सीधे मार्गसे चलावे और उसके बंधन तोडनेके लिये जो जो पुरुषार्थ करने आवश्यक हैं वे सब स्त्रीसे करावे। पाठक यहां विचार करें कि पुरुषपर

द्वितीय सूक्तका विचार।

द्वितीय सूक्तमें भी विवाहकाही विचार है। पहिले चार मंत्रोंमें कुमारिकाके चार पति होनेका उल्लेख है। इस विषयमें इस तरह स्पष्ट कहा है-

सोमस्य जाया प्रथमं गंधर्वस्तेऽपरः पतिः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ (मं० ३)

" कुमारिकाका पहिला पति सोम, दूसरा पति गंधर्व, तीसरा अग्नि, और चौथा मनुष्य-योनिमें उत्पन्न (अर्थात् मनुष्य) है " यहां चार पति कौमार्यमें होनेका उल्लेख है। ऋग्वेदमें यह मंत्र इस प्रकार है-

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ ४० ॥
(ऋग्वेद १०। ८५)

इस मंत्रका अर्थ वैसाही है जैसा ऊपर दिया है। इस कन्याको सोमने पहिले प्राप्त की, उससे गंधर्वने प्राप्त की, तीसरा पति अग्नि है और चतुर्थ मानव है। इस मंत्रमे चतुर्थ पतिको ' मनुष्यज ' कहा है, इस बातसेहि पूर्वके पति मनुष्य योनिके नहीं है इस की सिद्धि होती है। अतः यद्यपि इस मंत्रमें चार पतियोंका उल्लेख है, तथापि यह मंत्र नियोग अथवा बहुपतित्वकी सिद्धता करता है ऐसा मानना असंभव है। क्योंकि इसकी सिद्धता होनेके लिये तीनो पतिभी ' मनुष्य-ज ' होने चाहिये। यहां स्पष्ट मंत्रमें कहा है कि पहिले तीन पति मनुष्यज नहीं है, केवल चतुर्थ पतिहि मनुष्यज है। इस कारण इससे नियोग अथवा पुनर्विवाह सिद्ध होना असंभव है।

चतुर्थ मंत्रमें स्पष्ट कहा है कि सोमने इस कन्याको गंधर्वके पास दी, गंधर्वने अग्निके सुपुर्द की और अग्निने मानवी पतिके हाथमें दे दी। इसलिये पहिले तीनों पति दैवी शक्तिके केन्द्र है यह सिद्ध है। मातापिताके घर रहती हुई कन्या बाल्य अवस्थामें इन दैवी शक्तियोंसे पाली जाती है, इन देवतोंके आधीन रहती है किंवा इनका प्रभाव उसपर रहता है। जब विवाहहोम होता है, तब वह हवनाग्नि इस कन्याको मानवी पतिके हाथमें देता है।

कई उन्मत्त लेखक इस मंत्रपर ऐसी विचित्र कल्पना कर बैठे हैं, और लिख भी लिख चुके हैं कि पूर्वकालमें कन्याका विवाह होनेके पूर्व उसको सोम, गंधर्व और अग्नि संज्ञक जातियोंके पुरुषोंके पास रखा जाता था और तत्पश्चात् वह कन्या उनकी अनुमतिसे मानव को प्राप्त होती थी !! सचमुच यह कल्पना विचित्र और हास्यास्पद

अनेक प्रकार की सजावट उसपर की जावे, (हिरण्य-वर्ण) सुवर्णके रंगका वह रथ हो, उत्तम चमकदमक उसपर हो. (सुवृतं सुचक्रं) उत्तम झालरें लगी हों और उसके चक्र उत्तम हों। इस तरह का सजासजाया रथ (वहतुं) बरातके काममें लाया जावे। यह बरात पतिके घर पहुंचे और वहांके स्थानको (अमृतस्य लोकं कृणु) अमर लोक, सुखपूर्ण स्थान बनावे। धर्मपत्नी अपने पतिके घर पहुंचकर वहांका सुख बढावे। पतिके घर धर्मपत्नी (अ-भ्रातृ-घ्नी) भाइयोंका पालन करनेवाली, भाइयोंका नाश न करनेवाली, (अ-पशु-घ्नी) पशुओंका पालन करनेवाली, गाय घोडे आदि पशुओंका योग्य प्रतिपाल करनेवाली, (अ-पति-घ्नी) पतिका पालनपोषण करनेवाली, पतिको कष्ट न देनेवाली, पतिका सुख बढानेवाली, पतिका घातपात न करनेवाली, (पुत्रिणी) पुत्रोंसे युक्त, संतानसे युक्त, ऐसी स्त्री पतिके घर इस बरातसे प्राप्त हो।

यह स्त्री (देवकृते पथि) देवोंके बनाये सन्मार्गमें जाना चाहती है, अतः इसका विवाह हुआ है, इस कारण इस (कुमार्य मा हिंसिष्ट) इस समयतक कुमारी रही हुई यह नववधू है, इसको यहां पतिघरमें किसी प्रकारका कष्ट न हो। (वधूपथं स्योनं कृण्मः) इस वधूका मार्ग हम सुखदायक करते है। इनका चलनेका जो देवमार्ग है वह इस वधूके लिये सुखदायी हो, ऐसा प्रबंध हम करते है। (शालायाः द्वारं स्योनं कृण्मः) इस स्त्रीके लिये गृहप्रवेशके समय पतिके घरका द्वार हम सुखमय बनाते हैं। इस स्त्रीको पतिगृहमें उत्तम सुख प्राप्त हो और वह अपनी उन्नति यथायोग्य रीतिसे प्राप्त करे, निर्विघ्नतासे यह देवी उत्कर्षको प्राप्त हो।

इस स्त्रीको (अपरं पूर्वं मध्यतः सर्वतः ब्रह्म युज्यतां । मं० ६४) आगे, पीछे, बीचमें और सब ओरसे ज्ञान प्राप्त हो। ज्ञानसेहि मनकी उन्नति होती है। यहां 'ब्रह्म' शब्दके अर्थ— "ईश्वर, मंत्र, वेदज्ञान, यज्ञ, भक्ति, तप, धर्म, पवित्रता, ब्रह्मचर्य, धन, शब्द" ऐसे होते है। स्त्री पतिघरमें जहां जावे वहां ये पदार्थ उपस्थित हो, इनसे विमुखता कभी न होने पावे। यह धर्मपत्नी (अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य) व्याधिरहित दिव्य नगरीको अर्थात् पतिके स्थानको प्राप्त होकर, पतिगृहमें [illegible] रहकर, नीरोगताके साथ अपना सब व्यवहार करे। (शिवा स्योना पतिलोके विराज) शुभमंगलमयी गृहदेवता होकर पतिके स्थानमें विराजती रहे। यह स्त्री पतिके घरकी शोभा बढावे, सुखकी वृद्धि करे और सबके मंगलका हेतु बने ॥

यहांतक प्रथम सूक्तके मंत्रोंका विचार किया। अब द्वितीय सूक्तका विचार करते है—

होती है। उत्तम विद्या प्राप्त होनेपर विवाहका विचार करना चाहिये। बुद्धि सुसंस्कृत होनेपर विवाह हो। (हृत्सु कामाः अरंसत। मं० ९) हृदयोंमें कामने अपना स्थान जमाया है। स्त्री और [illegible] प्राप्त हुए है, तब विवाह करना चाहिये। हृदयमें काम का बीज उत्पन्न होना चाहिये। (वाजिनी वसू) अन्न और धनसे युक्त होना चाहिये। तत्पश्चात विवाह हो। विद्या प्राप्त होनेके पश्चात धन प्राप्त कर प्रौढ आयुमें विवाह का विचार करना चाहिये। (मिथुना शुभस्पती गोपा अभूतं) साथ साथ रहनेकी इच्छा करनेवाले, उत्तम पालक संरक्षक जन होंगे, तब विवाहका विचार करें। (अग्रे स्थः अग्रे मनः) आगे अर्थात् श्रेष्ठ मनवाले वधूवर हों। तब विवाहका समय होगा। पाठक इन शब्दोंका अच्छी प्रकार मनन करें और विवाहका समय जानें।

विवाहके समय स्त्री भी (मन्दमाना। मं० ६) आनन्दप्रसन्न, आनन्दित चित्तवाली, (शिवेन मनसा) शुभ मनवाली, कल्याणपूर्ण विचारसे युक्त हो। (सुवर्चीरं वचस्यं रयिं) सब प्रकारके वीरता के भाव जिसमें है, उत्तम वक्तृत्व जिसमें है, इस तरहकी शोभा धारण करे और (दुर्मतिं हतं) दुष्ट बुद्धिका नाश करे। इस तरह स्त्रीकी योग्यताके विषयमें निर्देश हमें मिलते है।

अर्थात् विवाहके समय स्त्री और पुरुष विद्या धन बल सुविचार आदि गुणोंसे युक्त होने चाहिये। कुटुंबका सब भार सिरपर लेनेकी शक्ति उनमें चाहिये। इस निर्देशका विचार करनेपर पता चलता है कि वधूवर प्रौढ आयुमें हि विवाह करें अर्थात् बालकपनमें विवाह न हो। वैवाहिक मंत्रोका अर्थ और मंत्रोक्त प्रतिज्ञाका भाव समझने योग्य बुद्धिवाले वधूवर हो। वैदिक मंत्रोंमें मातापिताका अधिकार कुमार–कुमारिकाओंपर पूर्ण है, तथा कन्यादान भी वेदमें कहा है। इससे कुमार–कुमारोंका स्वयंवर वेदको अभीष्ट नहीं है यह बात सिद्ध होती है। स्वयंवरका उल्लेख वेदमें किसी स्थानपर स्पष्टतया नहीं है और कन्यादान–पद्धतिमें स्वयंवरको स्थान मिलना असंभव है। जहां स्वयंवर हो वहां कन्याका दान कैसा हो सकता है? कन्यादान की प्रथा वैदिक होनेके कारण मातापिताका अधिकार कुमार कुमारीपर है और इस कारण मातापिताकी अनुमतिसे हि वैदिक विवाह हो सकता है। अतः जो समझते हैं कि वेदमे युरोपीयनोंके समान स्वयंवर की रीति है और जो स्वयंवरको वैदिक विवाह कहते है और जो "प्रथम दर्शनसे हि प्रेम" होनेकी संभावना वैदिक विवाहमें मानते है वे सब वैदिक धर्मके उच्छेदक हैं। अस्तु। इस तरह वैदिक विवाहमें कुमार-

है । इसमें तो व्यभिचार ही धर्म हुआ है ! परंतु हमने जहां तक देखा है वहां तक हमें सोम और अग्नि नामकी कोई जाती थी. इस विषयमें प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ । गंधर्व जाती थी । परंतु यहां एकसे काम न चलेगा । अतः हमें यह कल्पना तिरस्कारार्ह प्रतीत होती है ।

इसके अतिरिक्त संपूर्ण वैदिक वाङ्मयमें स्त्रीको इतना स्वातंत्र्य दिया नहीं है जिससे वह व्यभिचार कर सके । बालकपनमें वह मातापिताके आधीन रहेगी. विवाहोत्तर वह पतिके आधीन रहेगी । इस प्रकार अन्य पुरुषोंके पास जाकर रहनेके लिये उसको समयही नहीं है । वेदमें किसी भी अन्य स्थानमें इस तरह विवाहके पूर्व तीन पति होनेका निर्देश भी नहीं है. अतः यह भयानक कल्पना असत्य है । जो इसको करते हैं उनके मस्तिष्कमें कुछ विकार हुआ है ऐसाही हमें प्रतीत होता है । क्यों कि मंत्रमें स्पष्ट है कि मनुष्य पतिके पूर्व ये तीन पति अमानुष हैं अर्थात् दैवत हैं । देवताओंका स्वामित्व किसी भी प्रकार दोषमय नहीं हो सकता । जैसा कोई भक्त अपने उपास्य देवको अन्न समर्पण करके पश्चात् वह अन्न स्वयं भक्षण करता है. उसमें उच्छिष्ट भक्षणका दोष नहीं होता. क्यों कि वह अन्न समर्पण एक भावनाकी बात है । इसी तरह मातापिता कन्याके बालकपनमें समझे की अपनी कन्या इस समय सोमदेवताके प्रभावमें है, पश्चात् वह गंधर्व देवताके प्रभावमें है. तदनंतर वह अग्निदेवताके प्रभावमें है । तत्पश्चात् वह मानवी पतिके आधीन होगी । कुमारीका जीवन इस प्रकार देवतामय होना चाहिये । देवताओंके समीप होनेका अर्थ पवित्राचरण अवश्यमेव होनेका है । यदि कोई मनुष्य राजाके समीप किंचित् काल रहेगा. तो वह उस समय अधिक पवित्र रहेगा. इसी तरह जब यह कन्या इन देवोंके पास रहेगी तो उनकी पवित्रता अधिक होनेमें कोई संदेह ही नहीं है । देवताएं सर्वज्ञ होती हैं। अतः हमारा पाप उनसे छिप जाना असंभव है, इस सब कथन का तात्पर्य यह है कि ये तीन दैवी पति केवल मनोभावनाके बलवृद्ध्यर्थ हैं । चतुर्थ मानवी पति हि सच्चा पति है । अर्थात् इस मंत्रपर जो अनेक पतिकी कल्पना की जाती है. वह निराधार है ।

विवाहका समय ।

अगले दो मंत्रोंसे विवाहके समय वधू और वर की आयु कितनी होनी चाहिये. अर्थात् कितनी आयुमें विवाह हो. इसका निर्णय हो सकता है । (सुमतिः आगन् । मं० ५) उत्तम मति आगई है । इससे विवाहके संस्कार बुद्धिपर होनेकी बात निद्

हों। दुराचारी अनेक प्रलोभन बता कर मनुष्य को धोखा देते हैं, ठगाते हैं, फंसाते हैं, लूटते हैं और अपना मतलब साधते हैं। अतः ऐसे दुष्टोंके संबंधसे नवविवाहित वधूवर दूर रहें इतनाही नहीं परंतु अन्य लोगभी दूर रहें। यह सब सामान्य उपदेश है। (अरातयः अप द्रान्तु) शत्रु दूर भाग जावे, अनुदार मनुष्य जो इन नवविवाहित स्त्रीपुरुषों को फंसानेके इच्छुक हों वे दूर हों। इनसे ये दंपति सुरक्षित रहें। तथा ये स्त्रीपुरुष (सुगेन दुर्गं अतीतां। मं० ११) सुखपूर्वक सब कठीन प्रसंगोंसे मुक्त हो जांय।

द्वादशवें मंत्रमें प्रार्थना है कि "सबका उत्पत्तिकर्ता सवितादेव इस सब विश्वके रूपको इस पतिपत्नी के लिये सुखदायक बनावे।" अर्थात् यह सब विश्व इस दंपतिको सुख देवे, इससे दुःख न होवे। यहां पाठक स्मरण रखें कि जगत् के सब पदार्थ सुखदायक भी हो सकते हैं और दुःखदायक भी हो सकते हैं। अपने व्यवहार पर सुख या दुःखकी प्राप्ति अवलंबित है। अतः वधूवर ऐसे धार्मिक सुनियमोंसे व्यवहार करें कि जिससे उनको सदा सुख होता रहे और दुःख कदापि न हो।

विवाहमें ईश्वर का हाथ।

तेरहवें मंत्रमें (धाता इमं लोकं अस्यै दिदेश। मं० १३) विधाताने यह पतिका स्थान इस वधूके लिये निर्दिष्ट किया है, ऐसा कहा है। इसका सरल आशय यह है कि जब स्त्री या पुरुष उत्पन्न होता है, तब उसके लिये विवाहकी योजना विधाताद्वारा निश्चित होती है। विधाताके संदेशको लेकर जो चलते हैं, उनके लिये यथायोग्य धर्मपत्नी मिलती है। जो स्वयं अपना हठ बीचमें लाते है, वे कष्ट भोगते है। जो ब्रह्मचर्य आजन्म पालते है उनका वह हेतु भी ईश्वरीय कृपासेहि सिद्ध होता है। जो विवाहेच्छुक होते हैं उनको उचित है कि वे अपना आचरण धर्मानुकूल रखें, उत्तम सुनियमोंका पालन करें और समयकी प्रतीक्षा करें। विधाताके नियमानुसार सुयोग्य वधूके साथ अवश्य संबंध होगा। पाठक यहां उपहास न करें। धर्मानुकूल संयमपूर्वक व्रती मनुष्यका सब योगक्षेम ईश्वरीय नियमानुसार चलता है। जिसका परम पिता एकमात्र सहाय्यक सखा हुआ उसको किसी बातकी न्यूनता नहीं होगी।

(इयं शिवा नारी अस्तं आगन्) यह शुभ आचारवाली स्त्री पतिके घर आगयी है। यह शुभ आचारवाली स्त्री ऐसे ही धर्मात्मा पुरुषको प्राप्त होती है और

कुमारिकाओंका प्रौढ और सुमनस्क होना सिद्ध है. तथापि मातापिताकी संमति भी उतनीहि प्रबल है यह बात विशेषतया ध्यानमें धारण करना चाहिये।

आगे मंत्र ७ से ९ तक नवविवाहित वधूवरोंको अभीष्टचिंतनपूर्वक आशीर्वाद है। राक्षस दुष्ट दुराचारियोंसे वधूकी रक्षा होनेकी प्रार्थना सातवे मंत्रमें है। सब मार्ग वधूके लिये सुरक्षित होनेका आशीर्वाद अष्टम मंत्रमें है। और नवम मंत्रमें वधू-वरोंको गंधर्व अप्सरस् देवी आदि सुखदायक हों और इन वधूवरोंकी कोई हिंसा न करें यह इच्छा है।

यज्ञसे यक्ष्मनाश।

दशम मंत्रमें यज्ञसे यक्ष्मरोगका नाश होनेका संदेश बडी काव्यमयी वाणीसे दिया है। उसका विचार किंचित् विशेष विचारके साथ करना उचित है।

> ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु।
> पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥ (मं० १०)

" जो (यक्ष्मा) यक्ष्म रोग (जनान् अनु यन्ति) मनुष्योंके साथ साथ चलते हैं. वे (वध्वः चन्द्रं वहतुं) वधूके तेजस्वी वरातके रथके साथ आगये हों तो (तान्) उन यक्ष्म रोगोंको (यज्ञियाः देवाः नयन्तु) यज्ञके देव दूर ले जावें. अर्थात वधू या वरके साथ आने न दें। " यज्ञके देव अग्नि वनस्पति आदि हैं. जिनसे यज्ञ होता है और यज्ञमें जिनका नामनिर्देश हुआ करता है। वे सब देव मनुष्योंके साथ आने [illegible] यक्ष्म रोगोंको दूर करें। इस मंत्रके मननसे यह बात सिद्ध होती है कि जहां मनुष्यों की भीड होती है वहां रोगी मानवोंके साथ यक्ष्मादि रोगोंके बीज आना संभव है। बरातमें जहां सैकडों आदमी इकट्ठे होते हैं वहां किसी [illegible] रोगका बीज [illegible] होना भी असंभव है। अतः ऐसे भीडके प्रसंग में [illegible] रोगोंका [illegible] संभावना होती है. इस लिये ऐसे प्रसंगमें [illegible] करना योग्य है। जहां जहां [illegible] वहां वहां यही नियम ध्यान में रखना योग्य है।

शत्रु दूर हों।

ग्यारहवे मंत्रमें शत्रुको दूर [illegible] है। [illegible] करनेका उपाय [illegible] है। (परिपंथिनः मा विदन् [illegible]

अंतःकरणमें रखे। और (भगस्य सुमतौ असत्। मं० १५) अपने पतिके उत्तम मतिमें अपने आपको रखे, अर्थात् उसके विषयमें उत्तम विचार मनमें धारण करे और उसके मनमें अपने विषयमें उत्तम विचार रहे ऐसा अपना आचरण करे। पति भी अपनी स्त्रीके विषयमें बडा आदर रखे। इस तरह पतिपत्नी परस्परका सत्कार करती हुई गृहस्थधर्मका पालन करें।

पतिपत्निकी व्यवहारशैली ऐसी हो कि उनमें आपसमें कभी झगडाफिसाद न हो, शान्तिका भंग न होवे। दोनों बडे प्रेमके साथ मिलजुलकर रहे। (अदुष्कृतौ) दोनों पति और पत्नी बुरा कामधंदा दुराचार कभी न करें, सदा अच्छे शुभ कर्मोंमें दत्तचित्त रहें, [वि-एनसौ] वे दोनों सदा निष्पाप रहें, कभी प्रमादसे भी पाप-मार्गमें न प्रवृत्त हों, [अशुनं मा आरतां। मं० १६] अशुभ व्यवहार कभी न करें। दोनों मिलजुलकर परस्परको धर्म करनेमें सहाय्यता देते हुए अपने उन्नतिके मार्गका आक्रमण करे।

पतिके घरमें पत्नीका व्यवहार।

अब पतिके घरमें स्त्रीका निवास स्थिर हुआ। गर्भधारणा होनेपर वधूका दिल पतिघरमें जम जाता है। तबतक वह अपने पिताके घरका स्मरण करती है। जब गर्भधारण होता है तब पतिके घरका प्रेम बढता है। ऐसी अवस्थामें वह नारी पतिके घरमें किस तरह व्यवहार करे इस विषयमें उत्तम उपदेश मंत्र १७ से प्रारंभ होता है। हरएक स्त्री को ये मंत्र कंठमें धारण करने चाहिये।

[अ-घोर-चक्षु] क्रूर दृष्टि करनेवाली स्त्री न बने, सदा सौम्य आनंद प्रसन्न दृष्टिसे अपने घरके कार्य करती रहे, किसी पर क्रोध न करे, वक्र तेढी दृष्टिसे किसी-की ओर न देखे, [अ-पति-घ्नी] पतिका घातपात, अपमान तथा विरोध कभी न करे, सदा पतिके हितमें दक्ष रहे; [स्योना शिवा] स्त्री सबको सुख देवे, सबका हित करे, सबका कल्याण करनेके कार्यमें दत्तचित्त रहे; [शग्मा] सदा शुभ कार्य करे, सर्वहितकारी कार्यमें अपने मनकी लगन रखे, [सु-यमा] स्त्री अपने पतिके घरमें उत्तम धर्मनियमोंके अनुकूल आचरण करे, कभी अनियमका आचरण न करे, [सु-सेवा] गुरुजनोंकी सेवा उत्तम रीतिसे करे, सेवा करनेवालोंपर क्रोध न करे, प्रसन्नतासे सेवकोंके साथ बर्ते, [वीरसूः, प्रजावती] वीर संतान उत्पन्न कर-नेके लिये जो जो पथ्य व्यवहार करना आवश्यक हो, वह करती रहे, अपने मनके

उसका गृहस्थाश्रम सुखपूर्वक चलनेमें सहायता होती है। धर्मपत्नी शुभ आचारवाली मिलना एक भाग्यका लक्षण है और वह धर्माचारसेहि सिद्ध होता है।

(देवाः प्रजया वर्धयन्तु । मं० १३) सब देव इस दंपतिको उत्तम संतानके साथ बढावें, सुसंतति देवें, अन्य सब प्रकारका भाग्य देवें और हरएक प्रकारका सुख इस दंपतिको मिले । यह सब ईश्वर भक्तिसेहि प्राप्त होता है। विधाताकी कृपासेहि यह होता है।

गर्भाधान ।

विवाहके पश्चात् गर्भाधान प्रकरण आना स्वाभाविक और क्रमप्राप्त है। उस संबंधका निर्देश १४ वे मंत्रमे है। (आत्मन्वती उर्वरा नारी) आत्मिक बलवाली, सुपुत्र या सुसंतान उत्पन्न करनेवाली स्त्री हो। आत्मिक बलवाली होनेसे कठिण प्रसंगमे जिसका धैर्य नष्ट नही होता, ऐसी स्त्री होवे। 'उर्वरा' शब्द उपजाऊ अर्थमें यहां है। जैसी भूमि उत्तम उपजाऊ होती है, वृक्षवनस्पतियां रसयुक्त उत्पन्न होती हैं, वैसीहि स्त्री भी उत्तम हृष्ट पुष्ट सुमतियुक्त संतति उत्पन्न करनेवाली हो। रोगी संतति उत्पन्न न हो। यह सब स्त्री के धर्मानुकूल आचरण करनेपर निर्भर है। जैसा आयुर्वेदमे कहा है वैसा आचरण स्त्रीपुरुष करेंगे, तो उत्तम संतति हो सकती है।

(तस्यां नरो बीजं वपत) ऐसे सुगुणी कुलवती आत्मबलशालिनी उत्तम संतान उत्पन्न करनेमे समर्थ स्त्रीमें ही पुरुष गर्भाधान करे। किसी अन्य स्थानमें वीर्यका निक्षेप न करे। धर्मपत्नीको छोडकर किसी अन्यस्थानमे वीर्यका नाश करना सर्वथा अयोग्य, अधार्मिक और अवनतिकारक है। पुरुष (वृषभः) बैलके समान वीर्यवान् हो। वृषभ, वृषण ये शब्द वीर्यदर्शक है। वीर्यवान् सुगुणी पुरुष ही गर्भाधान करे। रोगी, दुर्गुणी, निर्वीर्य पुरुष गर्भाधान करेगा तो उसका संतान वैसाही क्षीण और दीन होगा। अतः यह सावधानता आवश्यक है।

स्त्री अपने पतिके घर (विराड्) विशेष तेजस्विनी होकर अपने सब व्यवहार करे, (सरस्वती) विद्यादेवी की मूर्ति बनकर रहे अर्थात् विदुषी कहलवाने योग्य ज्ञानवाली बने। (सिनीवाली) विविध अन्नरस पास रखनेवाली गृहस्वामिनी बने। अपना पति (विष्णुः इव) साक्षात् विष्णुभगवान् ही है और मै उसकी धर्मपत्नी हूं ऐसा भाव मनमे रखे। जैसा विष्णु सब जगत् का पालनहारा है, वैसा मेरा पति, अपने परिवारका उत्तम पालक है यह विचार मनमें रखकर पतिके विषयमे बडा आदरका भाव अपने

हे निर्ऋते! प्रपत, इह मा रंस्था। अभिभूः स्वात् गृहात्।
त्वा ईडे। [मं० १९]

वधू और वर कहे कि "हे दरिद्रते! हमसे दूर भाग जा, यहां हमारे घरमें न रह, मैं तुम्हारा पराभव करूंगा। और अपने घरसे तुम्हें निकाल दूंगा, यह सच सच कहता हूं।" इस प्रकारके निश्चयपूर्ण वाक्य दरिद्रतासे कहे जांय। इसका तात्पर्य यह है कि पति और पत्नी अपने घरका दारिद्र्य दूर करनेका निश्चय करें और तदनुसार प्रयत्न करें।

बडोंको नमस्कार।

बीसवें मंत्रमें कहा है कि, जब वधू अग्निकी पूजा करे, और अपनी ईश्वरोपासना समाप्त करे, तब वह (पितृभ्यः नमस्कुरु। मं० २०) अपने घरके बडे स्त्री पुरुषोंको नमस्कार करे और पश्चात् अपने कार्यमें लगे। यहां एक बडाभारी वैदिक आदर्श दर्शाया है। स्त्री प्रातःकाल उठे, शरीरशुद्धिके स्नानादि कर्म करे, ईश्वर उपासना हवन आदिसे निवृत्त होकर अपने घरके बडे लोग अर्थात् पति, पतिके मातापिता, उसके बडे भाई तथा अन्यान्य गुरुजन जो भी घरमें होंगे उनको यथायोग्य रीतिसे नमस्कार करे, उनका आशीर्वाद लेवे और पश्चात् अपने कार्यमें लगे। यह नियम न केवल नव वधूके लिये हि उत्तम है, परंतु यह घरके सब कुमार कुमारिकाओंके लिये भी अत्यंत उत्तम है। हमें बहुत आशा है कि प्रत्येक आर्यके घरमें यह प्रणाली शुरू हो और इस तरह गुरुजनोंको नमस्कार करना एक प्रतिदिनका आवश्यक कर्म समझा जाय।

इस तरह गुरुजनोंको सबेरे नमस्कार करना यह एक (शर्म वर्म एतत्। मं० २१) सुखदायक और संरक्षक कवच है। यह रीति अनेक आपत्तियोंसे कुमारों और कुमारिकाओंकी रक्षा करती है। अतः इस पद्धतिका प्रचार आर्यगृहोंमें होना युक्त है।

[सूचना— मंत्र १५ वें का दुसरा भाग यहां मंत्र २१ में पुनः आगया है।]

नववधू ईश्वर उपासना और अग्निमें हवन करनेके समय चर्मपर-प्रायः कृष्णाजिन पर- बैठे और अपना उपासनाका कार्य करे। (देखो मंत्र २२-२४)

रोहिते चर्मणि उपविश्य सुप्रजा अग्निं सपर्यतु। (मं० २३)

"कृष्णाजिनपर बैठकर उत्तम प्रजा निर्माण करनेवाली स्त्री अग्नि की उपासना करे।" अग्निकी उपासना करनेका कारण वेदमंत्रने इस तरह दिया है—

वीर भावोंसेहि अपने संतान वीरप्रभावयुक्त हो सकते हैं ऐसा मानकर अपने मनमें वीरताके विचार धारण करे, और बालकपन मे अपने संतानोंको वीरताकी शिक्षा देती रहे। इस तरह अपने संतान सुवीर होनेके लिये जो जो उपाय करना आवश्यक हो वह करती जाय। [देवृ—कामा. अ-देवृ-घ्नी] अपने पतिके भाइयोंका हित करे. उनका कभी द्वेष न करे. देवरका कभी घातपात न करे. [सुमनस्यमाना] जिसकी अन्तःकरणकी भावना उत्तम है, जिसकी मनोवृत्ति उत्तम है, ऐसी स्त्री हो. अर्थात् विद्या और सुनियमोंके द्वारा स्त्री अपना मन उत्तम शांत-गंभीर और विनययुक्त बनावे और घरमें सबके मन अपनी ओर आकर्षित करे। [सुवर्चाः] स्त्री उत्तम तेजस्विनी बने, घरकी शोभा बनकर पतिके घरमे रहे. [पशुभ्यः शिवा] पशु आदिकोंका भी हित गृहिणी करे. पशुओंको घास दानापानी मिला है या नहीं. उनका आरोग्य कैसा है. इत्यादि विचार कर इस संबंधमे जो आवश्यक कर्तव्य हो वह करे। [गार्हपत्यं सपर्य] गार्हपत्याग्निमे प्रतिदिन हवन करे. ईश्वर उपासना करे।

आगे मं० २६ और २७ में भी यही विषय पुनः आगया है। उसमें इसी तरह गृहपत्नीके कर्तव्य शब्दोंद्वारा इसी तरह कहे है. स्त्री (सुमंगली) उत्तम मंगल करने-वाली. शुभमंगल कामनावाली. (प्र-तरणी) दुःखसे पार करनेवाली. (सुसेवा) उत्तम सेवा करनेवाली. उत्तम सेवनीय. [पत्ये श्वशुराय शंभूः] पतिका और ससुरका हित करनेवाली, [श्वश्र्वै स्योना] सासका सुख बढानेवाली. [[illegible]. [illegible]. [illegible]. अस्यै सर्वस्यै विशे स्योना] ससुर. घरवाले. पति और सब पारिवारिक [illegible] सुख देनेवाली गृहिणी हो।

इन उपदेशको ध्यानमे धारण करके जो स्त्री अपने पतिके [illegible] वह सबके आदरके योग्य निःसन्देह होगी [illegible] उत्तम आदर्श इस तरह यहां दिया है। स्त्रीका [illegible] इसी काण्डके प्रथम सूक्तके मंत्र ४२ से ४८ तकके [illegible] यहां अवश्य देखे। साथही साथ प्रथम [illegible] देखे और प्रौढ उपवर कन्याओंको [illegible]

दारिद्र्यताको दूर करो।

पतिके घर धर्मपत्नीका [illegible] लिये होना चाहिये कि अपने [illegible] रहे। इस विषयका [illegible] —

हमने यह मत यहां इसलिये दिया है कि इन मंत्रों पर पूर्वोक्त बाबू महाशय यह कल्पना करते हैं। जो पाठक खोज की दृष्टिसे अध्ययन करते हों वे इन मंत्रोंका अधिक विचार करें। उक्त बाबू महाशयजीका और भी कथन यह है कि (ऋ० ८। ६९। १५-१६ जैसे) मंत्रोंमें जहां इन्द्रके रथमें बैठनेका उल्लेख है वहां इन्द्रमूर्तिका रथपर सवार होना ऐसा अर्थ समझना चाहिये। यदि इस तरह कल्पना करना हो तो प्रायः सभी देवताओंकी मूर्तियां वेदमें वर्णित हैं, ऐसा ये कह सकते हैं, क्यों कि वेदमें अनेक देवताओंके वर्णनोंमें रथमें बैठनेका वर्णन है। देवताके रथमें बैठनेका क्या आध्यात्मिक अर्थ है इसकी चर्चा हमने " वैदिक अग्निविद्या " नामक पुस्तकमें अग्निदेवताके विषयमें की है। इसी प्रकार इन्द्रदेवतापर स्वतंत्रतया एक पुस्तक लिखकर उसमें इन्द्रदेवताके रथपर बैठनेका आशय क्या है इसका विचार करेंगे। वह विचार यहां संक्षेपसे कहनेसे कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, इसलिये वह विषय हम यहां नहीं लेते हैं। हमारे विचारसे यहां के " देवान् प्रति भूष " का अर्थ अपने परिवारमें जो गुरुजन हैं उनको सुभूषित करो, ऐसा है। आगे खोज हो कर जो बात सिद्ध होगी वह प्रकाशित करेंगे। अस्तु]

उक्त प्रकारकी सुमंगल वधूको सज्जन स्त्रीपुरुष देखें, और आशीर्वाद दें, उसका भला चाहें और उसकी सहायता करें। यह भाव २८ वे मंत्रका है। जो दुष्ट हृदयवाली (दुर्हार्दः युवतयः) स्त्रियां तरुण युवतियोंको धोखा देती रहती हैं और उनको कुमार्गमें प्रवृत्त करती हैं, ऐसी दुष्ट युवतियां इस नवविवाहित वधूवरके समीप न आवें। अर्थात् ऐसे दुष्ट स्त्रियोंके और दुष्ट पुरुषोंके प्रभावसे ये नवविवाहित स्त्रीपुरुष बचे रहें।

गुप्त बात।

इसके पश्चात् मंत्र ३० से मंत्र ४० तक स्त्रीपुरुषसंबंधका अर्थात् गर्भाधानप्रसंगका वर्णन है। इसमें उत्तम मनन करने योग्य अनेक निर्देश हैं, तथापि यह विषय केवल गृहस्थियोंके हि उपयोगी है, और ब्रह्मचारी इसको पढ नहीं सकते, अतः यह गुह्य विषय है। इस कारण इसका विवरण हम यहां नहीं करते। जो पाठक इसको जानना चाहें वे मंत्रके अर्थसे विचार करके जानें।

वधूका वस्त्र।

वधूके विवाहके समय ज्ञानी ब्राह्मणको वस्त्रका दान करनेका आदेश मंत्र ४१

एष देवः सर्वा रक्षांसि हन्ति। (मं० २४)

" यह अग्नि देव सब रोगबीजरूप राक्षसोंका नाश करता है " और कुटुंबियोंको नीरोग करता है। यह अग्नि उपासनाका महत्त्व है। अतः हवन प्रत्येक कुटुंबमें होना चाहिये। इस तरह जो स्त्री करती है उसका (सुज्येष्ठः पुत्रः। मं. २४) उत्तम श्रेष्ठ पुत्र होता है। सुप्रजा निर्माण करनेके लिये ईश्वर उपासना की अत्यंत आवश्यकता है, इससे मातापिता और कुटुंबियोंके मन सुसंस्कारसंपन्न होते है और उसका परिणाम सुप्रजा निर्माण होनेमें होता है। २५ वें मंत्रमें भी इसी कारण पुनः—

प्रतिभूष देवान्। (मं० २५)

" देवोंको सुभूषित करो " ऐसी आज्ञा दी है। ईश्वरोपासना करनेके लियेहि यह आज्ञा प्रेरित करती है। देवताओंको आभूषणोंसे सुभूषित करो, यह आज्ञा यहां है। मातृदेव, पितृदेव, अतिथिदेव, पतिदेव आदि अनेक देव घरमें होते है, उनको सुभूषित करनेके विषयमें यह आज्ञा होना संभवनीय है। घरमें जो जो देवताएं होंगी उनकी शोभा बढाना गृहस्थियोंका परम कर्तव्य ही है।

[कई लोग " देवताओंकी मूर्तियोंकी सजावट करो " ऐसा इस मंत्रका अर्थ मानते हैं और इस मतके लोग कहते हैं कि वेदमें इंद्रादि देवताओंकी मूर्तियां वर्णन की है, इस विषयमें उनके प्रमाण ये होते है—

क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः॥ ऋ० ४। २४। १०
महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम्।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ॥
ऋ० ८। १। ५

"(इमं इन्द्रं) इस इन्द्रको (दशभिः धेनुभिः) दस गौवे देकर (क्रीणाति) खरीद लेता है॥ मैं सैंकडों और सहस्रो गौवे मिलने पर भी (शुल्काय न परा देयां) कितना भी मूल्य मिलने पर इस इन्द्रको न बेचूंगा॥ " इन मंत्रोंसे ये लोग कहते हैं कि इन्द्रकी मूर्ति खरीदने और बिकनेका उल्लेख है। श्री० बाबू अविनाश चंद्र दास एम्० ए० पीएच्० डी० ने अपने 'वैदिक कल्चर' नामक पुस्तक में पृ० १४५–१४८ पर इन मंत्रोंका विचार किया है। अन्तमें उन्होंने इतने मंत्र देकर भी वेदमें निःसन्देह मूर्तिपूजा है ऐसा अपना मत नहीं दिया। इसलिये उनके मतसे भी वेदमें मूर्तिपूजाका होना सिद्ध नहीं हुआ। अतः जिस विषयमें इस पक्षके उन्यापक-कोही संदेह है उस विषयका खंडनमंडन हमें यहां करने की कोई आवश्यकता नहीं।

उत्तम घरमें रहते हुए ब्रह्मचर्यादि सुनियमोंका पालन करके अपने इंद्रियोंको उत्तम अवस्थामें रखें। (सु-पुत्रौ) जिनको उत्तम बाल बच्चे हुए हैं और वे उत्तम सुशिक्षासे संपन्न हो रहे हैं, ऐसे ये माता पिता हों। सुसंतान उत्पन्न करना और उनको यथायोग्य रीतिसे सुसंस्कारयुक्त करना प्रत्येक गृहस्थीका कर्तव्य है। विशेष प्रबंधके साथ रहनेसे उत्तम संतान उत्पन्न हो सकती है। इस तरह सब गृहस्थी अपने घरमें आनंद प्रसन्न रहें और अपने दीर्घायुकी प्राप्तिका साधन करें। यहां उत्तम घरका आदर्श बताया है। पाठक इसको स्मरण रखें और अपना घर ऐसा करनेका प्रयत्न करें।

(अण्डात् पतत्री एव) जैसा अण्डेसे पक्षी मुक्त होता है, और स्वेच्छासे आकाशमें संचार करनेका आनंद प्राप्त करता है, उस प्रकार प्रत्येक गृहस्थी प्रयत्न करके (विश्वस्मात् एनसः परि अमुक्षि। मं० ४३) सब पापसे मुक्त होकर निष्पाप होकर विचरे। यही प्रत्येक गृहस्थीका आदर्श होवे। मैं निष्पाप बनूंगा ऐसा निश्चय प्रत्येक गृहस्थी करे और उस सिद्धिके लिये अपने प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करे। प्रति दिन (नवं वसानः) नया अर्थात् धोया हुआ स्वच्छ वस्त्र परिधान करे और (सुवासाः) उत्तम शोभायमान वस्त्रोंसे अपने आपको सुशोभित करे। अपने शरीरकी सजावट करे। शरीरकी सुंदरता बढानेके यत्नमें दत्तचित्त रहे। इस विषयमें उदास न रहे। स्त्री पुरुष सुंदर वस्त्रों और सुंदर आभूषणोंसे अपने शरीर अधिकसे अधिक सुंदर और रमणीय तथा दर्शनीय बनावें। (सुरभि) सुगंध चंदन इत्तर आदि धारण करके आनंद प्रसन्न रहें। शरीरपर दुर्गंधियुक्त कोई पदार्थ न हो। स्नानसे प्रतिदिन शरीर दुर्गंधि-रहित किया जावे। प्रतिदिन धोये वस्त्र परिधान किये जांय तथा चंदनविलपनादि द्वारा सुगंध का धारण किया जावे। इस प्रकार सुंदरबनकर स्त्री पुरुष अपने घरसे (विभातीः उषसः उदगां) प्रकाशमान उषःकालमें हि अपने घरसे बाहर निकल पडें। प्रातःकाल स्नान उपासनादिसे निवृत्त होकर इस शुभ समयमें कुछ भ्रमण करें। उषःकालमें कोई स्त्री या पुरुष बिस्तरेपर न सोता रहे। इस प्रकारका आलसी गृहस्थी कोई न रहे। सदा उद्यमी, प्रयत्नशील और सुसंस्कारसंपन्न ऐसे गृहस्थी प्रशंसनीय रीतिसे अपने शुभ कर्ममें दत्तचित्त रहें।

प्रत्येक गृहस्थी की इच्छा हो कि (नः अंहसः मुंचन्तु। मं० ४५) हम सब पापसे मुक्त हों। गृहस्थियोंको सदा अपने आचारशुद्धताकाहि विचार करना चाहिये, क्यों कि गृहस्थाश्रममें सदा धनकी आवश्यकता होती है और उस कारण मनुष्य बुरे

और ४२ में है। यह वस्त्र देना अत्यंत आवश्यक है. क्योंकि यह (ब्रह्मभागः) ब्राह्मणका भाग है. यह दान (देवैः दत्तं) देवोंद्वारा दिया था (मनुना साकं) मनुके साथ यह प्रथा है, या मनुके साथ यह वस्त्र आया है. यह (ब्रह्मणे) ब्राह्मणको देने योग्य दान है। यह (चिकितुषे ब्रह्मणे यः ददाति) जो ज्ञानी ब्राह्मणको इस वस्त्रका दान करता है उसका लाभ होता है। इस तरह वस्त्रदान की महिमा इन मंत्रोंमें वर्णन की है। ब्राह्मणोंको इस तरह वस्त्रदान किये जांय यह इसका तात्पर्य है। विद्वान् ब्राह्मणोंको ऐसे दान देकर उनका योगक्षेम चलाना चाहिये. यह उपदेश यहां इन मंत्रोंसे मिलता है। यह गृहस्थियोंपर एक प्रकारका धार्मिक भार है। इस प्रकारके दान गृहस्थी देते रहेंगे तो उस दानसे बडे बडे गुरुकुल चल सकते हैं और विद्याका प्रसार भी बडा हो सकता है।

गृहस्थियोंके घर।

४३ वे मंत्रसे गृहस्थियोंके घर कैसे हों. इस विषयके आदेश मिल सकते हैं। (सुगृहौ) स्त्री पुरुष उत्तम घरमें रहें. घर अंदर बाहरसे उत्तम सुव्यवस्थित हो. जैसा वैसा न हो. प्रत्येक कमरा और घरके बाहरका भाग सब यथायोग्य स्वच्छ, सुंदर और सुडौल हो। (स्योनात् योनेः अधि बुध्यमानौ) स्त्रीपुरुषोंका शयन करनेका कमरा अत्यंत सुखदायक हो. गर्मीके दिनोंमें वह शान्त रहे और शीत के दिनोंमें वही सुखदायक बने, वृष्टिसे कोई कष्ट उसमें रहनेवालोंको न हो। ऐसे सुखदायी कमरेमें गृहस्थी स्त्री पुरुष सोया करें। इस कमरेका स्वास्थ्य उत्तम होनेसे जो स्त्री पुरुष उसमें सोयेंगे. उनको उत्तम निद्रा आवेगी. और वे ज्ञानसहितमें (अधि बुध्यमानौ) अपने शयनमंदिर से उठ सकते हैं और अपने धर्मकर्मका प्रारंभ कर सकते हैं। वे स्त्रीपुरुष अपने सुंदर मंदिरमें रहें और (हसामुदौ) हास्यविनोद करते हुए अपना दैनिक व्यवहार करे। कभी किसीपर क्रोध द्वेष आदि विकारयुक्त आचरण न करें। आनंदके साथ रहें. (महसा मोदमानौ) महत्त्वके ज्ञानके साथ आनंदमग्न रहें। इन स्त्रीपुरुषोंके पारस्परिक व्यवहारसे ऐसा प्रतीत हो जावे कि वे बडे आनंदसे अपना व्यवहार कर रहे हैं। उनके मुखारविंदसे उनका आनन्द व्यक्त हो।

(सु-गृ) उत्तम गौवोंका पालन करनेवाले ये गृहस्थी हों. उनके दूध देनेवाली उत्तम उत्तम गौवें हों. उनका दूध. दही. छाछ. मक्खन. घी आदि पदार्थोंको प्रतिदिन प्राप्त होता रहे और वे उनका सेवन करके हृष्ट. पुष्ट और आनंदित होते रहें। 'सु-गृ' शब्दका दूसरा अर्थ उत्तम इंद्रियोंसे युक्त ऐसा भी है। वे स्त्री पुरुष उत्तम

कारण होती हैं और अज्ञान दूर होने तक उनके दोषोंसे बचना असंभव है। अतः सब प्रकारके अज्ञानको दूर करनेका प्रयत्न करना प्रत्येकका कर्तव्य है। इसी तरह जो (यावतीः कृत्याः) जो घातपात के विचार हैं, (यावन्तः पाशाः) जो अनेक प्रकारके बंधन हैं, (याः व्यृद्धयः याः असमृद्धयः) जो दरिद्रताएं और असमृद्धियां हैं उन सबको दूर करना चाहिये। गृहस्थियोंके कर्तव्य इस ४९ में इस प्रकार कहे है। घात-पातके विचार, बंधनके विचार और दरिद्रताके आचार सबके सब दूर करने चाहिये और अहिंसाके भाव, स्वतंत्रताके विचार और संपन्नताके आचार अपनेमें लानेका यत्न करना चाहिये। मनुष्यके पास जो विचार होते हैं वैसे आचार वह करता है और वैसा बनता है। इसलिये इस दृष्टिसे यह मंत्र बडा बोधप्रद है।

स्त्रियोंका बनाया वस्त्र ।

वस्त्र बुनना घरेलू धंदा हो जावे। अन्य वस्त्र कोई न पहने। मंत्र ५० और ५१ में स्त्रियोंके द्वारा बनाया वस्त्र परिधान करनेको कहा है।

यत् पत्नीभिः उतं वासः तत् नः स्योनं उपस्पृशात्। (मं० ५१)

" जो हमारी स्त्रियोंद्वारा बुना वस्त्र है वही हमें सुखस्पर्श देनेवाला प्रतीत हो।" उसकी (अन्ताः सिचः) किनारियां और धारियां, उसके (ओतवः तन्तवः) ताने और बानेके धागे हमें सुख देनेवाले हों। अर्थात् अपने घरकी स्त्रियां अपने घरका वस्त्र बनावें, घरमें सूत काता जावे, उसका ताना बाना घरमें बने, किनारियां और धारियां सुंदरसे सुंदर घरमेंहि बनायी जाय। और ऐसा घरमें बुना वस्त्र घरके स्त्री-पुरुष पहनें, उनको अपना घरेलू वस्त्र पहननेमें बडा अभिमान हो। अपने घरके लोगोंने बनाया वस्त्र पहननेमें कोई न डरे। परंतु वही वस्त्र पहननेमें हरएकको प्रेम और आनंद प्राप्त होवे। अपने घरमें बनाया वस्त्र न पहन कर और परकीयोंद्वारा बनाया वस्त्र पहन कर (वयं मा रिषाम। मं० ५०) हममेंसे कोईभी नाशको न प्राप्त होवे। क्योंकि अपना बनाया वस्त्र न पहननेमें और परकीयोंद्वारा बनाया वस्त्र पहननेमें निःसन्देह नाश होगा। इस नाशसे गृहस्थियोंका बचाव करनेका एक मात्र उपाय यह है कि प्रत्येक घरमें सूत कांता जाय और उसका वस्त्र बनाकर वही उस घर के लोग पहने। आपत्तिसे बचनेका और संपत्तिमान बननेका एक मात्र उपाय यह है। प्रत्येक घरमें इस वैदिक धर्मके आदर्शका पालन होता रहे। अपने बनाये वस्त्रसे कोई मनुष्य घृणा न करे और परकीयोंद्वारा बनाये वस्त्रपर कोई मनुष्य प्रेमभी न करे। यही एक मात्र साधन उद्धारका है।

व्यवहारमें फंस जानेका संभव अधिक होता है। अतः पापसे बचनेका विचार गृहस्थाश्रमवासियोंके मनमें सदा रहना उचित है। यदि यह विचार उनके मनमें रहा तो वे कठिण प्रसंगमे दक्षतासे रह कर पापसे अपना बचाव कर सकते है।

द्यावापृथिवी ये दो लोक कैसे नियमसे अपना कर्म कर रहे है, यह सब गृहस्थी देखें। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, तारागण आदि सब अपनी कक्षामें भ्रमण कर रहे हैं, कभी दूसरेके कार्यक्षेत्रमें नही जाते, कभी आलस्य नही करते और कभी अपना कर्म छोडते भी नही। सब ऋतु और सब काल यथायोग्ग रीतिसे हो रहे हैं, कोई शिथिलता नहीं करते। यह सृष्टिचक्र देखकर गृहस्थी लोग अपने मनमें निश्चय करे कि हम भी वैसा ही आचरण करेंगे और इस सृष्टिमें रहने योग्य बनेंगे। (महिव्रते) महान् नियमोंका पालन करनेसे हि मनुष्य सुयोग्य बन सकता है। मनुष्यकी विशेष उच्च योग्यता होनेके लिये उचित है कि वह सुयोग्य धर्मनियमोंका पालन करे और सृष्टिके नियमोंके अनुकूल रहकर विशेष प्रभावशाली बने।

(ये प्रचेतसः, तेभ्यः नमः। मं० ४६) जो विशेष ज्ञानी हैं उनको नमन करना चाहिये। क्योंकि नमनपूर्वक उनके समीप जानेसे वे ज्ञानोपदेश देते है और उस ज्ञानसे मनुष्य कृतार्थ हो सकता है। इसलिये गृहस्थियोंको उचित है कि वे ज्ञानी गुरुजनोंको नमस्कार करनेसे पीछे न हटें।

ईश्वरके अद्भुत कार्यका वर्णन मंत्र ४७ मे किया है। ईश्वर विना चिपकाये और विना सुराख किये संधियोंको जोड देता है। अपने शरीरमें सब हड्डियां कैसी एक साथ जोड रखी हैं, वहां कोई सुराख नहीं है, न किसी स्थानपर चिपकानेका कारण पडा है। यह अद्भुत रचनाकौशल्य परमेश्वरका है। पाठक अपने शरीरमें तथा जगत् में इसका अनुभव करें। और परमेश्वरकी अद्भुत शक्तिको पहचाने। यही (वि-हुतं पुनः निष्कर्ता) हमारे फटे हुएको पुनः ठीक करनेवाला है। अतः इसको नमन करके इसकी शक्तिको अपने अनुकूल करनेका यत्न करना चाहिये। उपासनासे हि यह सब साध्य हो सकता है।

मंत्र ४८ मे कहा है कि (नमः अस्मत् अप उच्छतु। मं० ४८) अंधकार हम सबसे दूर रहे। अंधकार सात्त्विक राजस और तामस होनेमे अनेक प्रकारका है। आत्मिक, बौद्धिक, मानसिक और इंद्रियविषयक अंधकार परस्परभिन्न है। यह सब अंधकार हम सबसे दूर हो। हममेंसे किसीके पास यह अंधकार या इस विषयका अज्ञान न रहे। क्यों कि सब प्रकारके दोष और सब किसमकी अधोगतियां अज्ञानके

यह स्त्रीकी इच्छा हो। स्त्री कभी अपने पति का अहित न चाहे। पतिका हित करने में सदा दक्ष रहकर उसके दीर्घायुका चिंतन करती रहे। [चक्रवाका इव दम्पती] जैसे चक्रवाकपक्षी रहते हैं, आपसके प्रेमके साथ विहार करते हैं वैसे हि स्त्रीपुरुष गृहस्थाश्रममें प्रेमके साथ रहें। पत्नीके लिये एक मात्र पति, और पतिके लिये एक मात्र पत्नी चक्रवाक पक्षिकी जातिमे होती है, वैसीहि स्थिति गृहस्थाश्रमियोंमें होवे। धर्मपत्नीके लिये एकमात्र पति और पतिके लिये एकमात्र धर्मपत्नी प्रेमका स्थान होकर रहे। उनमें व्यभिचारादि दोष उत्पन्न न हों। एक दिलसे और एक विषयसे वे गृहस्थाश्रममें रहें। इस प्रकार [सु=अस्तकौ] अपने उत्तमोत्तम घरवार करके उसमे रहें और [विश्वं आयुः व्यश्नुतां] सब पूर्ण आयु व्यतीत करें। इस तरह गृहस्थाश्रममें पति और पत्नी सुखसे रहें और आनंद प्रसन्नताके साथ गृहस्थ-धर्मका कार्य चलावें।

आगे मंत्र ६५ से ६७ तक के तीन मंत्रोंमें विशेष रीतिसे कहा है कि जो विवाहादि समय (कृत्यां) घातपातके विचार किये हों, जो (दुष्कृतं, दुरितं) जो दुराचार अथवा पापविचार हुए हों, जो (मलं) मलीन आचार तथा (दुरितं) बुरे कर्तूत बन गये हों, वे सबके सब हमसे दूर हों और हम (शुद्धाः यज्ञियाः अभूम) शुद्ध, पवित्र और पूज्य बन जांय और (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमें दीर्घ आयु प्राप्त हो। साधारणतः यह नियम है कि बडे उत्सवोंमें विवाह जैसे मंगल कार्योंमें जहां अनेकानेक बुरे भले मनुष्योंका संबंध आता है, वहां किसी न किसी रीतिसे कुछ न कुछ हीन आचार हुआ करते है, कुछ न कुछ दोष होते रहते हैं। ऐसे दोष बडा समाज इकट्ठा होनेके कारण बनते हैं, ऐसा मान कर, उनसे अपने आपको बचानेका उद्योग करना चाहिये और शुद्ध पवित्र और यज्ञके लिये योग्य बननेका यत्न प्रत्येक गृहस्थीको करना चाहिये। पूर्व समयमें दोष होगये तो भी उनकी विशेष चिंता करनेमें समय व्यतीत न करते हुए आगेके समयमें आत्मशुद्धि करनेके प्रयत्नमें दत्तचित्त होना चाहिये। इस तरह शुद्ध और पवित्र बनकर गृहस्थियोंको आदर्श जीवन व्यतीत करना चाहिये।

बालोंकी पवित्रता।

स्त्रियोंके केशोंकी स्वच्छता और पवित्रता करनेका उपदेश मंत्र ६८ और ६९ में किया है। (कंटकः अस्याः केश्यं मलं अपलिप्वात्। मं० ६८) कंगवा इस स्त्रीके केशोंके मलको दूर करे। यह प्रतिदिनका कार्य है। स्त्रीको उचित है कि वह

मंत्र ५२ में कहा है कि " पतिकी इच्छा करके पतिके घरमे पहुंचनेवाली कन्या इस दीक्षाव्रतका पालन करे। " यह दीक्षाव्रत स्वयं सूत कातना और उसका वस्त्र घरवालोंके लिये बनाना है। जो स्त्री इस व्रतका पालन करेगी वही दीक्षाको धारण करनेवाली होगी और कुलका उद्धार करेगी। परंतु जो स्त्री स्वयं सूत कातेगी नही और परकीयों द्वारा बनाये वस्त्र पहननेका आग्रह करेगी, वह अपने घरमें स्वयं दरिद्रताको बुलावेगी। इसलिये घरके पारिवारिक स्त्रीपुरुषोंको उचित है कि वे सबके सब इस दीक्षाव्रतको धारण करें और इस व्रतका पालन करके उन्नतिको प्राप्त हों। वेदका यह आदेश सब गृहस्थियोंको है। जो इसका पालन करेंगे वे अभ्युदय प्राप्त करेंगे और जो इससे विमुख होंगे वे असफल जीवनमे गिर जांयगे।

गौवोंका यश।

मंत्र ५३ से ५८ तक गौवोंके यशका वर्णन है। सब गृहस्थियोंको उचित है कि वे अपने घरमें गौवोंका पालन करें और उनका ही दूध दही मक्खन घी आदिका सेवन करें। गौवोंमें (वर्चः) तेज, (तेजः) फुर्ती, [भगः] ऐश्वर्य, [यशः] यश, [पयः] दूध, [रसः] अन्नरस है। गौवोंके दूधसे इनकी प्राप्ति मनुष्यको होती है। इसके अतिरिक्त शुद्ध गौका मूत्र, गोमय आदि भी औषधिगुणोंसे युक्त है। इन सब पदार्थोंद्वारा गौ मनुष्योंको सुख देती है। ये सब लाभ गौ की पालना घरमें करनेके विना नहीं हो सकते। अतः गृहस्थियोंको अपने घरमें गौवोंकी पालना करके वर्चस्वी, तेजस्वी, भगवान् और यशस्वी होना चाहिये।

आगे मंत्र ५९ से ६२ तकके मंत्रोंमें पापसे बचनेका उपदेश किया है। जो अपने (केशिनः) बाल बढाते है, (अघं कृण्वन्तः) पाप करते है, (रोदेन नमनतिपुः) रोते है। नाचते कूदते है। स्त्रियां [विकेशी] बालोंको खोलकर घरमें रोती पीटती है, आक्रोश करती है। घरकी स्त्रियां घरमें जिन कारण आक्रोश करती हैं, नानाप्रकारके पातक करती है। ये सबके सब पापकारी लोग हैं और वे समाजसे दूर होने योग्य है। जो पापकारी भाव है वे मनसे दूर हों और जो पापकारी मानव है वे समाजसे दूर हों। इस तरह पापी विचारोंसे मन शुद्ध हो और पापी जनोंसे समाज शुद्ध हो। और मनसे और समाजसे रोने पीटनेका मूल कारण दूर हो जावे और संपूर्ण समाजमें आनंद प्रसन्नता निवास करे। यही गृहस्थधर्मका ध्येय है।

मंत्र ६३ और ६४ में कहा है कि [मे पतिः दीर्घायुः अस्तु] अपना पति दीर्घायु हो

(पृथिव्याः पयसा) पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाले दूधका सेवन करना चाहिये । तथा (ओषधीनां पयसा) ओषधियोंके दूधका सेवन करना चाहिये । यहां ओषधियोंका रस और भूमि का रस ये दोहि रस गृहस्थियोंके भोजनके लिये कहे हैं। ओषधियोंके रसको सब जानते हि हैं। औषधि, फल, फूल, पत्ते आदियोंका सेवन मनुष्य करतेहि हैं । गृहस्थियोंको चाहिये कि वे पुष्टिकारक ओषधियोंको बढावे और उनका सेवन करके पुष्ट और हृष्ट बनें । भूमिका दूध सेवन करनेको भी इस मंत्रमें कहा है। भूमिका रस एक तो शुद्ध और पवित्र स्रोतका जल है, दूसरा भूमिका रस धान्य आदि भी है । अस्तु इस तरह शुद्ध जल, शुद्ध अन्न और शुद्ध फलादि का सेवन करना चाहिये । यहां पाठक स्मरण रखें कि किसी भी स्थानमें पशुके मांसका भोजन मनुष्योंके लिये नहीं कहा है । अर्थात् मांसका भोजन मानवोंके लिये वैदिक मर्यादा के अनुकूल नहीं है । हमने जहां जहां भोजनका विषय वेदमें देखा है, वहां वहां किसी भी स्थानपर हमने मांसका नामतक देखा नहीं है। परंतु वहां धान्य, औषधि, वनस्पति, फलमूल आदिकाही उल्लेख देखा है, अतः हम कह सकते हैं कि वैदिक भोजन शुद्ध निर्मांस भोजन अर्थात् शाक भोजनही है । इस शाक भोजनसेहि (वाजं सनुहि) बलको प्राप्त करो, यह वेदका आदेश है ।

आगेके ७१ वे मंत्रमें स्त्री और पुरुष किस तरह व्यवहार करें, इस विषयका उत्तम उपदेश है, वह कोष्टक रूपमें अब देखिये—

पुरुष	स्त्री
अमः	सा
साम	ऋक् (ऋचा)
द्यौः	पृथिवी

यहां स्त्री और पुरुष आपसमें एकमतसे रहें यह उत्तम उपदेश है । ऋग्वेदके मंत्र को तान और आलापके साथ गायन करनेसे साम मंत्र होता है । वस्तुतः ऋक्मंत्र और साममंत्र एकही है । इसी तरह स्त्री और पुरुष एकही है, केवल एक स्थानपर सौम्य गुणोंका विकास और दुसरे स्थानपर उग्र गुणोंका विकास है । वही भाव स्त्रीको पृथ्वी और पुरुषको द्यूलोक बताकर वर्णन किया है । स्त्रीपुरुष इस प्रकारके एकमत्यके साथ रहें । आपसमें झगडा आदि कुछ भी न हो । आनन्द प्रसन्नताके साथ सब गृहस्थधर्म के आचारव्यवहार करे । ये दोनों (इह संभवाव, प्रजां आजनयावहै । मं० ७१) यहां संतान उत्पन्न करें, सुप्रजा निर्माण करें । अपने

अपने बाल खोलकर उत्तम स्वच्छ तेल लगावे और कंगवेसे सब बाल स्वच्छ करे और फिर केशोंका प्रसाधन यथेष्ट रीतिसे करे। चार या आठ दिनोंमे एक या दो बार अपने बाल किसी मलनिवारक साधनसे पानी के साथ धोकर, पवित्र वस्त्रसे पानी दूर करके बालोंको सुखावे और फिर कंगवा करके केशप्रसाधना अच्छी प्रकार करे। केशो की निर्मलता रखना स्त्रियोंके लिये एक आवश्यक कर्म है। जिस स्त्रीके केशोंसे दुर्गंधी आती है, वह स्त्री किसी धर्मकर्मके लिये अयोग्य समझी जाती है। इसलिये स्त्रीका केशप्रसाधन कर्म एक अत्यंत आवश्यक कर्म है।

स्त्रीके (अंगात् अंगात् यक्ष्मं अपनिदध्मासि। मं० ६९) प्रत्येक अंग और अवयवसे मल अथवा रोगबीज को दूर करना चाहिये। क्यों कि स्त्री राष्ट्रीय संतानो-की जननी है। वह यदि मलिन, अपवित्र अथवा रोगयुक्त रहेगी, तो राष्ट्रकी भविष्य संतानभी वैसीहि होगी। इसलिये स्त्रियोंके शरीर पवित्र, नीरोग और सबल होने चाहिये, जिससे संतान उत्तमोत्तम निकलते रहें। सब मल जलसे दूर होता है [illegible] सत्य है, इसीलिये जलस्थान पवित्र रखनेका यत्न होना चाहिये। नहीं तो जल-स्थानोंमें लोग स्नान करेंगे और पानीके जलमें [illegible] वह मल जायगा और [illegible] पवित्रता होनेवाली है, उसी जलसे अपवित्रता और रोगी [illegible] बढेगी, इसलिये कहा है कि (आपः मलं मा प्रापन्। मं० ६९) जलस्थानमें [illegible] अर्थात् संपूर्ण जलस्थान स्वच्छ, पवित्र और निर्मल [illegible] नदियोंमें तथा अन्यान्य जलाशयोंमें लोग स्नान करते हैं, [illegible] प्रकारसे अस्वच्छता करते हैं, और उसी स्थानसे [illegible] अनंत रोग उत्पन्न होते हैं। अतः वेदका [illegible] रखना चाहिये। किसी भी जलाशयमें [illegible] जलाशयको पवित्र, स्वच्छ और नीरोगी [illegible] योग करके अपने [illegible] [illegible] स्मरण रखें।

पुष्टिका साधन।

[illegible]

र्वाद देनेके शिवाय वापस न जावें।

विवाहित स्त्री अर्थात् धर्मपत्नी (दीर्घायुत्वाय शतशारदाय) दीर्घायु और शतायु बननेका प्रयत्न करे। ऐसा आहारविहार करे कि जिससे घरवाले दीर्घजीवी बनें। (सुबुधा बुध्यमाना प्रबुध्यस्व) उत्तम ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न करे। हरएक प्रकारकी सुविद्या प्राप्त करके उत्तम शुभमंगलमय संस्कारोंसे युक्त बने। अपने पतिके घरमें जाकर (गृहपत्नी) अपने घरकी स्वामिनी बनकर वहां रहे। स्वामिनी-घरकी देवी बननेका इसका अधिकार है। इसकी (सविता दीर्घं आयुः करोतु। मं० ७५) सविता दीर्घ आयु बनावे। इस प्रकार दीर्घायु बनकर अपने पतिके घरमें यह विराजे।

अथर्ववेदके चौदहवें काण्डमें विवाहविषयक दो सूक्त हैं। इन सूक्तोंके सब मंत्रोंका आशय यह है, जो पाठक इन मंत्रोंका मनन करेंगे, वे इससेभी अधिक बोध प्राप्त कर सकते हैं। पाठकोंसे यहां हमारा निवेदन है कि वेदने जो उपदेश इन मंत्रोंमें दिये हैं उनका मननपूर्वक स्मरण करें और उनको प्रयत्नसे आचरणमें लानेका यत्न करें, क्योंकि वेदका धर्म केवल शब्दज्ञानसेहि सिद्ध नहीं होता, प्रत्युत आचार करनेसेहि सिद्ध हो सकता है।

सब लोगोंका गृहस्थाश्रम धर्मानुकूल हो और वह सबको सुख देकर जगत् का उपकार करनेवाला बने।

चतुर्दश काण्ड समाप्त।

बालबच्चोंको सुसंस्कारसे संपन्न करे और सब प्रकार की उन्नतिसे युक्त हों। दोनोंको प्रयत्न इस बातका करना चाहिये कि सब प्रकारका अभ्युदय और निःश्रेयस उत्तम रीतीसे सिद्ध हो।

(अग्रवः जनियन्ति) आगे बढनेवाले लोगहि स्त्रीको प्राप्त करनेकी इच्छा करें। पीछे रहनेवाले, प्रयत्न न करनेवाले लोग विवाहित होनेकी इच्छा न करें। क्योंकि ऐसे आलसी लोगोंको वैसेहि अप्रबुद्ध संतान होंगे और अंतमें जातिको उनके दोषोंके कारण कलंक लगेगा। (सुदानवः पुत्रियन्ति) उत्तम दान देनेवाले, परोपकार करनेवाले, मानव समाजका भला करनेके लिये, आत्मसमर्पण करनेवाले हि पुत्रप्राप्तिके इच्छुक हों, क्योंकि ऐसे लोगोंके शुभसंस्कार पुत्रोंमें आ सकते हैं और शुभसंतान उत्पन्न होनेसे राष्ट्रका तथा मानव समाजका भला हो सकता है। इसलिये उत्तम दान करनेवाले विवाहित होकर संतान उत्पन्न करें और जो दान न करनेवाले स्वार्थी हों वे अविवाहित रहें। (अ-रिष्ट-असू वाजसातये सचेवहि। मं० ७२) अपने प्राणोंको सुरक्षित रखते हुए बडा बल प्राप्त करनेके लिये ये स्त्रीपुरुष यत्न करें। हरएक स्त्रीपुरुषको उचित है कि वे बडा बल प्राप्त करें, कोई कमजोर, निर्बल न रहे। बल प्राप्त करके जगत् के व्यवहारयुद्धमें आगे बढकर विजय प्राप्त करे। अपुरुषार्थवृत्ति कोई धारण न करे। सब लोग पुरुषार्थी बनें और अपने अपने कर्तव्य करते रहें।

आशीर्वाद।

अन्तिम तीन मंत्रोंमें नवविवाहित वधूवरको शुभ आशीर्वाद दिया है। मंत्र ७३ में कहा है कि संबंधी और ज्ञातिबांधव बरातमें संमिलित हुए हों, वे अपने अपने घर वापस जानेके पूर्व (ते अस्यै संपत्न्यै प्रजावत् शर्म यच्छन्तु। मं० ७३) वे इस शुभपत्नीके लिये प्रजायुक्त सुख देवें, अर्थात् इसको सुप्रजा निर्माण हो और इसको उत्तम गृहसौख्य प्राप्त हो ऐसा शुभाशीर्वाद देवें और पश्चात् वे अपने घर वापस चले जावें।

जो स्त्रियां इस बरातमें आगयी हों, वे अपने घर जानेके पूर्व प्रजा और धन प्राप्त होनेका शुभाशीर्वाद देवें और (अगतस्य पंथां अनुवहन्तु) भविष्यके मार्गका आक्रमण इनसे सुयोग्य रीतिसे होने योग्य आचारके निर्देश इनको देवें तथा यह (विराट् सुप्रजा) विशेष सम्राज्ञी जैसी बनकर उत्तम प्रजायुक्त होवे, ऐसा सुंदर आशीर्वाद देवें और पश्चात् अपने अपने घरको वापस जावें। बरातमें आये कोई स्त्रीपुरुष आशी-

चतुर्दश काण्ड समाप्त ।

चतुर्दश काण्डकी विषयसूची ।